M. A. Political Science (Previous) (DDE)

Semester – I

Paper Code – 20POL21C1

WESTERN POLITICAL THOUGHT - I

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. XXV of 1975)
NAAC 'A+' Grade Accredited University

M.A (Previous) Political Science

Semester-I

Paper-Western Political Thought-I

Unit	Syllabi	Page No.
I	प्लेटो (PLATO)	8-124
	1. आदर्श राज्य की धारणा (Conception of Ideal State)	
	2. न्याय का सिद्धान्त (Theory of Justice)	
	3. शिक्षा का सिद्धान्त (Theory of Education)	
	4. साम्यवाद का सिद्धान्त (Theory of Communism)	
II	अरस्तू (Aristotle)	125-226
	1. राज्य की उत्पत्ति व प्रकृति का सिद्धान्त (Theory of Origin and Nature of State)	
	2. क्रान्ति का सिद्धान्त (Theory of Revolution)	
	3. दासता व सम्पत्ति का सिद्धान्त (Theory of Slavery and Property)	
	4. अरस्तू राजनीति विज्ञान के जनक के रूप में (Aristotle as the Father of Political Science)	
III	सेण्ट आगस्टाइन (St. Augustine)	227-241
	1. चर्च और राज्य में सम्बन्ध का सिद्धान्त (Theory of Relation Between Church and State)	
	सेण्ट थॉमस एक्विनास (St. Thomas Aquinas)	242-264
	1.चर्च और राज्य में सम्बन्ध का सिद्धान्त (Theory of Relation Between Church and State)	
	2. कानून का वर्गीकरण (Classification of Law)	

IV मैकियावली (Machiavelli) 265-310

1. शासन कला और राजनीति के बारे में विचार
   (Views on Statecraft and Politics)
2. राजनीति नैतिकता व धर्म के बारे में विचार
   (Views on Politics, Ethics and Religion)
3. मैकियावली : आधुनिक राजनीतिक चिन्तन के पिता के रूप में
   (Machiavelli as the father of Modern Political Thought)

थॉमस हॉब्स (Thomas Hobbes) 311-370

1. मानव प्रकृति, प्राकृतिक अवस्था, सामाजिक समझौते का सिद्धान्त
   (Human Nature, State of Nature and Social Contract Theory)
2. सम्प्रभुता का सिद्धान्त (Theory of Sovereignty)
3. हॉब्स के राजनीतिक चिन्तन में निरंकुशतावाद तथा व्यक्तिवाद का मिश्रण
   (Individualism and Absolutism in Hobbes Political Thought)

ईकाई – 1

अध्याय– 1

प्लेटो

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 जीवन परिचय

1.4 सुकरात का प्रभाव

1.5 आदर्श राज्य की अवधारणा

1.6 न्याय का सिद्धान्त

1.7 शिक्षा का सिद्धान्त

1.8 साम्यवाद का सिद्धान्त

1.9 प्लेटो प्रथम साम्यवादी के रूप में

1.10 दार्शनिक शासक की अवधारणा

1.11 प्लेटो प्रथम फासीवादी के रूप में

1.12 निष्कर्ष

1.13 शब्दावली

1.14 स्व मूल्यांकन

1.15 सन्दर्भ सूची

ईकाई –2

अध्याय– 2

अरस्तु

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 जीवन परिचय

2.4 अध्ययन पद्धति

2.5 अरस्तु पर प्रभाव

2.6 राज्य की उत्पत्ति व प्रकृति का सिद्धान्त

2.7 दासता का सिद्धान्त

2.8 नागरिकता का सिद्धान्त

2.9 क्रान्ति का सिद्धान्त

2.10 संविधानों का वर्गीकरण

2.11 सर्वोत्तम व्यवहारिक राज्य का सिद्धान्तः मिश्रित राज्य

2.12 आदर्श राज्य की अवधारणा

2.13 सम्पति पर विचार

2.14 परिवार सम्बन्धी विचार

2.15 कानून सम्बन्धी विचार

2.16 न्याय सम्बन्धी विचार

2.17 अरस्तु : राजनीतिक विज्ञान के जनक के रूप में

2.18 निष्कर्ष

2.19 शब्दावली

2.20 स्वमूल्यांकन

2.21 सन्दर्भ सूची

ईकाई – 3

अध्याय – 3

सेंट आगस्टाइन

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 जीवन परिचय

3.4 समकालीन परिस्थितियाँ

3.5 राजनीतिक विचार

3.6 योगदान व प्रभाव

3.7 निष्कर्ष

3.8 शब्दावली

3.9 स्व–मूल्यांकन

3.10 सन्दर्भ सूची

अध्याय – 4

सेंट थॉमस एक्विनॉस

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 जीवन परिचय

4.4 अध्ययन पद्धति : विद्वतावाद

4.5 राज्य का सिद्धान्त

4.6 सरकार का सिद्धान्त

4.7 चर्च और राज्य का सम्बन्ध

4.8 दासता सम्बन्धी विचार

4.9 सम्पति पर विचार

4.10 कानून का वर्गीकरण

4.11 एक्विनॉस : मध्ययुग के अरस्तू के रूप में

4.12 निष्कर्ष

4.13 शब्दावली

4.14 स्व–मूल्यांकन

4.15 सन्दर्भ सूची

ईकाई – 4

अध्याय – 5

मैंक्यावली

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 जीवन परिचय

5.4 अध्ययन पद्धति

5.5 मैक्यावली अपने युग के शिशु के रूप में

5.6 मानव स्वभाव की अवधारणा

5.7 राजनीति की नैतिकता और धर्म से पृथक्करण का सिद्धान्त

5.8 मैंक्यावली के शासन काल के बारे में विचार

5.9 मैंक्यावली : आधुनिक राजनीति चिन्तन के पिता के रूप में

5.10 निष्कर्ष

5.11 शब्दावली

5.12 स्व–मूल्यांकन

5.13 सन्दर्भ सूची

अध्याय– 6

थॉमस हॉब्स

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 जीवन परिचय

6.4 समकालीन परिस्थितियां

6.5 अध्ययन पद्धति

6.6 मानव प्रकृति की अवधारणा

6.7 प्राकृतिक अवस्था की अवधारणा

6.8 सामाजिक समझौता

6.9 सम्प्रभुता का सिद्धान्त

6.10 हॉब्स एक व्यक्तिवादी के रूप में

6.11 हॉब्स के चिन्तन का महत्व और देन

6.12 निष्कर्ष

6.13 शब्दावली

6.14 स्व–मूल्यांकन

6.15 सन्दर्भ सूची

ईकाई – 1

प्रस्तावना (Introduction)

राजनीतिक चिन्तन और विशेष रूप से पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन मुख्यतया प्लेटो और अरस्तू के राजनीतिक दर्शन के इर्द–गिर्द घूमती दिखाई देती है जिनके प्रभाव ने समकालीन राजनीतिक विकास तक में अपना प्रभाव छोड़ा है। इस ईकाई के अध्ययन से यह ज्ञात होगा कि सामाजिक व राजनीतिक उथल–पुथल किस प्रकार राजनीतिक सिद्धान्तों के निर्माण में योगदान देती है। यूनानी नगर राज्यों की राजनीतिक अस्थिरता ने प्लेटो जैसे दार्शनिकों को जन्म दिया। इस ईकाई में विद्यार्थी गुरू–शिष्य की महान परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी के सामाजिक व राजनीतिक विचारों का अध्ययन करेंगे। यूनानी दर्शन और चिंतन पाश्चात्य राजनीतिक दर्शन का आधार है जिसमें न्याय, राज्य, शिक्षा, समता, नागरिकता, संविधान आदि जैसे आधुनिक विषयों की विवेचना की जाती है।

उद्देश्य (Objective)

1. यूनानी तथा पाश्चात्य चिंतन के विकास को बेहतर तरीके से समझ सकेगें।
2. प्लेटों के विचारों पर तत्कालीन परिस्थितियों के प्रभाव का अध्ययन।
3. आधुनिक राज्यों के निर्माण की विकास प्रक्रिया को समझना।

अध्याय – 1

प्लेटो (Plato)

1.1 प्रस्तावना (Introduction).

ईसा पूर्व चौथी और पांचवी शताब्दी के जहां सिकन्दर जैसे महान शासकों और पैरीक्लीज जैसे प्रजातान्त्रिक नेताओं को जन्म दिया, वहां सुकरात, प्लेटो और अरस्तू जैसे महान् शासकों को भी जन्म दिया। प्लेटो समूचे पश्चिमी जगत का प्रथम राजनीतिक दार्शनिक माना जाता है क्योंकि इससे पूर्व पश्चिम में किसी ने भी राजनीतिक दर्शन का तर्कसंगत रूप से प्रतिपादन नहीं किया। प्लेटो ने राज्य के या राजा के दैवीय अवतरण के सिद्धान्त को नकार कर एक ऐसे राज्य तथा राजा की स्थापना का सिद्धान्त दिया जो नैतिकता तथा आदर्शों पर आधारित हो तथा जन कल्याण से प्रेरित हो। उसका यह कथन है कि राज्य व्यक्ति का ही विराट स्वरूप है और जिस प्रकार एक आदर्श व्यक्ति सत्, रज तथा तम गुणों का उचित संतुलन होता है, उसी प्रकार एक आदर्श राज्य में भी इन तीन गुणों सामंजस्य होना चाहिए। प्लेटो ने अपने जीवन में यूनान के राजनीतिक इतिहास का एक बहुत महत्वपूर्ण दौर देखा था। उसने अपने जीवनकाल में एथेन्स को स्पार्टा से हारते हुए देखा, उसने गुरू सुकरात को जहर पीते हुए देखा, एथेन्स में 'तीस अताताईयों' (Thirty Tyrants) का दुःशासन व नैतिक पतन होते हुए देखा। अतः उसने इन सभी बुराईयों को दूर करने की सोची। उसने शासन को एक विशेष बला मानते हुए, इसे एक शिक्षित, सर्वाधिक बुद्धिमान तथा दार्शनिक राजा द्वारा संचालित होना ही इस समस्या का समाधान समझा। शैली के अनुसार, ''वह प्रथम सम्भवतः अंतिम व्यक्ति था, जिसने इस बात का प्रतिपादन किया कि राज्य पर सर्वाधिक धनवान, सर्वाधिक महत्वाकांक्षी या सर्वाधिक चालाक व्यक्तियों के द्वारा नहीं वरन् सर्वाधिक बुद्धिमान व्यक्तियों द्वारा शासन किया जाना चाहिए।'' उसका यह भी मानना था कि राजनीतिक तथा आर्थिक शक्ति का पृथ्क्करण होना चाहिए। यही कारण था कि उसने साम्यवाद का सिद्धान्त दिया। प्लेटो की राजनीतिक चिन्तन में दिए गए योगदान को विश्व का कोई भी देश नकार नहीं सकता।

1.2 उद्देश्य (Objectives)–

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होगें–

- प्लेटो की जीवनी तथा तत्कालीन राजनीतिक परिवेश से परिचित होगें।
- राज्य की उत्पत्ति के विकासवादी सिद्धान्त से अवगत होगें तथा आदर्श राज्य की विशेषताओं को जानेगें।
- शासन को श्रेष्ठ बनाने के लिए तथा राजनीति की बुराईयों को दूर करने के लिए प्लेटों के द्वारा दिए गए न्याय के सिद्धान्त, शिक्षा के सिद्धान्त, साम्यवाद पर विचार, तथा आदर्श राजा की विशेषताओं से परिचित होगें।

1.3 जीवन परिचय (Life History)

महान् यूनानी दार्शनिक प्लेटो का जन्म 427 ई० पूर्व में एथेन्स के एक कुलीन परिवार में हुआ था। उनके पिता अरिस्टोन एथेन्स के अन्तिम राजा कोर्डस के वंशज तथा माता पेरिकतिओन यूनान के सोलन घराने से थी। प्लेटो का वास्ततिक नाम एरिस्तोकलीज था, उसके अच्छे स्वास्थ्य के कारण उसे व्यायाम शिक्षक ने इसका नाम प्लाटोन रख दिया। प्लेटो शब्द का यूनानी उच्चारण 'प्लातोन' है तथा प्लातोन शब्द का अर्थ चौड़ा – चपटा होता है। धीरे – धीरे प्लातोन के स्थान पर प्लेटो कहा जाने लगा। वह आरम्भ से ही राजनीतिज्ञ बनना चाहता था लेकिन उसका यह स्वपन पूरा न हो सका और वह एक महान् दार्शनिक बन गया।

प्लेटो के जन्म के समय एथेन्स यूनान का महान्तम राज्य था। लेकिन लगातार 30 वर्षों तक स्पार्टा और पलीपानेशिया के साथ युद्ध ने एथेन्स की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिला दी। 404 ई० पू० में एक क्रान्ति द्वारा ऐथन्स में लोकतन्त्र के स्थान पर तीस निरंकुशों का शासन स्थापित हुआ। प्लेटो को शासन में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया गया लेकिन उसने शासन में भाग लेने से इन्कार कर दिया। शीघ्र ही दूसरी क्रान्ति द्वारा एथेन्स में तीस निरंकुशों के

स्थान पर पुनः प्रजातन्त्र की स्थापना की गई। लेकिन इस शासन के दौरान सुकरात की मृत्यु ने उसके दिल ने प्रजातन्त्र के प्रति घृणा पैदा कर दी।

वह 18 या 20 वर्ष की आयु में सुकरात की ओर आकर्षित हुआ। यद्यपि प्लेटो तथा सुकरात में कुछ विभिन्नताएँ थीं लेकिन सुकरात की शिक्षाओं ने इसे अधिक आकर्षित किया। प्लेटो सुकरात का शिष्य बन गया। सुकरात के विचारों से प्रेरित होकर ही प्लेटो ने राजनीति के नैतिक व्याख्या की, सद्‌गुण को ज्ञान माना, शासन कला को उच्चतम कला की संज्ञा दी और विवेक पर बल दिया। 399 ई० पू० में सुकरात को मृत्यु दण्ड दिया गया तो प्लेटो की आयु 28 वर्ष थी। इस घटना से परेशान होकर वह राजनीति से विरक्त होकर एक दार्शनिक बन गए। उसे अपनी रचना 'रिपब्लिक' मे सुकरात के सत्य तथा न्याय को उचित ठहराने का प्रयास किया है। यह उसके जीवन का ध्यये बन गया। वह सुकरात को प्राणदण्ड दिया जाने पर एथेन्स छोड़कर मेगरा में चला गया। क्योंकि वह लोकतन्त्र से घृणा करने लग गया था। मेगरा जाने पर 12 वर्ष का इतिहास अज्ञात है। लोगों का विचार है कि इस दौरान वह इटली, यूनान और मिस्त्र आदि देशों में घूमता रहा। वह पाइथागोरस के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए 387 ई० पू० में इटली और सिसली गया। सिसली के राज्य सिराक्यूज में उसकी भेंट दियोन तथा वहाँ के राजा डायोनिसियस प्रथम से हुई। उसके डायोनिसियस से कुछ बातों पर मतभेद हो गए और उसे दास के रूप में इजारन टापू पर भेज दिया गया। उसे इसके एक मित्र ने वापिस एथेन्स पहुँचाने में उसकी मदद की।

प्लेटो ने 386 ई० पू० में इजारन टापू से वापिस लौटकर अपने शिष्यों की मदद से एथेन्स में अकादमी खोली जिसे यूरोप का प्रथम विश्वविद्यालय होने का गौरव प्राप्त है। उसने जीवन के शेष 40 वर्ष अध्ययन – अध्यापन कार्य में व्यतीत किए। प्लेटो की इस अकादमी के कारण एथेन्स यूनान का ही नहीं बल्कि सारे यूरोप का बौद्धिक केन्द्र बन गया। उसकी अकादमी में गणित और ज्यामिति के अध्ययन पर विशेष जोर दिया जाता था। उसकी अकादमी के प्रवेश द्वार पर यह वाक्य लिखा था – "गणित के ज्ञान के बिना यहाँ कोई

प्रवेश करने का अधिकारी नहीं है।" यहाँ पर राजनीतिज्ञ, कानूनवेता और दार्शनिक शासक बनने की भी शिक्षा दी जाती थी।

डायोनिसियस प्रथम की मृत्यु के बाद 367 ई० पू० डायोनिसियस द्वितीय सिराक्यूज का राजा बना। अपने मित्र दियोन के कहने पर वह वहाँ जाकर राजा को दर्शनशास्त्र की शिक्षा देने लग गया। इस दौरान राजा के चाटुकारों ने दियोन के खिलाफ बोलकर उसे देश निकाला दिलवा दिया और उसकी सम्पत्ति व पत्नी जब्त कर ली। इससे नाराज प्लेटो एथेन्स वापिस चला गया। 361 ई० पू० में डायोनिसियस ने उसे दोबारा सिराक्यूज आने का निमन्त्रण दिया, परन्तु वह यहाँ आने को तैयार नहीं था, लेकिन तारेन्तय के दार्शनिक शासक की प्रेरणा से वह वहाँ आकर डायोनियस को दर्शनशास्त्र का ज्ञान देने लग गया। लेकिन दोबारा डायोनिसिथस व प्लेटो में सैद्धान्तिक बातों पर मतभेद हो गए और वह वापिस एथेन्स आ गया। इससे उसकी आदर्शवादिता को गहरा आघात पहुँचा और वह व्यावहारिकता की ओर मुड़कर 'The Laws' नामक ग्रन्थ लिखने लग गया। अपने किसी शिष्य के आग्रह पर वह एक विवाह समारोह में शामिल हुआ और वहीं पर सोते समय 81 वर्ष की अवस्था में उसकी मृत्यु हो गयी।

1.4 सुकरात का प्रभाव (Influence of Socrates)

प्लेटो का दर्शन सिर्फ उसकी काल्पनिक मस्तिष्क की ही उपज नही, अपितु परिवार, देश, काल एवं पर्व कालीन दार्शनिकों के विचारों से भी प्रभावित है, राजनीतिज्ञों के परिवार से सम्बन्धित होने के कारण वह स्वभाव से ही राजनीतिक समस्याओं में रूचि लेने लगा था। प्लेटो के विचारों पर तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के प्रभाव के साथ पूर्ववर्ती दार्शनिकों, पाईथागोरस, पार्मिनीडिज, हीराक्लीटस, सुकरात आदि विचारकों का भी प्रभाव पड़ा, लेकिन उपर्युक्त सभी परिस्थितियों व विचारकों में से प्लेटो पर सुकरात का प्रभाव कुछ ज्यादा ही था। वह 20 वर्ष की आयु में सुकरात के सम्पर्क में आया और आजीवन उसका शिष्य रहा। सुकरात की जो आकृति उसके हृदयपटल पर अंकित हो चुकी थी, वह कभी धूमिल नहीं हुई। प्रो० मैक्सी कहते हैं कि – "प्लेटो में सुकरात पुनर्जीवित हो

गया। ... प्लेटो के मस्तिष्क और आत्मा ने अपने गुरू के विचारों और भावनाओं को पूर्ण रूप से हृदयंगम कर लिया।" सुकरात का प्लेटो पर निम्नलिखित प्रभाव हैः–

1. **सद्‌गुण ही ज्ञान है (Virtue is Knowledge) :** प्लेटो की पुस्तक रिपब्लिक का मुख्य विचार यही है कि 'सद्‌गुण ही ज्ञान है'। प्लेटो ने यह विचार अपने गुरू सुकरात से ग्रहण किया है। सुकरात सद्‌गुण और ज्ञान को एक सिक्के के दो पहलू मानता था। सुकरात के अनुसार सत्य ज्ञान ही सद्‌गुण है। सत्य कभी अकल्याणकारी नहीं हो सकता। ज्ञान सत्य की आत्मानुभूति है। सत्य को आचरण मे लाए बिना सच्चे ज्ञान की अनुभूति निरर्थक व निष्फल है। मेयर के शब्दों में – "यदि हम ज्ञान और आचरण को एक मानें, तभी एक स्थायी मापदण्ड बना सकते हैं। जिस ज्ञान का आचरण के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, जो ज्ञान केवल ज्ञान के लिए सम्पादित किया जाता है वह ज्ञान निरर्थक है। ज्ञान केवल कुछ सूचनाओं का संकलन मात्र नहीं है। इसका चरित्र निर्माण के साथ गहरा सम्बन्ध है। ज्ञान बुद्धि के माध्यम से सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। यह इच्छा शक्ति और भावनाओं का निर्माण करता है। साहस, संयम, न्याय आदि सभी गुणों की उत्पत्ति ज्ञान से होती है। साहसी व्यक्ति वही बन सकता है, जो भय तथा निर्भीकता का ज्ञान रखता हो।" प्लेटो की पुस्तक रिपब्लिक का सार 'सद्‌गुण ही ज्ञान है' का सिद्धान्त है जो सुकरात की सबसे महत्त्वपूर्ण देन है।

2. **सद्‌गुण का स्वरूप (Nature of Virtue) :** सुकरात की तरह प्लेटो का भी यह मानना था कि प्रत्येक वस्तु की भलाई या उत्कृष्टता इस बात में है कि उसमें वह गुण अवश्य हो जिसकी सम्पूर्ति के लिए उसका जन्म हुआ है। उत्कृष्टता शब्द सद्‌गुण के लिए प्रयुक्त यूनानी शब्द 'अरैती' (Arete) का हिन्दी शब्दार्थ है। चाकू का गुण काटना है। इसका अच्छा या बुरापन इस बात पर निर्भर करता है कि यह कितनी अच्छी या बुरी तरह काट सकता है। ठीक इसी प्रकार मनुष्य भी अन्य मनुष्यों की तुलना में ही अच्छा या बुरा हो सकता है। इसकी अच्छाई और बुराई दो तरह की होती है – एक अपनी वृत्ति सम्बन्धी एवं दूसरी व्यवसाय सम्बन्धी। कोई व्यक्ति अच्छा या बुरा चित्रकार, मूर्तिकार, डॉकटर या

वकील हो सकता है, किन्तु वही मनुष्य अच्छा हो सकता है जिसमें दूसरे मनुष्य को अच्छे बनाने वाले गुण प्रचुर मात्रा में विद्यमान हों। सुकरात की तरह प्लेटो भी एक अच्छे व्यक्ति में विवेक, साहस, संयम, न्याय – चार गुणों का होना आवश्यक मानते हैं, क्योंकि ये चारों गुण मानवीय गुण और उत्कृष्टता (Human Virtue and Goodness) का निर्माण करते हैं।

3. **राजनीति एक कला है (Politics is an Art) :** प्लेटो ने भी सुकरात का अनुसरण करते हुए शासन संचालन को डॉक्टरी या नौ – चलन की तरह एक कला माना है। इसलिए शासन के विशेषज्ञों को ही शासन संचालन का अधिकार दिया जाना चाहिए। जिस प्रकार हर व्यक्ति एक कुशल मूर्तिकार या निपुण संगीतज्ञ नहीं हो सकता, उसी प्रकार हर व्यक्ति योग्य शासक भी नहीं बन सकता। सुकरात ने कहा था, "जनता बीमार है, इसलिए हमें अपने स्वामियों का इलाज करना चाहिए।" प्लेटो भी यह मानता है कि जनता बीमार रोगी के समान होती है और डॉक्टर एक सामाजिक चिकित्सक की तरह रोगी को ठीक करने के लिए कड़वी दवाइयाँ भी देता है। ठीक उसी तरह आदर्श शासक को जनता की बीमारी ठीक करने के लिए उसे कड़वी दवाई देनी पड़ती है।

4. **सत्य का सिद्धान्त (Theory of Reality) :** राजनीतिक चिन्तन में सुकरात के वास्तविकता के सिद्धान्त को आदर्शवाद का जनक माना जाता है। प्रो० कोकर के अनुसार, "प्लेटो के दार्शनिकवाद का आधार सुकरात का वास्तविक सिद्धान्त है।" प्लेटो सुकरात की इस धारणा से पूर्णतः सहमत है कि वस्तुओं की वास्तविकता उनके मूर्त रूप में नहीं वरन् उनके विचार में है। किसी वस्तु की वास्तविक सत्ता इन्द्रियों द्वारा प्रतीत नहीं होती है, वरन् उसकी वह अमूर्त धारणा है जो कि उसके मन में विद्यमान रहती है। मूर्त रूप वास्तविक सत्ता की एक अपूर्ण अभिव्यक्ति है; उसकी पूर्णता तो उस वस्तु के विचार में ही रहती है।

5. **ज्ञान का सिद्धान्त (Theory of Knowledge) :** प्लेटो भी सुकरात की तरह ज्ञान को दो प्रकार का मानता है – (1) सापेक्ष (Relative) (2) निरपेक्ष (Absolute)। सापेक्ष ज्ञान इन्द्रियों

द्वारा प्राप्त अपूर्ण ज्ञान होता है जो देश, काल की परिस्थितियों से प्रभावित होने के कारण बदलता रहता है। इसका स्वरूप ज्ञाता की मनोवृति तथा दृष्टिकोण पर भी निर्भर करता है। इस तरह का ज्ञान, ज्ञान न होकर ज्ञान की तरह होता है। इसके विपरीत निरपेक्ष ज्ञान अपरिवर्तनशील, वैज्ञानिक, वस्तुनिष्ठ (Objective) तथा तर्कसंगत (Rational) होता है। इस ज्ञान की अनुभूति विशुद्ध तथा निर्लिप्त बुद्धि को ही हो सकती है। यह देश, काल की सीमा से बाहर की वस्तु होता है। वास्तविक ज्ञान निरपेक्ष ज्ञान होता है, इसलिए मानव जीवन का परम लक्ष्य निरपेक्ष ज्ञान है।

6. **दार्शनिक शासक की तानाशाही का सिद्धान्त (Theory of Dictatorship of Philosopher King) :** सुकरात लोकतन्त्र को मूर्खों व अज्ञानियों का शासन मानता था, इस व्यवस्था के अन्तर्गत सभी को वोट देने, शासन कार्यों में भाग लेने, न्याय करने का समान अधिकार प्राप्त था। कभी – कभी शासकों को पाँसा फेंककर या लाटरी द्वारा चुना जाता था। वह एथेन्स की सरकार की घोर निन्दा करता था। इसलिए अज्ञानी शासकों ने सुकारात को प्राणदण्ड दे दिया। प्लेटो ने भी व्यावहारिक तौर पर एथेन्स प्रजातन्त्र की बुराइयाँ देख ली थी। इसलिए उसने भी अपने गुरू सुकरात की तरह प्रजातन्त्र की निन्दा की और लोकतन्त्र के स्थान पर दार्शनिक शासक की तानाशाही का समर्थन किया।

7. **द्वन्द्वात्मक पद्धति (Dialectical Method):** सुकरात के समय में यूनान में वाद – विवाद द्वारा अपने विराधी विचारों का खण्डन तथा अपनी विचारधारा को तर्कसंगत ठहराने के प्रयास किये जाते थे। यह सत्य अनुसंधान करने की पद्धति द्वन्द्वात्मक पद्धति कहलाती थी। प्लेटो ने भी इस वाद – विवाद की पद्धति द्वारा सत्य तक पहुँचाने के प्रयास किये। उसकी समस्त रचनाएँ वाद – विवाद के रूप में संवादों पर ही आधारित है। अतः प्लेटो ने यह पद्धति सुकरात से ग्रहण की।

इस प्रकार सुकरात का प्लेटो पर प्रभाव स्पष्ट है। बर्नेट के शब्दों में – "प्लेटो का दर्शन सुकरात के ही ज्ञान के जीवाणुओं का वह विकास है जो प्लेटोनिक निष्कर्षों में 'रिपब्लिक'

में उद्भूत हुआ है।" मैक्सी के शब्दों में – "प्लेटो के रूप में सुकरात ने फिर जन्म लिया। इस अर्थ में नहीं कि प्लेटो अपने गुरू की सच्ची नकल था वरन् इस अर्थ में कि प्लेटो के मस्तिष्क और आत्मा ने अपने गुरू के विचारों और मान्यताओं को पूर्णता से आत्मसात् किया और उसने अपने उच्च बुद्धि कौशल से एक ऐसे सुकरात की रचना की जो एथेन्स की गलियों में घूमने वाले सुकरात से उच्चतर था। प्लेटो द्वारा रचित सुकरात एक प्रकार का देवता है, जो केवल वे ही बातें नहीं कहता जिनकी वास्तविकता की सुकरात से आशा की जा सकती है वरन् वह ऐसी बातें भी कहता है जो प्लेटो की चमत्कारपूर्ण कल्पना उससे कहलाना चाहती है।"

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्लेटो की 'रिपब्लिक' में सुकरात से ग्रहण किए गए सिद्वान्तों के 'सद्गुण ही ज्ञान है का सिद्धान्त', 'सत्य का सिद्धान्त', 'ज्ञान का सिद्धान्त' बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। मनुष्य के अच्छा बनने के लिए साहस, विवेक, संयम और न्याय के चार गुणों का होना आवश्यक है। वह शासन को एक कला मानता है। शासन का संचालन तो दार्शनिक राजा के ही हाथ में ठीक रहता है। अतः प्लेटो पर सुकरात का प्रभाव स्पष्ट व अमिट है। इसलिए प्लेटो सुकरात का ऋणी है।

समकालीन परिस्थितियाँ (Contemporary Situations)

किसी भी विचारक को समझने के लिए उसके वातावरण के बारे में समझना आवश्यक होता है। प्लेटो के विचार भी तत्कालीन वातावरण से अवश्य प्रभावित हुए हैं। प्लेटो ने अपने समय के नगर राज्यों, विशेषकर एथेन्स में कुछ त्रुटियाँ देखी जिन पर उसने अपनी रचनाओं में विचार किया है। उस समय एथेन्स में वातावरण निम्नलिखित परिस्थितियों पर आधारित था :–

1. **व्यक्तिवाद का अतिरेक अथवा स्वार्थ का प्रभुत्व (Excessive Individualism or Dominance of Selfishness)** : उस समय व्यक्तिवाद चरम सीमा पर था। लोग अपने अपने स्वार्थों की पूर्ति में लगे हुए थे। सत्तारूढ़ शासक वर्ग अपने राजनीतिक

अधिकारों का प्रयोग अपने आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए कर रहा था। राजनीतिक पदों की कोई पवित्रता नहीं थी। वे शासक वर्ग के हितों को बढ़ाने वाले थे। राजनीति में सोफिस्टों का ही प्रभाव था। सोफिस्टों के अनुसार राज्य व्यक्तियों का एक समूह मात्र था और इसका लक्ष्य व्यक्ति था। व्यक्तिवाद की इस भावना ने एथेन्स को विरोध नगरों में बाँट दिया था। नगर राज्यों अल्पतन्त्रीय सरकारें थी और उनकी स्थिति प्रजातन्त्रीय नगरों से भी बुरी थी। शासक दल धनी वर्ग का प्रतिनिधि था। हितों की आपसी टक्कर ने राजनीतिक अस्थिरता फैला रखी थी। अल्पतन्त्रों और प्रजातन्त्रों में पाई जाने वाली राजनीति धनलिप्सा और स्वार्थ–सिद्धि का उपकरण मात्र थी। परस्पर मतभेदों ने एथेन्स का परस्पर विरोधी राज्यों में बाँट रखा था। प्लेटो के शब्दों में – "प्रत्येक राज्य में दो भिन्न – भिन्न राज्य थे – अमीरों का राज्य तथा गरीबों का राज्य।" प्लेटो ने देख लिया था कि इस समस्या का भूतकाल स्वार्थ की प्रवृत्ति अथवा धनलिप्सा था। अतः इस बुराई को दूर करने के लिए प्लेटो ने शासकों के लिए धन, सम्पत्ति अथवा घर–बार अपनाने के अधिकार का विरोध किया।

2. **अव्यवसायवादी हस्तक्षेप (Amateurish Meddlesomeness) :** उस समय एथेन्स में अव्यवसायवादी हस्तक्षेप की मनोवृत्ति थी तथा यह लॉटरी की प्रथा में व्यक्त होती थी। लॉटरी द्वारा किसी भी अज्ञानी या मूर्ख व्यक्ति को राजनीतिक क्रियाओं के लिए चुन लिया जाता था। प्लेटो इस दोष से अच्छी तरह परिचित था। वह कार्यात्मक विशिष्टीकरण का सुझाव देता है जिसका तात्पर्य था कि प्रत्येक व्यक्ति वही कार्य करे जिसके लिए वह अपने स्वभाव एवं आत्मा के अनुसार योग्य हो और जिसमें उसे कुशलता व दक्षता प्राप्त हो। वह दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप न करे। उसका विचार था कि शासकों को दर्शनशास्त्र तथा राज्य शासन की कलाओं का विशेष प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि 'अव्यवसायीवादी हस्तक्षेप का सिद्धान्त' नष्ट हो सके और शासन क्रियाओं में योग्य व्यक्ति ही भाग ले सके।

3. **अज्ञानता का शासन (Rule of Ignorance) :** एथेन्स में प्लेटो के समय शासन पर अज्ञानी व मूर्ख राजाओं का अधिकार था। अपनी अज्ञानता के कारण उन्होनें सुकरात को भी मृत्यु – दण्ड दे दिया था। इस घटना से प्लेटो बहुत दुखी था। 'तीस निरंकुशों' के शासन के अन्त पर स्थापित प्रजातान्त्रिक शासन पहले वाले ही दोषों से ग्रसित था। शासक वर्ग लॉटरी द्वारा चुना जाता था। मूर्ख व अयोग्य व्यक्ति भी इस पद पर आसीन हो सकता था। प्लेटो ने 'सद्गुण ही ज्ञान है' की उक्ति के आधार पर दार्शनिक राजा का सुझाव दिया। प्लेटो का प्रमुख उद्देश्य अज्ञानी शासकों के शासन को स्पष्ट करना था।

4. **आर्थिक असमानता (Economic Inequality) :** प्लेटो के समय में शासक वर्ग धनी वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करता था। राजनीति धन कमाने का साधन थी। जनता में अमीर – गरीब का अन्तर शीर्ष पर था। शासक वर्ग धन–लिप्सा के कारण जनता का शोषण कर रहा था। स्वार्थ की भावना जनकल्याण की भावना से सर्वोपरि थी। अल्पतन्त्र व प्रजातन्त्र दोनों के शासक राजनीति को आर्थिक लाभ का साधन मानते थे। आर्थिक असमानता ही सामाजिक संघर्ष का प्रमुख कारण थी। बार्कर के शब्दों में – "अल्पतन्त्रों और प्रजातन्त्रों में पाई जाने वाली राजनीति तथा धन – लिप्सा के मिश्रण से उत्पन्न संभ्रान्ति ही नागरिक कलहों अथवा सामाजिक संघर्ष का प्रमुख कारण थी।"

5. **राजनीतिक अस्थिरता (Political Instability) :** प्लेटो के समय में एथेन्स में राजनीतिक वातावरण दूषित हो चुका था। यूनान छोटे – छोटे राज्यों में बँट गया था। सभी राज्य स्वार्थ– सिद्धि की प्रवृति पर आधारित थे। राज्य भी उप–राज्यों में बँटा हुआ था। शासन की बागडोर अयोग्य शासकों के हाथों में थी। निरन्तर राजनीतिक विरोध की स्थिति बनी रहती थी। प्लेटो ने अपनी जीवनकाल में ही 30 वर्षों तक एथेन्स को स्पार्टा तथा फ्लीयोनेशिया के साथ संघर्षरत देखा था। क्रान्ति या विद्रोह द्वारा एथेन्स में तीस 'निरंकुशों'के शासन की स्थापना हुई थी। जनता व

शासक हिंसात्मक कार्यों व असंवैधानिक कार्यों में लिप्त थे। निरन्तर राजनीतिक अस्थिरता का वातावरण बना रहता था। इससे दुखी होकर प्लेटो ने दार्शनिक राजा का शासन स्थापित करने की बात कही ताकि इस राजनीतिक अस्थिरता के वातावरण को खत्म किया जा सके।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि प्लेटो ने तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ रिपब्लिक की रचना की और तत्कालीन एथेन्स की समस्त बुराइयों को दूर करने के लिए सुझाव प्रस्तुत किए।

महत्त्वपूर्ण रचनाएँ (Important Works)

प्लेटो की रचनाएँ काल के आधार पर चार भागों में बाँटी जा सकती हैं। प्रथम वर्ग में सुकरात से सम्बन्धित रचनाएँ हैं। इन रचनाओं के विचार सुकरात के विचारों की ही अभिव्यक्ति है। अपोलॉजी (Apology), क्रीटो (Crito), यूथीफ्रो (Euthyphro), जोर्जियस (Gorgias) आदि प्रथम वर्ग की रचनाएँ है। ये सभी रचनाएँ सुकरात की मृत्यु से सम्बन्धित हैं, प्रथम दो रचनाएँ राज्य की आज्ञा का पालन तथा उसकी सीमा से सम्बन्धित है।

द्वितीय वर्ग की रचनाएँ 380 ई० पू० की है। ये प्लेटो के अपने विचारों से सम्बन्धित हैं। इस वर्ग में मीनो (Meno), प्रोटागोरास (Protagoros), सिंपोजियम (Symposium), फेडो (Phaedo), रिपब्लिक (Republic) और फेड्रस (Phaedrus) आदि रचनाएँ आती हैं। ये सभी रचनाएँ प्लेटो की चरमोत्कृष्ट साहित्यिक एवं दार्शनिक प्रतिभा को प्रतिबिम्बित करती है।

तीसरे वर्ग में संवाद या कथोपकथन (Dialogues) आते हैं जिनका सम्बन्ध प्लेटो की शैली, विचार और व्यक्तित्व से अधिक द्वन्द्वात्मक पद्धति से है। पार्मिनीडिज (Parmenides), थीटिटस (Theaetetus), सोफिस्ट (Sophist), स्टेट्समैन (Statesman) आदि रचनाएँ आती हैं।

अन्तिम वर्ग में फीलिबस (Philobus), टायमीयस (Timaeus), लॉज (Laws) आदि ग्रन्थ आते हैं। लॉज प्लेटो का अन्तिम ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में सुकरात एक चरित्र के रूप में पूर्णतः विलीन हो जाता है।

इस रचनाओं में प्लेटो की सर्वोत्तम रचना रिपब्लिक (Republic) है जिसके द्वारा प्लेटो राजनीति, दर्शन, शिक्षा, मनोविज्ञान, कला, नीतिशास्त्र आदि के क्षेत्र में एक मेधावी व सर्वश्रेष्ठ विचारक के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। यह रचना राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में प्लेटो की एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण व अमूल्य देन मानी जाती है।

अध्ययन शैली और पद्धति (Style and Method of Study)

प्लेटो ने प्रत्येक विषय को स्पष्ट करने के लिए सशक्त, रोचक और आकर्षक संवाद शैली अपनाई है। उसकी रचनाओं में केवल एक पात्र का दूसरे पात्र से वार्तालाप ही नहीं होता बल्कि दर्शन कविता के साथ, विज्ञान कला के साथ, सिद्धान्त व्यवहार के साथ, राजनीति अर्थशास्त्र के साथ, भावना विवेक के साथ, शरीर आत्मा के साथ, व्यायाम संगीत के साथ स्वर में स्वर मिलाकर बोलते हुए प्रतीत होते हैं। इसके चलते जहाँ प्लेटो को समझना कुछ कठिन होता है, वहाँ उन्हें पढ़ना उतना ही आनन्द देता है। क्रॉसमैन ने लिखा है – "मैं जितना अधिक रिपब्लिक को पढ़ता हूँ, उतना ही इससे घृणा करता हूँ, फिर भी इसे बार–बार पढ़े बिना अपने आप को रोक नहीं पाता हूँ।" उसके विचारों में औपन्यासिक रोचकता है। उसने पौराणिक दृष्टान्तों एवं कथाओं को शामिल करके रचनाओं को और अधिक मनोरंजक बना दिया है। प्लेटो का दर्शनशास्त्र भव्य रूप में प्रकट हुआ है। अतएव उसने ऐसी शैली अपनाई है जो सत्य और सौन्दर्य के समन्वय को प्रकट करती है। प्लेटो ने अपने चिन्तन में अनेक पद्धतियों का प्रयोग किया है। ये पद्धतियाँ नैतिक, राजनीतिक और अध्यात्मिक समस्याओं के विश्लेषण के लिए प्रयोग में लाई गई हैं जिनमें प्रमुख निम्न प्रकार से है :

प्लेटो की सबसे प्रमुख पद्धति द्वन्द्वात्मक पद्धति (Dialectical Mehtod) है। प्लेटो ने यह पद्धति अपने गुरू सुकरात से ग्रहण की है। प्लेटो ने रिपब्लिक, स्टेटसनैन, लॉज, क्रीटो आदि ग्रन्थों में इस पद्धति का प्रयोग किया गया है। यह पद्धति चिन्तन की वह पद्धति है, जिसके द्वारा प्रश्नोत्तर एवं तर्क–वितर्क के आधार पर किसी सत्य की खोज की जाती है। इस पद्धति के द्वारा मस्तिष्क में छिपे विचारों को उत्तेजित कर उन्हें सत्य की ओर ले जाने का

प्रयास किया जाता है। इसलिए अपने मौलिक रूप में द्वन्द्वात्मक (Dialectical) पद्धति का अर्थ वार्तालाप की प्रक्रिया से है; प्रश्न पूछने और उत्तर देने की शैली से है; तर्क – वितर्क की पद्धति से है; किसी विषय पर अपना मत प्रकट करने और दूसरे के मत को जानने की विधि से है। वही व्यक्ति किसी विषय पर अपना मत प्रकट कर सकता है, जिसे उस विषय का ज्ञान होता है। ग्रीक जगत में यह विधि कोई नई नहीं है। सुकरात ने कहा कि जब लोगों में परस्पर एक साथ मिलाकर विचार करने की प्रथा आई, तभी इस विधि का जन्म हुआ। लेकिन प्लेटो ने इसे वार्तालाप की प्रणाली मात्र न मानकर इसे सत्य की खोज करने की विधि माना, इस विधि का प्रयोग प्लेटो ने प्रचलित विश्वासों व धारणाओं का खण्डन करके नए विश्वासों व धाराणाओं की स्थापना हेतु किया। प्लेटो का विश्वास था कि एक विचार को धराशायी करके ही दूसरे विचार को प्रतिष्ठित किया जा सकता है। बार्कर का मत है कि – "वैचारिक क्षेत्र में सत्य को तभी एक विजयी के रूप में प्रतिष्ठित किया जा सकता है जब एक रूद्र विचार दूसरे विचार को निगलता है।" प्लेटो का विश्वास था कि धीरे – धीरे ही सत्य की ओर बढ़ा जा सकता है। विशिष्ट विचार को 'अनेक में एक' और 'एक में अनेक' की खोज द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। यह विशिष्ट विचार ही सत्य है। सत्य की खोज ही इस पद्धति का उद्देश्य है। डायलेक्टिक की उत्पत्ति इसी मौलिक तथ्य से होती है कि सभी वस्तुओं में एकता और अनेकता का सामंजस्य पाया जाता है। उसने अपने ग्रन्थ रिपब्लिक में यह स्पष्ट कर दिया है किस प्रकार प्रत्येक वस्तु का रूप दूसरी वस्तुओं के रूप से जुडा होता है। सभी वस्तुओं के रूप एक – दूसरे से मिलकर सत् या शिव का स्वरूप धारण करते हैं। प्लेटो ने संवाद प्रणाली के माध्यम से पात्रों के द्वारा अन्तिम सत्य का पता लगाने की कोशिश की है। उसने संवाद – शैली को विचार क्रान्ति के सर्वोत्तम एवं रूचिकर साधन के रूप में प्रयोग किया है। इससे पात्रों व श्रोताओं के दिमागों में सत्य को ठूँसने की आवश्यकता नहीं होती। प्लेटो ने इस पद्धति को प्रयोग तीन उद्देश्यों के लिए किया है – (1) सत्य की खोज के लिए (2) सत्य की अभिव्यक्ति और प्रचार के लिए (3) सत्य की परिभाषा के लिए।

द्वन्द्वात्मक पद्धति एक महत्त्वपूर्ण पद्धति होने के बावजूद भी आलोचना का शिकार हुई। आलोचकों ने कहा कि इस पद्धति में प्रश्न अधिक पूछे जाते हैं, उत्तर कम दिए जाते हैं, इसलिए यह मस्तिष्क को भ्रांत करती है। यह सत्य को असत्य और असत्य को सत्य सिद्ध कर सकती है। सत्य की प्राप्ति वाद – विवाद से न होकर मनन से ही हो सकती है। वाकपटुता के बल पर धूर्त व्यक्ति समाज में अपना स्थान बना सकते हैं। यह पद्धति शंकाओं का समाधान करने की बजाय भ्रांति ही पैदा करती है। लेकिन अनेक त्रुटियों के बावजूद भी इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि प्लेटो ने इसके आधार पर न्याय सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। यह विचार और चिन्तन करने की शक्ति को उत्प्रेरित करने की क्षमता रखती है।

प्लेटो ने अपने राजनीतिक चिन्तन में निगमनात्मक पद्धति (Deductive Method) का भी काफी प्रयोग किया है। इस पद्धति का सार यह है कि इसमें सामान्य से विशेष की ओर पहुँचा जाता है। इसका अर्थ यह है कि सामान्य सिद्धान्त के आधार पर विशेष के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकाले जाते हैं। प्लेटो ने दार्शनिक राजा का सिद्धान्त इसी पद्धति पर आधारित किया है। प्लेटो के अनुसार, "सद्‌गुण ही ज्ञान है"। दार्शनिक ज्ञानी होते हैं, इसलिए वे सद्‌गुणी भी होते हैं और उन्हें ही शासक बनना चाहिए। इसी पद्धति का प्रयोग करके प्लेटो ने वर्ग – सिद्धान्त, शिक्षा – सिद्धान्त और दार्शनिक शासक का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। प्लेटों ने अपने सामान्य सिद्धान्त के आधार पर परम्पराओं और रूढ़ियों को तिलांजलि देते हुए निगमनात्मक पद्धति का ही प्रयोग किया है। इस पद्धति को सामान्य से विशिष्ट की ओर चलने वाली पद्धति भी कहा जाता है ।

प्लेटो ने अपने चिन्तन में विश्लेषणात्मक पद्धति (Analytical Method) का भी प्रयोग किया है। इस पद्धति में वस्तु के मौलिक तत्त्वों को अलग – अलग करके अध्ययन किया जाता है ताकि सम्पूर्ण वस्तु का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो सके। वह आत्मा के तीन तत्त्व – विवेक, साहस एवं तृष्णा को मानकर, इसने पृथक्– पृथक् अध्ययन द्वारा मानव स्वभाव का वर्णन करता है। वह दार्शनिक राजा, सैनिक और उत्पादक वर्ग के अलग – अलग अध्ययन के आधार

पर इनसे निर्मित राज्य का विश्लेषण करता है। प्लेटो ने अपने चिन्तन में सादृश्य विधि (Analogy Method) का भी प्रयोग किया है। उसने अपने सादृश्यों और पौराणिक कथाओं का प्रयोग किया है। उसने इन्हें कहीं तो कलाओं से लिया है और कहीं पशु – जगत् से। रिपब्लिक में कुत्ते के सादृश्य को अनके स्थानों पर तर्क का आधार बनाया गया है कि जिस प्रकार चौकीदार के काम के लिए कुत्ता व कुत्तिया एक समान है, उसी प्रकार राज्य के संरक्षक बनने के लिए पुरूष और स्त्री समान हैं। कलाओं के सादृश्य में वह राजनीति को कला मानता है। अतः अन्य कलाओं की भाँति इसमें भी ज्ञान का आधार होना चाहिए। रिपब्लिक में दार्शनिक राजा की धारणा का आधार अन्य कलाकारों के सादृश्य पर आधारित है। उसका मानना है कि प्रत्येक राजनीतिज्ञ को अपने कार्य का पूरा ज्ञान होना चाहिए। उसका कहना है कि कलाकार की भाँति राजनीतिक कलाकार को भी व्यवहार के नियमों के प्रतिबन्ध से मुक्त रखना चाहिए। इस पद्धति का अर्थ है कि प्रत्येक वस्तु का कुछ उद्देश्य है और वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयासरत है और उसी की तरफ अग्रसर होती है। अर्थात् प्रत्येक वस्तु की गति उसे उद्देश्य द्वारा ही निरूपति होती है। प्लेटो के चिन्तन में उसके शिक्षा सिद्धान्त का दार्शनिक आधार सोद्देश्यता ही है। अतः प्रत्येक वास्तविक राज्य का उद्देश्य आदर्श राज्य की तरफ उन्मुख होना है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्लेटो ने अपने चिन्तन में संवाद शैली का प्रयोग करते हुए बहुत सी पद्धतियों का अनुसरण किया है। उसकी द्वन्द्वात्मक पद्धति का हीगेल और मार्क्स के विचारों पर, सोद्देश्य पद्धति का अरस्तू, दाँते एवं ग्रीन पर प्रभाव पड़ा है। प्लेटो की अध्ययन – पद्धति अनेक पद्धतियों का मिश्रण है। प्लेटो ने आवश्यकतानुसार सभी पद्धतियों का प्रयोग किया है।

1.5 आदर्श राज्य की धारणा (Conception of Ideal State)

अपने सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'रिपब्लिक' में प्लेटो ने एक आदर्श राज्य का चित्रण किया है जिसका प्रमुख उद्देश्य न्याय की प्राप्ति है। उसके आदर्श राज्य की कल्पना अत्यन्त मौलिक है। इस राज्य के चित्रण के कई कारण है। पहला – प्लेटो आदर्शवादी होने के नाते पदार्थ की

बजाय विचार को ही वास्तविक मानता है। उसके अनुसार वास्तविकता किसी वस्तु में नहीं बल्कि वस्तु के बारे में जो भाव है, उसमें है। इस तर्क के आधार पर प्लेटो मौजूदा राज्यों को परिवर्तनशील, क्षणभंगुर और अवास्तविक मानता था। दूसरा – अपने समय की एथेन्स की राजनीतिक तथा सामाजिक बुराइयों से प्लेटो चिन्तित था, उन्हें सुधारने के लिए उसने आदर्श राज्य की कल्पना की। तीसरा – प्लेटो उस समय के युनानी नगर राज्यों के शासकों के लिए राज्य का एक आदर्श प्रस्तुत करना चाहता था ताकि वे अपने नगर राज्यों में राजनीतिक और सामाजिक सुधार ला सके।

प्लेटो के आदर्श राज्य को सेबाइन जैसे लेखक कल्पना की उड़ान मानते हैं। उसका आदर्श राज्य अव्यावहारिक है। डनिंग इसे रोमांस कहते हैं। प्लेटो स्वयं स्वीकार करता है कि उसके आदर्श राज्य जो कि दर्शन के शासन और साम्यवाद पर आधारित है, को क्रियान्वित करना बहुत ही कठिन है। प्लेटो ने आदर्श राज्य का चित्रण एक चित्रकार की तरह किया है। जिस प्रकार एक चित्रकार अपने चित्र को सुन्दर बनाने के लिए इस बात पर ध्यान नहीं देता कि उसकी कल्पना प्रकृति में कहीं विद्यमान है या नहीं, उसी प्रकार प्लेटो आदर्श राज्य को आदर्श के अनुरूप बनाने के लिए उसकी व्यावहारिकता के प्रति ज्यादा ध्यान नहीं देता। यह राज्य अव्यवहारिक है जिसका नमूना स्वर्ग में तैयार किया गया है। प्लेटो जिस राज्य को चित्रित करते हैं वह सबसे अच्छे राज्य का नमूना है – "राज्य जो अपने आप में एक किस्म है" (A State which is a class in itself) । प्लेटो का आदर्श राज्य एक अच्छाई का एक विचार है जो सभी कालों और देशों के लिए एक आदर्श हो सकता है। अपने आदर्श राज्य के बारे में प्लेटो स्वयं कहते हैं – "राज्य शब्दों से बनाया गया है क्योंकि मेरा विचार है कि संसार में यह कहीं भी मौजूद नहीं है।" किन्तु प्लेटो के इस आदर्श के विवरण में ऐसे मानवीय मूल्य निहित हैं जो उसके राज्य को सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक बनाते हैं। प्लेटो के आदर्श राज्य की व्याख्या करने से पहले राज्य की उत्पत्ति के दार्शनिक आधारों पर चर्चा करनी आवश्यक है। प्लेटो के आदर्श राज्य के निम्नलिखित दार्शनिक आधार है :–

1. **व्यक्ति का विस्तृत रूप ही राज्य है (The State is the Individual Writ Large)** : प्लेटो ने अपने आदर्श राज्य का निर्माण व्यक्ति और राज्य के पारस्परिक सम्बन्धों पर

आधारित किया है। प्लेटो की मान्यता है कि राज्य व्यक्ति के समान है। व्यक्ति का विस्तृत रूप ही राज्य कहलाता है। प्लेटो का कहना है – "राज्य की उत्पत्ति वृक्षों या चट्टानों से नहीं व्यक्तियों के चरित्र से होती है।" प्लेटो की मान्यता है कि व्यक्ति की चेतना और राज्य की चेतना एक है। सभी सामाजिक वस्तुएँ आत्मा के तीन गुणों को व्यक्त करती हैं। समाज की समस्त वस्तुएँ व्यक्तियों के विचारों के प्रतिरूप होती हैं। एतएव श्रेष्ठ व्यक्तियों के आधार पर ही श्रेष्ठ राज्य का निर्माण किया जा सकता है। प्लेटो ने अपने आदर्श राज्य का चित्रण इसलिए किया है ताकि व्यक्ति अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त हो सके।

2. **मानव आत्मा के तीन तत्त्व (Three Elements of Human Soul)** : प्लेटो ने अपने मानव आत्मा के विश्लेषण के आधार पर ही आदर्श राज्य का निर्माण किया है, इसलिए आत्मा के तीन गुणों – विवेक, साहस और क्षुधा के आधार पर आदर्श राज्य में तीन वर्गों – दार्शनिक, सैनिक और उत्पादक वर्ग की व्यवस्था की है। विवेक राज्य के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यद्यपि साहस के साथ विवेक पहले से ही उपस्थित रहता है लेकिन इसकी पूरी परिणति दार्शनिक शासकों में होती है। दार्शनिक शासक विवेक द्वारा ज्ञान प्राप्त करते हैं और प्रेम करना सीखते हैं। अतः ज्ञान से ही प्रेम का जन्म होता है। विवेक सैनिकों में ही होता है लेकिन यह प्रेम में परिणत नहीं हो पाता है। प्लेटो दार्शनिक वर्ग को ही विवेक तत्त्व का निवास – स्थान मानकर उन्हें ही शासन करने का अधिकार प्रदान करता है। दार्शनिक शासक विवेकी और ज्ञानी होने के कारण कंचन और कामिनी के जाल में नहीं फँसते। उन्हें शिव के स्वरूप का ज्ञान होता है। इसी प्रकार सैनिक वर्ग उत्साह या साहस तत्त्व द्वारा राज्य को सामरिक दृष्टि से सुरक्षित करते हैं। यह वर्ग बाहरी आक्रमण से राज्य की रक्षा करता है एवं आंतरिक शान्ति – सुरक्षा कायम करता है। इस वर्ग का कार्य शासक वर्ग की आज्ञाओं का पालन करना है। आत्मा का तीसरा तत्त्व क्षुधा उत्पादक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। प्लेटो का मानना है कि मानव की आर्थिक आवश्यकताओं से ही प्रारम्भिक रू॰ से राज्य का उदय होता है। व्यक्ति

अपनी आवश्यकताओं के लिए परस्पर निर्भर है। जब सहयोगी और सहायक व्यक्ति आपस में एकत्रित होकर एक स्थान पर रहने लगते हैं तो राज्य का निर्माण होता है। एक आदर्श राज्य कार्य विशिष्टीकरण के सिद्धान्त के आधार पर स्वाललम्बी बन सकता है। इस प्रकार मानव आत्मा व राज्य में सावयवी एकता का निर्माण होता है। अतः राज्य मानव आत्मा का ही वृहत् रूप है।

3. **राज्य हित में व्यक्ति का हित निहित है (Man's Interest lies in State's Interest) :** मानव राज्य की चेतना का ही एक अंश है। अतः राज्य के हित में ही व्यक्ति का हित निहित है। व्यक्ति राज्य में रहकर ही अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सकता है। इसलिए प्लेटो राज्य की सावयवी एकता पर बल देता है।
4. **सत्य सम्बन्धी सिद्धान्त (Theory Regarding Truth)** : प्लेटो के मतानुसार भौतिक पदार्थों (दृश्यमान जगत) तथा भलाई का निवास विचार जगत् में है। उसने इस विचार जगत् के एक अंग के रूप में ही आदर्श राज्य की धारणा को प्रस्तुत किया है।

आदर्श राज्य की विशेषताएँ (Features of Ideal State)

प्लेटो के आदर्श राज्य की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित है :–

1. **वर्ग विभाजन (Class Division) :** प्लेटो के आदर्श राज्य में कार्य विशिष्टीकरण के आधार पर तीन वर्गों का वर्णन किया है। प्लेटो के अपने न्याय सिद्धान्त में भी कार्य विशिष्टीकरण को आवश्यक माना है। प्लेटो का मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति को वही कार्य करना चाहिए जिसमें उसे दक्षता प्राप्त है। यदि कोई व्यक्ति अपने कार्य की उपेक्षा करके, दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप करता है, तो उससे समाज में अकुशलता, दूसरों के कार्यों में हस्तक्षेप तथा अज्ञान जैसे दोषों का जन्म होता है। प्लेटो का मानना है कि प्रकृति ने मनुष्य को कुछ नैसर्गिक योग्यता प्रदान की है और व्यक्ति को उसका लाभ उठाना चाहिए। इस आधार पर समाज में तीन वर्ग दार्शनिक वर्ग, सैनिक वर्ग तथा उत्पादक वर्ग हैं। दार्शनिक वर्ग विवेक प्रधान होता है। यह समाज का सामान्य कल्याण और वर्ग – सन्तुलन बनाए रखता है। यदि इस वर्ग के सभी

लोग दार्शनिक होंगे तो यह कार्य पूरा होगा अन्यथा नहीं। सैनिक वर्ग उत्साह तत्त्व का प्रतिनिधित्व करता है। यह देश की शान्ति व सुरक्षा के लिए जिम्मेदार होता है। उत्पादक वर्ग तृष्णा तत्त्व की पूर्ति करने वाला है। यह वर्ग राज्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इस प्रकार तीनों वर्ग अलग – अलग कार्य करते हुए भी एक – दूसरे के अनुपूरक हैं। तीनों वर्गों के उचित सामंजस्य व सहयोग के आधार पर ही राज्य को आत्मनिर्भरता, एकता एवं स्थायित्व प्राप्त होता है। प्लेटो के अनुसार समाज की रचना इसी कार्य विभाजन के आधार पर हुई है और श्रम विभाजन का सिद्धान्त भी इससे जुड़ा हुआ है।

2. **न्याय की प्राप्ति (Realization of Justice)** : प्लेटो के आदर्श राज्य की आधारशिला न्याय है। न्याय से प्लेटो का तात्पर्य केवल इतना है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति तथा प्रत्येक वर्ग अपने नैसर्गिक गुण धर्म द्वारा निश्चित कार्य को कुशलतापूर्वक करे। प्लेटो राज्य को मानवीय आत्मा का विशाल रूप मानता है। वह आत्मा के तीन तत्त्वों – विवेक, उत्साह और तृष्णा के आधार पर समाज में दार्शनिक, सैनिक व उत्पादक तीन वर्ग मानता है। समाज के ये तीनों वर्ग जब अपने – अपने कार्य करते हैं तो समाज में न्याय की स्थापना व प्राप्ति अवश्य होती है। प्लेटो ने न्याय को एक नैतिक भावना एवं सद्‌गुण के रूप में स्वीकार किया है। इसमें नागरिक कर्त्तव्यपालन पर ज्यादा ध्यान रखते हैं। प्लेटो लिखता है – "नागरिकों में कर्त्तव्य भावना ही राज्य का न्याय सिद्धान्त है।" आदर्श राज्य में न्याय व्यवस्था व्यक्ति व राज्य के हितों में एकता स्थापित करती है। यदि प्रत्येक व्यक्ति न्याय सिद्धान्त के अनुसार कार्य करेगा तो उसे पूर्ण सन्तुष्टि, सुख एवं प्रसन्नता प्राप्त होगी। समाज के तीनों वर्गों को अपने – अपने कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए शिक्षा की उचित व्यवस्था की गई है। इससे कार्यकुशलता में वृद्धि होगी तथा समाज में उचित सामाजिक सामंजस्य स्थापित होगा। अतः न्याय ही आदर्श राज्य की आधारशिला व प्राण है।'

3. **राज्य द्वारा नियन्त्रित शिक्षा (State Controlled Education)** : प्लेटो आदर्श राज्य में सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए समाज के तीनो वर्गों के लिए एक अनूठी शिक्षा

योजना पेश करता है। इसमें उत्पादक वर्ग के लिए कोई पाठ्यक्रम नहीं है। प्लेटो को शिक्षा योजना एक ऐसा रचनात्मक साधन है जो व्यक्ति की समाज के आदर्शों एवं कार्यों के अनुकूल ढाल सकती है। इस शिक्षा का दार्शनिक वर्ग के लिए सर्वाधिक महत्त्व है। दार्शनिक राजा का शासन ही प्लेटो का अन्तिम लक्ष्य है। उसकी दार्शनिक राजा की धारणा 'सद्गुण ही ज्ञान है' की धारणा का तार्किक परिणाम है। उसने सद्गुण को ज्ञान मानकर उसे सिखाने की व्यवस्था अपनी शिक्षा प्रणाली के माध्यम से की है। प्लेटो शिक्षा को एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया मानता है जिसके द्वारा समाज के घटक सामाजिक चेतना से परिपूर्ण होकर समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करना सीखते हैं। प्लेटो ने आदर्श राज्य के संचालन के लिए शिक्षा को एक सकारात्मक साधन माना है। उसके अनुसार – "सामाजिक शिक्षा ही सामाजिक न्याय का साधन है।" यह शिक्षा प्रणाली व्यक्तियों में सामाजिकता के भाव पैदा करती है। प्लेटो ने शिक्षा को राज्य के हाथों में केन्द्रित किया है। प्लेटो यूनानी परम्परा के अनुसार शिक्षा को नागरिक चरित्र निर्माण का प्रबल साधन मानता है। प्रो० सेबाइन ने लिखा है – "प्लेटो का राज्य पहला और सबसे ऊँचा शिक्षण संस्थान है।"

4. **सम्पत्ति और पत्नियों का साम्यवाद (Communism of Property and Wives)** : प्लेटो अपने आदर्श राज्य में न्याय की प्राप्ति के दो तरीके बताता है – प्रथम शिक्षा का सकारात्मक तरीका है तथा दूसरा साम्यवादी व्यवस्था है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत शासकों का न तो निजी परिवार होगा और न ही निजी सम्पत्ति। प्लेटो की मान्यता है कि परिवार का मोह शासक को संकीर्णता के जाल में बाँधता है तथा ईमानदारी के मार्ग से पथभ्रष्ट कर देता है जिसके परिणामस्वरूप न्याय का मार्ग अवरूद्ध होता है। सम्पत्ति का मोह भी ऐसा ही करता है। अतः प्लेटो शासक वर्ग को व सैनिक वर्ग को कंचन – कामिनी के मोह से मुक्त रखने के लिए साम्यवादी व्यवस्था का प्रावधान करता है। पारिवारिक साम्यवाद का उद्देश्य यह है कि शासक पारिवारिक चिन्ताओं से मुक्त रहकर अपना सम्पूर्ण समय समाज हित में लगा सकें। प्लेटो

अपनी इस व्यवस्था को सुचारू रूप से लागू करने के लिए शिक्षा योजना का प्रावधान करता है। वह साम्यवाद की तुलना में शिक्षा की प्राथमिकता देता है। इसके द्वारा शासक व सैनिक वर्ग को न्याय के आदर्शों के अनुकुल ढाला जा सकता है। साम्यवादी व्यवस्था शासकों के मार्ग में आने वाले कुटुम्ब तथा सम्पत्ति से उत्पन्न होने वाले सांसारिक प्रलोभनों को दूर रखने का प्रयास है।

5. **श्रम का विभाजन (Division of Labour)** : कार्यों का विशिष्टीकरण का सिद्धान्त श्रम विभाजन क सिद्धान्त से भी जुडा हुआ है। प्लेटो का मानना है कि समाज का कोई भी सदस्य स्वयं अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता। उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। समाज का कोई सदस्य अन्न उत्पन्न करता है और कोई कपड़े का उत्पादन। प्लेटो इसी कार्य – विभाजन को समाज की रचना का आधार मानता है। अतः समाज मानवीय पारस्परिक सेवाओं का तथा उत्पादित वस्तुओं के आदान – प्रदान का एक ताना – बाना है। समाज की व्यवस्था कार्य–विभाजन पर ही टिकी हुई है।

6. **स्त्री – पुरूष की समानता (Equality Between Men and Women) :** प्लेटो के अनुसार स्त्री – पुरूष समान हैं। उसने शासक – अभिभावक वर्ग बनने का अवसर स्त्रियों को भी प्रदान किया है। इस विचार के पीछे प्लेटो की मान्यता स्त्रियों की दशा सुधारने की है। पुरूषों के समान स्त्रियों को भी राज्य के कार्यों में बराबरी का हाथ बँटाने का अवसर देकर प्लेटो स्त्रियों को घर की, रसोई की, सन्तानोत्पत्ति की संकीर्ण परिधियों से मुक्त कर उन्हें राज्य के व्यापक दायरे में कार्य करने का अवसर देता है। प्लेटो का मानना है कि स्त्री – पुरूषों में प्राकृतिक प्रक्रियाओं में और क्षमताओं में कोई अन्तर नहीं होता है। उसका विश्वास था कि स्त्री में इतनी योग्यता है कि वह राजनीतिक और सैनिक कार्यों में भाग ले सकती है। प्लेटो को यह सिद्धान्त भावी राज्यों विशेषकर आधुनिक राज्यों के लिए एक मार्गदर्शक है।

7. **सावयवी एकता (Organic Unity) :** प्लेटो के अनुसार राज्य आत्मा का ही विराट रूप है। अतः मानव शरीर की तरह राज्य का भी अपना शरीर है। प्लेटो के अनुसार आदर्श राज्य में राज्य (शरीर) को अपने अंगों (व्यक्तियों) पर प्रधानता प्राप्त होती है और राज्य (शरीर) अपने अंगों (व्यक्तियों) पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है। प्लेटो ने आदर्श राज्य के लिए सावयवी एकता पर बल दिया है, उसका उद्देश्य राज्य द्वारा व्यक्ति का दमन नहीं है अपितु वह इस सिद्धान्त द्वारा निम्नलिखित लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है।

   (क) वह वैयक्तिक नैतिकता तथा सार्वजनिक नैतिकता में किसी प्रकार का अन्तर एवं विरोध स्वीकार नहीं करता है। आदर्श राज्य में व्यक्ति एक साथ ही सद् व्यक्ति एवं सद् नागरिक दोनों होता है।

   (ख) प्लेटो इस सिद्धान्त द्वारा राज्य को सुदृढ़ एवं तर्कपूर्ण एकता प्रदान करना चाहता है। क्योंकि उसका मत है कि सर्वोत्तम अच्छाई पूर्ण की एकता है।

   (ग) वह सिद्ध करना चाहता है कि आदर्श राज्य में व्यक्ति व राज्य के हितों में परस्पर कोई विरोध नहीं पाया जाता है।

8. **विधि की उपेक्षा (Omission of Law) :** प्लेटो की मान्यता है कि दार्शनिक शासक को शासन चलाने के लिए लिखित विधि की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि दार्शनिक शासक स्वयं ज्ञान की प्रतिमूर्ति है और उसे सद् का ज्ञान है। प्लेटो का दार्शनिक शासक कानून के शासन के अंकुश से मुक्त होते हुए भी अत्याचारी शासक नहीं है।

9. **कला और साहित्य पर कठोर नियन्त्रण (State Censorship on Art and Literature):** प्लेटो का विचार है कि तत्कालीन यूनान में कला व साहित्य की स्वतन्त्रता के नाम पर जो वातावरण नागरिकों को दिया जाता है, अनैतिकता का पोषण करने वाला होता है। प्लेटो ने तत्कालीन एथेन्स में कला और साहित्य के विकृत रूप को अच्छी तरह से पहचान लिया था। तत्कालीन कला और साहित्य ही समाज का विघटन करने वाला तत्त्व था। अतः प्लेटो अपने आदर्श राज्य में नागरिकों के नैतिक उत्थान

की दृष्टि से संगीत, कला, साहित्य आदि के ऐसे अंशों को प्रतिबन्धित एवं नियन्त्रित करता है जो नैतिकता व सदाचार के प्रतिकूल हों। इस प्रकार प्लेटो विकृत कला व साहित्य पर प्रतिबन्ध लगाकर नैतिक व्यवस्था स्थापित करके जनता में सद्‌गुणों का विकास करना चाहता है।

10. **राज्य का कोई ऐतिहासिक विकास नहीं (State is not a Historical Growth):** प्लेटो राज्य के किसी ऐतिहासिक विकास का परिणाम नहीं है। प्लेटो राज्य के आध्यात्मिक आचार को स्वीकार करता है। राज्य के तीन वर्ग आत्मा के तीन भागों के समान हैं और राज्य आत्मा के विवेक, शौर्य और तृष्णा का प्रतीक है। राज्य मानव व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है। प्रत्येक का विकास पूरे समाज के विकास पर निर्भर करता है।

उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि प्लेटो का आदर्श राज्य है, सबसे अच्छे राज्य का एक आभास – स्वर्ग के नगर का चित्र – जिसका कभी साक्षात्कार नहीं किया गया। स्वयं प्लेटो भी स्वीकार करता है कि यह आदर्श कभी प्राप्त नहीं हो सकता । यह आदर्श स्वर्ग का है, धरती का नहीं।

आलोचनाएँ (Criticism)

प्लेटो के आदर्श राज्य के चित्रण की निम्न आधारों पर आलोचना हुई है :–

1. **न्याय सिद्धान्त दोषपूर्ण है (Idea of Justice is Defective):** प्लेटो का न्याय सिद्धान्त दोषपूर्ण और संकीर्ण है। उसमें कर्त्तव्यों की प्रधानता है और अधिकारों की उपेक्षा की है। इस सिद्धान्त में अन्तर्विरोध है। व्यक्ति की आत्मा के तीन तत्त्वों के आधार पर समाज को तीन वर्गों में बाँटकर उन्हें अपने – अपने कार्यों को करने की बात कही हैं। इसमें कोई वर्ग दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करेगा। दूसरी तरफ प्लेटो शासक वर्ग को शान्ति और व्यवस्था के लिए उत्पादक वर्ग के कार्यों में हस्तक्षेप कर सकता है। उसका यह सिद्धान्त नैतिक सिद्धान्त मात्र है जिसे प्लेटों ने राजनीति में लागू करके राजनीति का प्रत्ययीकरण (दर्शनीकरण) किया है। प्लेटो के न्याय सिद्धान्त से अपराधियों को दण्ड देने वाली विधियों और न्यायालयों की स्थापना का भी पता नहीं

चलता है। उसका न्याय का सिद्धान्त प्रचलित सभी न्याय की धारणाओं के प्रतिकूल है।

2. **दोषपूर्ण साम्यवादी व्यवस्था (Idea of Communism is Defective):** प्लेटो द्वारा वर्णित साम्यवादी व्यवस्था मानव स्वभाव व आवश्यकताओं के सर्वथा विपरित है। व्यक्ति परिवार व सम्पत्ति के कारण ही अपने क्रिया – कलापों में व्यस्त रहते हैं। यदि परिवार तथा सम्पत्ति का आकर्षण व्यक्ति के जीवन में न हो तो समाज का विकास अवरूद्ध हो जाएगा। व्यक्ति को सम्पत्ति व परिवार विहिन करना मानवीय भावनाओं व परिवार के पवित्र सम्बन्धों का अपमान करना है। प्लेटो ने नारी मनोविज्ञान की गलत व्याख्या की है। आधुनिक युग में जो साम्यवादी व्यवस्थाएँ है, प्लेटो की धारणा उनसे बिल्कुल अलग है।

3. **आदर्श राज्य अव्यावहारिक है (Ideal State is Impractical):** प्लेटो का आदर्श राज्य एक काल्पनिक राज्य है। यह कल्पना स्वर्ग की है, धरती की नहीं। प्लेटो स्वयं स्वीकार करता है कि – "यह राज्य केवल शब्दों में स्थापित किया गया है। क्योंकि मैं जानता हूँ कि इसका अस्तित्व कहीं भी नहीं है। रिपब्लिक में वर्णित यह धारणा मूलतः अव्यावहारिक और काल्पनिक है। इनिंग ने इस कल्पना को रोमांस कहा है तथा मैक्सी ने प्लेटो को प्रथम कल्पनावादी कहा है। अतः प्लेटो का आदर्श राज्य निरी कल्पना तथा मृगतृष्णा है।

4. **अत्यधिक पृथक्कता एवं अत्यधिक एकता पर बल (Stress on Exessive Separation and Excessive Unity) :** प्लेटो ने एक साथ दो विपरित संगठनात्मक सिद्वान्तों को बाँधने का गलत प्रयास किया है। वह समाज को तीन वर्गों में बाँटकर उन वर्गों को एक – दूसरे के कार्यों में अहस्तक्षेप की बात करता है। दूसरी तरफ शासक वर्ग को उत्पादन व सैनिक वर्ग को नियन्त्रित करने का अधिकार प्रदान करता है। वह एक तरफ तो अत्याधिक अनेकता और दूसरी तरफ पूर्ण एकता पैदा करता है। अतः इन दोनों सिद्धान्तों को मिलाना अव्यावहारिक व असंगत है।

5. **आधुनिक राज्यों में लागू नहीं हो सकता (Cannot be Realized in Modern States):** आधुनिक राज्यों की जनसंख्या अधिक होने के कारण समस्त जनसंख्या को तीन वर्गों में बाँटना मुश्किल व असम्भव काम है। लोगों को बुद्धि, साहस तथा क्षुधा तत्त्वों के आधार पर बाँटना असम्भव व कल्पना की उड़ान मात्र है। अतः इसे आधुनिक विशाल जनसंख्या वाले राज्यों में लागू नहीं किया जा सकता।

6. **कानून की उपेक्षा (Ommission of Law) :** प्लेटो ने आदर्श राज्य के कानून को कोई स्थान न देकर बड़ी भूल की है। उसने स्वयं लॉज में इस गलती को स्वीकार किया है। कानून के शासन के अभाव में राज्य में अशान्ति व अराजकता का माहौल पैदा हो सकता है। आधुनिक प्रजातन्त्रीय युगीन राज्यों में तो कानून की उपेक्षा कोई शासक नहीं कर सकता। अरस्तू ने कहा है – "कानून इच्छाओं से अप्रभावित विवेक है।" प्लेटो का दार्शनिक शासक विवेकी होने के कारण यदि कानून की उपेक्षा करता है तो वह राज्य के लिए शुभ संकेत नहीं है।

7. **सर्वाधिकारी राज्य (Totalitarian State) :** प्लेटो द्वारा वर्णित आदर्श राज्य मानव स्वभाव के विपरित अधिनायकवादी राज्य का ही प्रतिबिम्ब है। यह व्यवस्था राज्य को साध्य तथा व्यक्ति को साध्य मानकर चलती है जबकि आधुनिक युग में राज्य को जनकल्याण का उपकरण मात्र माना जाता है। प्लेटो ने अपने आदर्श राज्य में कर्त्तव्यों की तो व्यवस्था की है लेकिन अधिकारों व स्वतन्त्रताओं को छीन लिया है। प्लेटो का राज्य लोगों के पारिवारिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर इतने प्रतिबन्ध लगा देता है, जिससे इसे अधिनायकवादी कहना सर्वथा ठीक है। प्लेटो ने शासक वर्ग को असीमित शक्तियाँ देकर उसे निरंकुश बना दिया है। शासक पर विधि, परम्परा तथा जनमत का कोई नियन्त्रण नहीं है। आधुनिक युग की विचारधाराएँ फासीवाद, नाजीवाद, उग्र प्रत्यवाद आदि प्लेटो क चिन्तन से ही प्रभावित हैं।

8. **व्यक्ति व राज्य में पूर्ण समानता अनुचित (Complete Analogy Between Man and State is not Justified):** प्लेटो ने राज्य को व्यक्ति का वृहत् रूप माना है। उसने व्यक्ति की आत्मा के तीन तत्त्वों – बुद्धि, उत्साह व क्षुधा की समानता राज्य के तीन वर्गों – उत्पादक, सैनिक तथा शासक वर्ग से की है। वास्तव में राज्य एक मानसिंक संरचना है जबकि व्यक्ति का शरीर एक जैविक व भौतिक सरंचना है। उसने राज्य को एक वृहत् व्यक्ति (सावयवी) बताकर एक ऐसे राज्य की स्थापना की है जो स्वयं में एक साध्य है और व्यक्ति की स्वतन्त्रता का शत्रु है। व्यक्ति तथा राज्य की समानता सामान्य व्यक्ति की समझ से परे की बात है।

9. **उत्पादक वर्ग की उपेक्षा (Producer Class is Ignored) :** प्लेटो ने उत्पादक वर्ग के लिए कोई शिक्षा का पाठ्यक्रम तय नहीं किया है। यद्यपि यह वर्ग राज्य की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करता है लेकिन उनके कार्यों में विशिष्टता व दक्षता लाने हेतु उन्हें किसी भी प्रकार के प्रशिक्षण या औपचारिक शिक्षा से वंचित रखकर भारी भूल की है। उत्पादक – वर्ग भी राजनीतिक जीवन में भाग ले सकता है। उसकी यह व्यवस्था अलोकतान्त्रिक है और अभिजात – वर्ग की ही पोषक है। प्लेटो की यह व्यवस्था राज्य के अस्तित्व को नष्ट करने वाली है।

10. **दास प्रथा पर मौन (Silent on Slavery) :** उस समय यूनान में दास प्रथा थी। स्वयं प्लेटो को भी दास बनाकर बेचा गया था। दासों की स्थिति दयनीय थी। परन्तु प्लेटो ने अपने आदर्श राज्य में दासों की स्थिति सुधारने बारे कोई उपाय नहीं सुझाया है। उसका दास–प्रथा पर यह मौन समर्थन समाज के लिए घातक सिद्ध हो सकता है।

11. **विशिष्टीकरण के सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Principles of Specialisation):** प्लेटो के कार्य विशिष्टीकरण के आधार पर समाज को तीन वर्गों में बाँटा है। प्रत्येक वर्ग को अपने निर्दिष्ट कर्त्तव्य ही पूरे करने हैं। ऐसी अवस्था में – (1) व्यक्ति के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास नहीं हो सकता। (2) इससे हित की पुष्टि

में तीन राज्य स्थापित होते हैं जो राज्य की एकता के लिए खतरनाक हैं। (3) व्यक्ति अपने सारे जीवन में एक ही गुण में अधीन रहता है। सत्य तो यह है कि व्यक्ति एक नहीं, तीनों गुणों का भी स्वामी हो सकता है। यह शासक व सैनिक की भूमिका एक साथ भी निभा सकता है। उत्पादक वर्ग भी सैनिक के कर्त्तव्यों को विशेष प्रशिक्षण द्वारा पूरा कर सकता है। अतः प्लेटो का विशिष्टीकरण का सिद्धान्त अमनोवैज्ञानिक एवं अस्वाभाविक सिद्धान्त है।

12. **कला व साहित्य पर नियन्त्रण गलत है (Censorship of Art and Literature is Worng) :** प्लेटो कला व साहित्य पर नियन्त्रण का पक्षधर है। आधुनिक युग में अनेक मनोवैज्ञानिक खोजों ने यह सिद्ध कर दिया है कि कला और साहित्य पर नियन्त्रण उनके विकास में बाधक होता है। कला और साहित्य तो स्वतन्त्र वातावरण में ही फलते–फूलते हैं। यह नियन्त्रण अमनोवैज्ञानिक व अव्यावहारिक है।

13. **दार्शनिक शासक सम्बन्धी आलोचना (Criticism Related to Philosopher King):** प्लेटो का दार्शनिक शासक को विवेक का मूर्त व साकार रूप मानता है, किन्तु व्यवहार में ये दोनों भिन्न तथ्य हैं। एक व्यक्ति को सारे अधिकार व शक्तियाँ प्रदान करना उसे निरंकुश बनाना है। यदि एक व्यक्ति या समूह को इतने सारे अधिकार एक साथ मिल जाएँ तो वह सत्ता के नशे में जनता पर अत्याचार करने लगता है। लार्ड एक्टन कहता है – "शक्ति भ्रष्ट करती है और सम्पूर्ण शक्ति सम्पूर्ण रूप से भ्रष्ट करती है।" सेबाइन ने इसे 'प्रबुद्ध निरंकुशतन्त्र' (EnlightenedTyranny) कहा है। राजा सांसारिक जीव होता है, अतः वह गलती भी कर सकता है। प्लेटो का दार्शनिक शासक व्यवहार में अच्छा शासक नहीं हो सकता।

14. **शासन के संगठनात्मक पक्ष की उपेक्षा (Ignore the Organisational Aspect of Government):** प्लेटो के आदर्श राज्य में शासन के आवश्यक संगठनात्मक तत्त्वों

का अभाव है। इसमें कानून, दण्डात्मक शासन – व्यवस्था, न्याय का प्रबन्धक, अधिकारियों की नियुक्ति प्रणाली आदि का कोई उल्लेख नहीं है। अतः इस स्थिति में शासन का संचालन कठिन कार्य है।

15. **पलायनवादी दृष्टिकोण (Escapist Approach) :** प्लेटो की आदर्श राज्य की कल्पना अव्यावहारिक है। प्लेटो ने अपने युग की समस्याओं का सामना करने की बजाय पलायनवादी दृष्टिकोण ही अपनाया है। उसके ये विचार कल्पना की दुनिया के हैं। उसने केवल अपनी सौन्दर्य भावना की तृप्ति के लिए ही इसकी रचना की है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्लेटो का आदर्श राज्य अनेक आलोचनाओं का शिकार हुआ है। उसे कल्पनालोक की वस्तु मानकर प्लेटो को पलायनवादी भी कहा गया है। परन्तु इन आलोचनाओं के बावजूद भी प्लेटो के आदर्श राज्य का इतिहास पर उतना ही प्रभाव पड़ा है जितना स्पार्टा के वास्तविक राज्य का। मध्ययुग के पादरियों ने प्लेटो द्वारा बताए गए मार्ग पर चलते हुए स्वयं को आदर्श ढाँचे में ढालने का प्रयास किया। प्लेटो का आदर्श राज्य का सिद्धान्त आदर्शवादियों के लिए एक प्रेरणा का स्त्रोत रहा है। प्लेटो का आदर्श राज्य वह मंजिल है जिस तक पहुँचना प्रत्येक राज्य के लिए वांछनीय है। यह वह आदर्श है जो मौजूदा राज्यों को अपना व्यक्तित्व ऊँचा उठाने की प्रेरणा देता है। अतः प्लेटो का आदर्श राज्य राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में एक अमूल्य देन है।

1.6 न्याय का सिद्धान्त (Theory of Justice)

प्लेटो का न्याय सिद्धान्त उसके दर्शन की आधारशिला है। 'रिपब्लिक' में वर्णित आदर्श राज्य का मुख्य उद्देश्य न्याय की प्राप्ति है। 'रिपब्लिक' में प्लेटो न्याय के स्वरूप तथा निवास स्थान (Nature and Habitation) की विस्तृत चर्चा करता है। 'रिपब्लिक' का प्रारम्भ और अन्त न्याय की चर्चा से होता है। प्लेटो ने न्याय को कितना महत्त्व दिया है, इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि प्लेटो 'रिपब्लिक' को 'न्याय विषयक ग्रन्थ' (A Treaties Concerning Justice) कहता है। आदर्श राज्य में न्याय व्यवस्था की स्थापना के लिए ही दर्शन का शासन,

राज्य नियन्त्रित शिक्षा व्यवस्था तथा साम्यवादी व्यवस्था का प्रावधान किया है। प्लेटो के अनुसार समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी प्रकृति और प्रशिक्षण के अनुकूल अपने कार्य कुशलतापूर्वक करने चाहिए और दूसरों के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। प्लेटो तत्कालीन नगर राज्यों की बुराइयों से बहुत ही चिन्तित था। सोफिस्टों के प्रचार के परिणामस्वरूप यूनानी नगर राज्यों के लोग बहुत ही स्वार्थी और व्यक्तिवादी बन गए थे। उनमें नैतिक मूल्यों का पतन हो चुका था, इन बुराइयों को दूर करने के लिए और राज्य में एकता तथा सामाजिक भ्रातृभाव (Social Harmony) लाने के लिए प्लेटो न्याय सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। प्लेटो न्याय के लिए 'डिकायोस्यून' (Dikaiosune) शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ है 'कंसर्निंग जस्टिस' अर्थात् न्याय से सम्बनिधत। यही प्लेटो के न्याय सिद्धान्त का आधार है। प्लेटो के न्याय सिद्धान्त को समझने के लिए इसका आधुनिक अर्थ जानना आवश्यक है।

न्याय का आधुनिक अर्थ (Modern Meaning of Justice)

यह लैटिन भाषा 'Jus' के शब्द से बना है जिसका अर्थ है – बाँधना। तात्पर्य यह है कि न्याय उस व्यवस्था का नाम है जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से जुड़ा रहता है। समाज सामाजिक बन्धनों का समुच्चय (A set of social relation) है। हर व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से किसी रूप में सम्बन्ध जुडा रहता है। हर सम्बन्ध के पीछे दायित्व और अधिकार होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों का प्रयोग और कर्त्तव्यों का पालन एक निश्चित सीमा के अन्तर्गत करना पड़ता है। यही न्याय का तकाजा है। मेरियम ने आधुनिक अर्थ में न्याय को परिभाषित करते हुए कहा है – "न्याय उन मान्यताओं और प्रक्रियाओं का जोड़ है जिसके माध्यम से प्रत्येक मनुष्य को वे सभी अधिकार और सुविधाएँ जुटाई जाती हैं जिन्हें समाज उचित मानता है।" आधुनिक अर्थ में न्याय का सम्बन्ध कानूनी प्रक्रिया द्वारा उपराधियों को दण्ड देने की प्रक्रिया से हो सकता है। उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर न्याय के तीन पक्ष दृष्टिगोचर होते हैं – (1) न्याय का सम्बन्ध समाज की मान्यता या विचारों से है। (2) न्याय प्रक्रिया में कानून का बहुत महत्त्व है। (3) न्याय का उद्देश्य समाज

द्वारा मान्य अधिकारों और सुविधाओं को जुटाना है। आधुनिक अर्थ में न्याय कानून की उचित प्रक्रिया का नाम है जिससे समाज में व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा होती है।

प्लेटो ने अपना न्याय का सिद्धान्त स्पष्ट करने के लिए सबसे पहले यह बताने का प्रयास किया है कि न्याय क्या नहीं है। प्लेटो ने यह बताने के लिए कि न्याय क्या है ? उसका निवास – स्थान कहाँ है ? पहले उस युग में प्रचलित तीन धारणाओं का खण्डन किया है।

1. **न्याय की परम्परावादी धारणा (Traditional Theory of Justice)** : इस धारणा का प्रतिपादक सीफेलस है। उसके अनुसार – "सत्य बोलना और दूसरों का ऋण चुकाना ही न्याय है।" उसके पुत्र पोलिमार्कस के अनुसार – "न्याय प्रत्येक व्यक्ति को वह देने में है, जो उसके लिए उचित है।" इस धारणा का विवेचन करने से यह अर्थ निकलता है कि "न्याय एक ऐसी कला है, जिसके द्वारा मित्रों की भलाई तथा शत्रुओं की बुराई की जाती है। प्लेटो ने इस धारणा का खण्डन चार आधारों पर किया है।

   (१) न्याय कला न होकर आत्मा का गुण है। न्याय हमेशा अच्छाई की ओर प्रवृत होता है, बुराई की ओर नहीं। कला तो बाह्य वस्तु है जबकि न्याय आत्मा का गुण व मन की प्रवृति है।

   (२) शत्रु तथा मित्र के आधार पर न्याय करना व्यवहार में कठिन है। एक अच्छा मित्र भी शत्रु हो सकता है। व्यक्ति के अन्दर छिपी बात कोई नहीं जान सकता, अतः यह पहचानना मुश्किल है कि कौन मित्र है और कौन शत्रु।

   (३) मित्र की भलाई करना तो उचित है लेकिन शत्रु की बुराई करने से उसका अद्यः पतन हो जाता है। न्याय सेवा भावना पर आधारित होता है। अतः किसी व्यक्ति को पहले से अधिक बदत्तर बनाना न्याय नहीं हो सकता।

   (४) मित्र और शत्रु के प्रति भलाई और बुराई का विचार व्यक्तिवादी सिद्धान्तों पर आधारित है जबकि न्याय की अवधारणा का मूल रूप से सामाजिक हित से सरोकार होती है।

2. **न्याय की उग्रवादी धारणा (Radical Theory of Justice)** : इस धारणा के प्रवक्ता थ्रेसीमेक्स है। उसके अनुसार – "न्याय शक्तिशाली का हित है।" इसका अर्थ है कि 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस'। शासक के हितों की पूर्ति ही न्याय है। व्यक्ति के लिए न्यायप्रिय होने का अर्थ है कि वह सरकार व शासन के हितों का साधन बन जाए। न्याय की इस धारणा का अभिप्राय यह भी है कि सरकार सदा स्वयं से स्वार्थ के लिए शासन करती है तथा 'अन्याय न्याय से अच्छा है'।

   प्लेटो इस धारणा का खण्डन निम्न तर्कों के आधार पर करता है –

   (१) व्यक्ति सामाजिक व्यवस्था का एक अविभाज्य अंग है और इस सामाजिक व्यवस्था में उसका तथा उसके कर्त्तव्यों का स्थान निश्चित है। व्यक्ति का सच्चा सुख अपने कर्त्तव्यों के पालन में है न कि स्वार्थों की पूर्ति में।

   (२) शासक एक सच्चे कलाकार की तरह होता है। एक सच्चा न्यायपूर्ण शासक वह है जो अपनी कलाकृति अर्थात्अपने नागरिकों के हितों में वृद्धि करता है। वह सीमित स्वार्थों का सेवक न होकर समूचे समाज के हितों का सेवक या पोषक होता है।

   (३) न्यायी व्यक्ति ही अन्यायी की तुलना में बुद्धिमान होता है। वह अपने निर्दिष्ट कर्त्तव्यों को पूरा करता हुआ आत्मानन्द प्राप्त करता है। इस प्रकार न्यायी अन्यायी से अच्छा है, न कि अन्यायी न्यायी से।

3. **न्याय की व्यवहारवादी धारणा (Pragmatic Theory of Justice)** : इस धारणा का प्रतिपादन गलॉकन ने किया है। ग्लॉकन का मानना है कि मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी है। मनुष्य ने प्राकृतिक अवस्था में उत्पन्न अन्याय को दूर करने के लिए समझौता किया कि वे न तो अन्याय करेंगे और न अन्याय को सहने करेंगे। ग्लॉकन का तर्क है कि न्याय एक कृत्रिम व्यवस्था है जिसकी उत्पत्ति का आधार भय है। न्याय भय की संतान है। यह दुर्बलों की आवश्यकता है ताकि वे शक्तिशाली के विरूद्ध अपनी रक्षा कर सकें। अतः ग्लॉकन के अनुसार – "न्याय दुर्बल का हित है।"

प्लेटो के विचारानुसार न्याय का निवास मनुष्य की आत्मा में है न कि किसी बाह्य समझौते में। न्याय व्यक्ति की आत्मा का गुण है; न्याय उसकी सहज प्रकृति है। न्याय का पालन भय से नहीं, स्वाभाविक रूप से होता है।

उपर्युक्त तीनों धारणाओं का खण्डन करते हुए प्लेटो कहता है कि "न्याय मनुष्य की आत्मा का गुण तथा मानव मस्तिष्क का स्वभाव है; ऐसा गुण तथा ऐसा स्वभाव जिसे एक बार प्राप्त करने पर मनुष्य सदैव एक ही सदाचारी व व्यवहार तथा मार्ग का अनुसरण करता है।"

प्लेटो की अवधारणा (Platonic Conception of Justice)

प्लेटो का न्याय सम्बन्धी सिद्धान्त इस धारणा पर आधारित है कि प्रत्येक मनुष्य का अपना अलग – अलग स्वभाव होता है। मनुष्य की आत्मा में तीन गुण होते हैं – विवेक, साहस और क्षुधा। आत्मा के प्रत्येक तत्त्व का अपना स्वाभाविक कार्य है। विवेक का कार्य नियन्त्रण करना, साहस का कार्य रक्षा करना एवं क्षुधा का कार्य भौतिक वस्तुओं का संचय करना है। प्लेटो के अनुसार यदि मानव आत्मा के तीनों गुणों के आधार पर व्यक्ति अपने स्वभाव के अनुकूल कार्य करे तो वह न्याय है। प्लेटो के अनुसार – "एक व्यक्ति को केवल एक ही कार्य करना चाहिए, जो उसकी प्रकृति के सर्वथा अनुकूल है।" इस प्रकार प्लेटो प्रचलित तीनों धारणाओं का खण्डन करते हुए न्याय को बाह्य वस्तु न मानकर आत्मा का गुण (Quality of the soul) मानता है। प्लेटो का कहना है – "न्याय मानव आत्मा की उचित अवस्था और मानवीय स्वभाव की प्राकृतिक माँग है।" प्लेटो के अनुसार न्याय के दो रूप हैं : –

1. **सामाजिक न्याय (Social Justice)** : प्लेटो का कहना है कि सामाजिक रूप से न्याय तभी सम्भव है जब समाज के सभी वर्ग अपने स्वभावानुकूल कार्यों को पूरा करते हैं और परस्पर सामंजस्य तथा एकता बनाए रखते हैं। प्लेटो राज्य में दार्शनिक वर्ग में विवेक, सैनिक वर्ग में साहस तथा उत्पादक वर्ग में क्षुधा या तृष्णा तत्त्वों की प्रधानता स्वीकारता है। न्याय का सम्बन्ध तो समूचे राज्य से होता है। प्रत्येक वर्ग अपने अपने कर्त्तव्यों का उचित दिशा में निर्वहन करके न्याय की स्थापना कर सकता है। प्लेटो

का कहना है कि राज्य के तीनों – दार्शनिक शासक को, सैनिक वर्ग तथा उत्पादक वर्ग द्वारा अपने – अपने कार्यों का समुचित निर्वाह और पालन करना ही सामाजिक न्याय है। प्लेटो की न्याय सम्बन्धी धारणा विशिष्टीकरण के सिद्धान्त पर आधारित है। प्रत्येक व्यक्ति को केवल एक ही ऐसा कार्य करना चाहिए जो उसके स्वभाव के अनुकूल हो। प्लेटो के न्याय सिद्धान्त के बारे में बार्कर का कहना है – "न्याय का अर्थ प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उस कर्त्तव्य का पालन, जो उसके प्राकृतिक गुणों एवं सामाजिक स्थिति के अनुकूल है। नागरिक की स्वधर्म चेतना तथा सार्वजनिक जीवन में उसकी अभिव्यंजना ही राज्य का न्याय है।" कवायर के अनुसार – "प्रत्येक व्यक्ति को उसके अनुकूल भूमिका और कार्य देना ही न्याय है।" प्लेटो के अनुसार सच्चे न्याय के लिए समाज के सभी वर्गों में एकता व सामंजस्य बनाए रखना आवश्यक होता है। सेबाइन के अनुसार – "न्याय समाज की एकता का शत्रु है; यह उन व्यक्तियों के परस्पर तालमेल का नाम है, जिनमें से प्रत्येक ने अपनी प्रकृति और शिक्षा – दीक्षा के अनुसार अपने कर्त्तव्य को चुन लिया है और उसका पालन करता हे। यह व्यक्तिगत धर्म भी है और सामाजिक धर्म भी, क्योंकि इसके द्वारा इसके राज्य तथा घटकों का परम कल्याण की प्राप्ति होती है।" अतएव वही राज्य न्यायी होता है जहाँ दार्शनिक राजा शासन करता है, सैनिक रक्षा करता है और उत्पादक उत्पादन करता है। ये तीनों वर्ग अपने – अपने कार्य क्षेत्र में विशिष्टता प्राप्त करते हैं, एक – दूसरे के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप किए बिना परस्पर सामंजस्य बनाए रखते हैं।

2. **व्यक्तिगत न्याय (Individual Justice)** : प्लेटो व्यक्तिगत न्याय के बारे में भी वही आधार अपनाता है, जो सामाजिक न्याय के बार में अपनाता है। प्लेटो का कहना है कि जब व्यक्ति की आत्मा के साहस और क्षुधा तत्त्व विवेक के नियन्त्रण व अनुशासन में कार्य करते हैं तो व्यक्तिगत न्याय की प्राप्ति होती है। प्लेटो के अनुसार राज्य व्यक्ति का ही विस्तृत रूप है। प्लेटो का कहना है कि – "राज्य की उत्पत्ति वृक्षों और चट्टानों से नहीं, बल्कि उसमें निवास करने वाले व्यक्तियों के

चरित्र से होती है।" जिस प्रकार सामाजिक न्याय में तीनों वर्ग अपने – अपने कार्यक्षेत्र में रहते हैं, उसी प्रकार व्यक्तिगत न्याय में भी आत्मा के तीनों तत्त्व अपने ही क्षेत्रों में सीमित रहते हैं। आत्मा के तीनो तत्त्वों में सहयोग, एकता, सामंजस्य एवं संतुलन पाया जाता है। वैयक्तिक न्याय ही वह गुण है जो व्यक्ति को सामाजिक बनाता है। अतः वैयक्तिक न्याय के बिना सामाजिक न्याय की कल्पना नहीं की जा सकती।

प्लेटो के न्याय सिद्धान्त की विशेषताएँ (Features of Platonic Concept of Justice)

प्लेटो के न्याय सिद्धान्त की निमनिलिखत विशेषताएँ हैं : –

1. **विशिष्टीकरण का सिद्धान्त (A Theory of Specialization) :** प्लेटो का मानना है कि मनुष्य की आत्मा के प्रत्येक तत्त्व का अपना विशिष्ट कार्य होता है। विवेक का कार्य नेतृत्व करना, साहस का कार्य रक्षा करना और क्षुधा का कार्य उत्पादन करना है। विवेक, साहस और क्षुधा तत्त्व दार्शनिक वर्ग, सैनिक वर्ग और उत्पादक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं अर्थात् समाज का वह वर्ग जिसमें विवेक तत्त्व की प्रधानता होती है, शासन करने के योग्य है। साहस प्रधान वर्ग युद्ध तथा क्षुधा प्रधान वर्ग उत्पादन करने के योग्य होता है। चूँकि प्रत्येक वर्ग का अपना – अपना विशिष्ट कार्य होता है, एतएव अपनी – अपनी प्राकृतिक योग्यतानुसार ही कार्य करना न्याय है।

2. **अहस्तक्षेप का सिद्धान्त (A Theory of Non-Interference) :** प्लेटो का मानना है कि आत्मा के तीनों तत्त्वों या तीनों वर्गों अपना – अपना कार्यक्षेत्र होता है। उनके लिए यह उचित है कि वे एक दूसरे के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप न करें। दार्शनिक शासक को सैनिक वर्ग व उत्पादक वर्ग के कार्यों में अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। उसी प्रकार उत्पादक वर्ग को सैनिक व दार्शनिक वर्ग के कार्यों में तथा सैनिक वर्ग को दार्शनिक तथा उत्पादक वर्ग के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, यही बात आत्मा के तत्त्वों पर लागू होती है। एतएव अपने अपने कार्यों को निर्बाध रूप से

करना और दूसरों के कार्यों में हस्तक्षेप न करना ही न्याय है। यदि व्यक्तियों या तीनों वर्गों या तत्त्वों द्वारा एक–दूसरे के कार्यों में अनावश्यक हस्तक्षेप किया जाएगा तो संघर्ष और विनाश की ही उत्पत्ति होगी।

3. **सामांजस्य तथा एकता का सिद्धान्त (Theory of Harmony and Unity):** प्लेटो अपने न्याय के सिद्वान्त द्वारा राज्य के तीनों वर्गों व आत्मा के तीनों तत्त्वों में सामंजस्य और एकता बनाए रखना चाहता है। प्लेटो के अनुसार कार्य विशिष्टीकरण और अहस्तक्षेप की नीति के द्वारा आत्मा का प्रत्येक तत्त्व व राज्य का प्रत्येक वर्ग अपने को संयमित रखता है एवं अपने से श्रेष्ठ तत्त्व की अधीनता स्वीकार करके स्वेच्छा से सामंजस्य एवं एकता स्थापित करता है। प्लेटो का न्याय सिद्धान्त समरसता का सिद्धान्त है, एकता व सहयोग का सिद्धान्त है, प्रेम और शान्ति का सिद्धान्त है। यह न्यायनिष्ठ समाज की स्थापना का सूचक है।

4. **न्याय सिद्धान्त रचनात्मक सिद्धान्त है (Justice Theory is Architectonic) :** प्लेटो न्याय की आधारशिला पर राज्यरूपी सुन्दर भवन का निर्माण करता है जहाँ व्यक्ति और वर्ग एक–दूसरे के साथ ऐसे एकता के सूत्र में बँधे रहते हैं कि प्रत्येक सम्पूर्ण का निर्माण करते हुए अपने वास्तविक सौन्दर्य को भी परिलक्षित करता है। न्याय राज्य के तीनों निर्माणकारी तत्त्वों में घनिष्ठ सम्बन्ध पैदा करता है। प्लेटो का न्याय भवन निर्माण कला से मिलता – जुलता है। जिस प्रकार एक भवन निर्माण विशेषज्ञ अपने अधीनस्थ कारीगरों को अंकुश में रखता है, उसी प्रकार न्याय मनुष्य की विभिन्न आकांक्षाओं को नियन्त्रित कर तुम्हें अनेक कार्य करने से रोकता है एवं उस कार्य की ओर प्रेरित करता है जिसे करने की उसमें स्वाभाविक क्षमता होती है। इस प्रकार न्याय का सिद्धान्त एक रचनात्मक कार्यक्रम पेश करता है।

5. **स्त्रियों को समान अधिकार (Equal Rights to Women) :** प्लेटो अपने न्याय सिद्धान्त में स्त्रियों और पुरूषों को समान मानकर स्त्रियों को सार्वजनिक क्षेत्र में बराबर

अधिकार प्रदान करता है। प्लेटो का विश्वास है कि स्त्रियाँ राजनीतिक व सैनिक कार्यों में भाग ले सकती हैं।

6. **न्याय के दो प्रकार (Two Types of Justice) :** प्लेटो न्याय को दो भागों – वैयक्तिक न्याय तथा सामाजिक न्याय में बाँटता है। मूलतः न्याय का निवास स्थान आत्मा में होता है। प्लेटो राज्य को व्यक्ति का वृहत् रूप मानता है। प्लेटो न्याय का निवास राज्य में भी मानता है क्योंकि राज्य आत्मा के तीनो तत्त्वों व तीनों वर्गों का संयोग है। इसलिए प्लेटो इसे सामाजिक न्याय कहता है। वैयक्तिक न्याय द्वारा आत्मा की तीनों प्रवृतियों में सामंजस्य पैदा होता है तथा व्यक्ति में एकता स्थापित होती है। वैयक्तिक न्याय में आत्मा के तीनों तत्त्व अपना – अपना कार्य करते हुए परस्पर तालमेल बनाए रखते हैं। इस तरह वैयक्तिक न्याय का भी अधिकार वही है, जो सामाजिक न्याय है। अतः दोनों न्यायों में आधारभूत समानता है।

7. **व्यक्तिवाद का विरोधी (Theory Against Individualism) :** प्लेटो का मानना है कि समाज या राज्य से अलग व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है। व्यक्ति और राज्य दोनों का लक्ष्य एक श्रेष्ठ जीवन का विकास करना है। राज्य के अंग के रूप में अपनी प्राकृतिक क्षमता तथा प्रशिक्षण के आधार पर निर्धारित क्षेत्र में अधिक से अधिक श्रेष्ठता प्राप्त करके ही व्यक्ति अपने जीवन का समुचित विकास कर सकता है। प्लेटो ने अपने इस सिद्धान्त द्वारा सोफिस्टों की व्यक्तिवादी विचारधारा को यूनानी नगर राज्यों के लिए सबसे बड़ा अभिशाप माना है। प्लेटो का उद्देश्य संकीर्ण स्वार्थों से व्यक्ति को निकालकर स्वयं तथा राज्य के कल्याण का मार्ग दिखाना है। इस प्रकार व्यक्ति एक व्यवस्था का अंग है और उसक उद्देश्य एकाकी आत्मा के सुखों की सिद्धि नहीं बल्कि व्यवस्था में एक नियत स्थान की पूर्ति करना है।

8. **न्याय सिद्धान्त के सहायक एवं अनिवार्य साधन (Means of Justice) :** प्लेटो ने अपने न्याय के सिद्धान्त को अमली जामा पहनाने के लिए दो साधनों की व्यवस्था की है। उनमें से पहला शिक्षा का सकारात्मक तरीका है तथा दूसरा साम्यवाद नकारात्मक

तरीका है। प्लेटो का विचार है कि अन्याय का आधार अज्ञान होता है। अज्ञान एक मानसिक रोग होता है और उसकी एकमात्र उपचार या औषधि उचित शिक्षा है। प्लेटो अपने न्याय के सिद्धान्त में शिक्षा द्वारा अज्ञानता रूपी रोग का ईलाज करना चाहता है। साम्यवादी व्यवस्था शासक व सैनिक वर्ग को पथभ्रष्ट होने से रोकने का नकारात्मक तरीका है। ये दोनों तरीके राज्य से अज्ञान को हटा सकते हैं।

9. **दार्शनिक शासक (Philosopher King) :** न्याय की प्राप्ति के लिए राज्य के शासन की बागडोर एक विवेकी, निस्वार्थी और कर्तव्यपरायण व्यक्ति के हाथ में होनी चाहिए। प्लेटो ने ऐसे सद्‌गुणी व्यक्ति को दार्शनिक शासक का नाम दिया है। प्लेटो का दार्शनिक शासक विवेक की साक्षात् प्रतिमूर्ति होता है। वह कानून से ऊपर है। उसका प्रमुख कर्त्तव्य सैनिक व उत्पादक वर्ग पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित करना है। दार्शनिक शासक ही समाज के तीनों वर्गों में सामंजस्य एवं सन्तुलन स्थापित करता है। राज्य को आंगिक एकता प्रदान करता है। प्लेटो का दावा है कि शासक वर्ग न तो स्वेच्छाचारी हो सकता है और न ही अत्याचारी, ग्रात्सियान्सकी के अनुसार – "प्लेटो की न्याय व्यवस्था में राज्य दार्शनिकों के लिए न होकर दार्शनिक राज्य के लिए होते है।" प्लेटो का दार्शनिक शासक सर्वगुण सम्पन्न व्यक्ति है।

10. **मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण (Psychological Angle) :** प्लेटो के मतानुसार जब व्यक्ति अपनी मूल प्रवृत्ति के अनुसार कार्य करता है तब उसमें उसकी रूचि बढ़ती है, वह विशिष्टता प्राप्त करता है और उनमें अधिकतम कुशलता प्राप्त करता है। इससे कार्यों के विशेषी करण के सिद्धान्त का जन्म होता है।

11. **सावयवी एकता का सिद्धान्त (Theory of Organic Unity) :** प्लेटो को न्याय सिद्धान्त में व्यक्ति राज्य के लिए है और राज्य के प्रति उसके कर्त्तव्य ही हैं अधिकार नहीं। राज्य साध्य है और व्यक्ति साधन है। प्लेटो ने कहा है – "नागरिकों के कर्त्तव्य

भावना ही राज्य का न्याय सिद्धान्त है।" राज्य से अलग व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है। प्लेटो का न्याय सिद्धान्त राज्य में एकता व सामंजस्य स्थापित करता है। व्यक्ति का व्यक्तित्व राज्य के व्यक्तित्व में ही लीन हो जाता है।

12. **नैतिकता का सिद्धान्त (Theory of Morality) :** प्लेटो की न्याय सम्बन्धी अवधारणा को केवल वैधानिक कर्त्तव्यों पर ही आधारित नहीं किया गया है बल्कि नैतिक व सर्वव्यापी कर्त्तव्यों का प्रावधान है। अतः प्लेटो का सिद्धान्त नैतिकता का पोषक है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति स्वेच्छा से अपने निर्दिष्ट कर्त्तव्यों का पालन करते हुए दूसरों के क्षेत्राधिकार में प्रवेश नहीं करता। प्लेटो बुराई का प्रतिकार भलाई से करने की बात करता है। प्लेटो का न्याय उन सभी सद्‌गुणों का सम्मिलित रूप है जो मनुष्य दूसरों के साथ अपने आचरण मे प्रदर्शित करता है। प्लेटो स्वधर्म पालन पर जोर देता है। इस अर्थ में प्लेटो का न्याय सिद्धान्त नैतिक और अध्यात्मिक धारणा है।

13. **आदर्श राज्य का रक्षक (Protector of Ideal State):** प्लेटो ने न्याय को ऐसा गुण माना है जो राज्य में तब भी निवास करता है जब विवेक, साहस और आत्मसंयम क्षीण हो जाते है। प्लेटो का मत है कि न्याय की अनुपस्थिति में समाज अक्षमता, अव्यवस्था, स्वार्थपरता, फूट और कलह जैसी व्याधियों से ग्रस्त हो जाता है। अतः प्लेटो का न्याय– सिद्धान्त आदर्श राज्य का रक्षक व त्राता है।

आलोचनाएँ (Criticism)

प्लेटो के न्याय सिद्धान्त की निम्न आधारों पर आलोचना हुई है :–

1. **प्लेटो का न्याय केवल नैतिक है, कानूनी नहीं (Plato's Justice is only Moral, not Legal) :** प्लेटो का न्याय का सिद्धान्त किसी दण्डकारी शक्ति के अभाव में केवल नैतिक बन कर रह जाता है। जब तक किसी कर्त्तव्य के पीछे कानूनी शक्ति न हो तो वह प्रभावी नहीं हो सकता। बार्कर का कहना है – "प्लेटो का न्याय वस्तुतः न्याय नहीं है, यह मनुष्यों को केवल अपने कर्त्तव्यों तक सीमित करने वाली भावना

मात्र है, कोई ठोस कानून नही।" प्लेटो ने कानून की व्यवस्था न करके न्याय को निष्क्रिय बना दिया है।

2. **कर्त्तव्यों पर अत्यधिक जोर (More Emphasis on Duties) :** प्लेटो मनुष्य को अपने कार्यक्षेत्र तक सीमित रहने का सुझाव देता है। वह अधिकारों के कारण मनुष्यों में होने वाले संघर्ष के समाधान की कोई व्यवस्था नहीं करता है। प्लेटो ने कर्त्तव्यों पर अधिक बल देकर अधिकारों की पूर्ण उपेक्षा की है। प्लेटो ने नैतिक कर्त्तव्य और अधिकारों की विभाजन रेखा को मिटाने का प्रयास किया है। अधिकार और कर्त्तव्य एक सिक्के के दो पहलू होते हैं और ये दोनों साथ – साथ चलते हैं।

3. **व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए अवसर का अभाव (No Opportunity for the Full Development of Personality)** : व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिए उसे अपनी सारी योग्यताओं व क्षमताओं को विकसित करने का अवसर मिलना आवश्यक होता है अर्थात् आत्मा के तीनों गुणों का विकास करने का अवसर मिलना चाहिए। किन्तु प्लेटो व्यक्ति को केवल आत्मा के किसी एक गुण के आधार पर ही कार्य विशिष्टीकरण पर जोर देता है। आत्मा के तीनों गुण किसी एक व्यक्ति में इकट्ठे भी मिल सकते हैं। इसलिए प्लेटो द्वारा किसी एक गुण के आधार पर व्यक्ति का विकास अपूर्ण विकास है। इससे समाज को भी व्यक्ति की सम्पूर्ण प्रतिभाओं का लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। ऐसा समाज अविकसित समाज होता है।

4. **अत्याधिक एकीकरण व अत्यधिक पृथक्करण की प्रवृति (Excessive Unification and Excessive Separation)** : प्लेटो व्यक्ति को राज्य के अधीन एवं साहस व क्षुधा को विवेक के अधीन कर देता है। यह अत्यधिक एकीकरण का सिद्धान्त है। यह व्यक्ति को राज्य के हित का साधन मानता है। व्यक्ति केवल एक ही गुण का विकास कर सकता है। उसके शेष दो गुण अन्य दो गुणों की बलि ले लेते हैं। दूसरी तरफ प्लेटो ने राज्य के नागरिकों का वर्गीकरण करके तथा उनमें कार्य – विभाजन करके इस एकीकरण को तोड़ा है। इससे व्यक्ति में सामान्य हित का

अभाव हो जाता है। इससे समाज में वर्ग – हित की भावना जन्म लेती है। अतः इससे जातीय और पृथ्क्वादिता को इतना अधिक प्रोत्साहन मिलेगा कि सामुदायिक हितों का लक्ष्य ही पीछे छूट जाएगा।

5. **आधुनिक राज्यों में लागू नहीं (Not applicable in Modern Large States)**: आधुनिक राज्यों के दृष्टिकोण से यह विचार अव्यावहारिक है। आधुनिक राज्यों में जनसंख्या, क्षेत्र, अर्थव्यवस्था और शासन संचालन सम्बन्धी समस्या जटिल हो गई है। प्लेटो के समय में जनसंख्या व क्षेत्रफल की दृष्टि से छोटे – छोटे राज्य होते थे। जनसंख्या को आत्मा के तीन तत्त्वों के आधार पर तीन वर्गों में बाँटा जा सकता था, लेकिन आज के युग में इस सिद्धान्त की बात करना असम्भव है।
6. **निरंकुशवाद का प्रतीक (Excessive Unification and Excessive Separation)** : प्लेटो ने दार्शनिक शासक को हाथों में सम्पूर्ण राजनीतिक सत्ता सौंपकर निरंकुशतावाद को बढ़ावा दिया है। प्लेटो को तर्क है कि यह शासक विवेक के आधार पर सत्ता का संचालन करेगा। दार्शनिक शासक सद्गुणी होने के कारण विवेकपूर्ण ढंग से शासन करेगा। प्लेटो ने शासक वर्ग को कानूनी व अन्य नियन्त्रणों से मुक्त रखा है। सत्य तो यह है कि यदि इतनी सारी शक्तियाँ एक व्यक्ति के हाथ में आ जाएँ तो वह अवश्य ही निरंकुश बन जाएगा और अपने राजनीतिक विरोधियों को कुचल देगा, शक्ति का मद किसी भी विवेकी व्यक्ति को भ्रष्ट कर सकता है।

7. **अप्रजातान्त्रिक (Undemocratic)** : प्लेटो ने व्यक्तियों की समानता को अस्वीकार किया है। उसका मानना है कि शासन करने के गुण सभी व्यक्तियों में नहीं होते। वह व्यक्ति के अधिकारों की उपेक्षा कर केवल कर्त्तव्यों पर जोर देता है। प्लेटो के आदर्श राज्य में एक अल्पसंख्यक वर्ग को बहुसंख्यक वर्ग पर प्रतिनिधित्व है। प्रत्येक वर्ग के ऊपर कुछ बन्धन डाले गए है। इस प्रकार यह सिद्धान्त समानता तथा स्वतन्त्रता के अधिकार का उल्लंघन करता है।

8. **वर्ग – संघर्ष (Class Struggle)** : प्लेटो के न्याय सिद्धान्त में समाज के तीन वर्गों को कठोर विभाजन और व्यक्ति को उसकी मूल प्रवृति के साथ बाँध दिया गया है। प्लेटो के न्याय सिद्धान्त में मनुष्यों में होने वाले स्वाभाविक संघर्षों के समाधान की कोई व्यवस्था नहीं की गई है और न ही कोई ऐसी व्यवस्था करता है जिससे तीनों वर्गों में सौहार्द बन सके और संघर्ष की भावना का अन्त हो सके।

9. **सामान्य जनता पर अविश्वास (Distrust of Common Man)** : प्लेटो का बहुमत पर बिल्कुल विश्वास नहीं है। वह कलाकारों एवं कृषकों में प्रशासन की जरा भी क्षमता नहीं मानता। जिस प्रकार एक रोगी डॉक्टर के अधीन हो जाता है, उसी प्रकार प्लेटो ने राज्य को बौद्धिक वर्ग के हाथों में सौंप दिया है। प्लेटो का यह मानना गलत है कि ज्ञान या विवेक केवल दार्शनिक राजा के पास हो सकता है, सैनिक व उत्पादक वर्ग के पास नहीं।

10. **विरोधाभास सिद्धान्त (Contradictory Theory)** : प्लेटो का न्याय – सिद्धान्त विभिन्न वर्गों में पारस्परिक अहस्तक्षेप को अस्वीकार करता है। राज्य के तीनों वर्ग एक – दूसरें के कार्यों में हस्तक्षेप न करते हुए अपने – अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हैं। दूसरी तरफ प्लेटो शासक वर्ग को सैनिक व उत्पादक वर्ग पर कठोर नियन्त्रण का अधिकार देकर विरोधाभास को ही जन्म देता है। अतः यह धारणा विरोधाभाषी है।

11. **अमनोवैज्ञानिक (Unpsychological) :** प्लेटो ने न्याय सिद्धान्त में शासक व सैनिक वर्ग के लिए जिस साम्यवादी प्रणाली का प्रतिपादन किया है, वह स्त्री–पुरूषों के मनोविज्ञान पर भी आधारित नहीं है। परिवार व सम्पत्ति का मोह त्यागकर कोई भी व्यक्ति सामाजिक कार्यों का प्रतिपादन ठीक ढंग से नहीं कर सकता। प्लेटो ने व्यक्तियों को इच्छाओं एवं आकांक्षाओं के पारस्परिक संघर्ष की भी उपेक्षा की है। यह सिद्धान्त एक तरह से यान्त्रिक जीवन पद्धति पर ही आधारित है।

12. **श्रम विभाजन की प्रणाली का अभाव (No Criteria of Division of Labour) :** प्लेटो के अनुसार समाज के तीन वर्गो। की स्थापना व्यक्तियों को आत्मा के गुणों के अनुरूप होनी चाहिए। लेकिन प्लेटो ने यह नहीं बताया कि इस बात का निर्णय कैसे होगा कि किसमें विवेक है, या किसमें साहस, किसे उत्पादक वर्ग में रखा जाए और किसे शासक वर्ग में ? प्लेटो का यह मानना कि हर व्यक्ति अपनी आत्मा के गुणों को स्वयं जानकर अपना वर्ग निश्चित करे, अत्यन्त भ्रामक व अव्यावहारिक है।

13. **अनुभव का कोई महत्त्व नही (Little Importance to Experience)** : प्लेटो के सिद्धान्त में अनुभव का कोई महत्त्व नहीं है। इसका परिणाम यह हुआ कि प्लेटो नागरिक जीवन के एक महत्त्वपूर्ण पक्ष को नहीं सुलझा सके जिसके लिए वे इतने इच्छुक थे।

14. **अधिकारों और दण्ड की व्यवस्था का अभाव (No Provision for Rights and Punishment)** : प्लेटो ने अपने न्याय सिद्धान्त में किसी व्यक्ति द्वारा दूसरे के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप करने पर दण्ड का कोई प्रावधान नहीं किया है। दण्डात्मक शक्ति के अभाव में मानव स्वभावानुसार दूसरे के क्षेत्राधिकार को अवश्य चुनौती देता है। प्लेटो ने व्यक्ति के अधिकारों की भी कोई व्यवस्था नहीं की है।

15. प्लेटो का न्याय सिद्धान्त सर्वसत्तावादी तथा फासीवादी तत्त्वों से पोषित है।

प्लेटो के सिद्धान्त का महत्त्व (Importance of Platonic Theory of Justice)

विभिन्न आलोचनाओं के बावजूद भी प्लेटो का सिद्धान्त बहुत महत्त्वपूर्ण है।

1. प्लेटो ने इस सिद्धान्त के माध्यम से समाज और राज्य में एकता स्थापित करने का प्रयास किया है। प्लेटो यह मानकर चलता है कि आत्मारोपित कर्त्तव्यपरायणता और

व्यावसायिक दक्षता से समाज के विभिन्न वर्गों में कार्यकुशलता एवं सामाजिक एकता की स्थापना होगी। यही प्लेटो का मूल उद्देश्य था।

2. यह सिद्धान्त समाज में अज्ञान को समस्याओं का जनक मानता है और उसके निवारण हेतु सुव्यवस्थित शिक्षा प्रणाली का प्रतिपादन करता है। आज भी इसका महत्त्व स्वतः स्पष्ट है।
3. यह सिद्धान्त सार्वजनिक जीवन के पतन का प्रमुख कारण राजनीतिक सत्ता के एक ही हाथ में केन्द्रित होने को मानता है और इस दृष्टि से दोनों सत्ताओं के पृथक्करण की व्यवस्था करता है।

प्लेटो ने जिस न्याय सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, वह आजकल की शासन – व्यवस्था में व्याप्त दोषों को दूर करने के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करता है। आज की राजनीति में कर्त्तव्यनिष्ठा की कमी, कार्य का विशेषीकरण का अभाव, विवेकपूर्ण नियन्त्रण का अभाव जैसी समस्याएँ है। यदि प्लेटो के स्वधर्म, सदाचरण, नैतिकता को हम आधार मानकर चलें तो ये त्रुटियाँ स्वतः ही समाप्त हो जाएंगी।

1.7 शिक्षा का सिद्धान्त (Theory of Education)

प्लेटो अपने आदर्श राज्य में न्याय की प्राप्ति के लिए जिन दो तरीकों को पेश करता है, उनमें से शिक्षा एक सकारात्मक तरीका है। समाज में शिक्षा की बहुत आवश्यकता होती है। शिक्षा द्वारा ही समाज में भ्रातृभाव और एकता की भावना पैदा होती है। शिक्षा के महत्त्व को स्वीकारते हुए प्लेटो कहता है – "राज्य वृक्षों या चट्टानों से निर्मित नहीं होता, बल्कि उन व्यक्तियों के चरित्र से निर्मित होता है, जो उसमें रहते हैं, व्यक्तियों को श्रेष्ठ व चरित्रवान बनाने के लिए शिक्षा की बहुत आवश्यकता है। बार्कर के अनुसार – "शिक्षा एक मानसिक रोग का मानसिक औषधि से इलाज करने का प्रयास है।" शिक्षा व्यक्ति का समाज के प्रति दृष्टिकोण बदलकर उसे अच्छा व्यक्ति बनाती है।

शिक्षा का महत्त्व (Importance of Education)

1. **शिक्षा का सिद्धान्त न्याय सिद्धान्त का तार्किक परिणाम** : अपने आदर्श राज्य को न्याय पर आधारित करने हेतु प्लेटो ने शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार किया है। न्याय का अर्थ व्यक्तियों और वर्गों द्वारा अपने स्वभावानुकूल विशिष्ट कार्यों का सम्पन्न करना है। शिक्षा द्वारा व्यक्ति को विशिष्ट कार्य का प्रशिक्षण देकर कुशल व दक्ष बनाया जा सकता है। प्लेटो न्याय की रक्षा के लिए भी शिक्षा को आवश्यक मानता है।

2. **नागरिकों को सद्‌गुणी बनाना :** प्लेटो का शिक्षा – सिद्धान्त इस बात पर आधारित है कि "सद्‌गुण ही ज्ञान है।" यदि सद्‌गुण ज्ञान है तो उसे सिखाया जा सकता है। नागरिकों को सद्‌गुणी बनाने के लिए शिक्षा की आवश्यकता है ताकि समाज के तीनों वर्ग सद्‌गुणी बनकर अपने – अपने कर्त्तव्यों को स्वेच्छा से पूरा कर सकें।

3. **शिक्षा द्वारा व्यक्ति की आत्मा का विकास :** प्लेटो का मानना है कि मनुष्य की आत्मा में अनेक श्रेष्ठ तत्त्व निवास करते है। इन्हीं अन्तर्निहित तत्त्वों को बाहर निकाल कर सही दिशा में गतिमान करना ही प्लेटो की शिक्षा का उद्देश्य है। शिक्षा एक ऐसा वातावरण तैयार करती है जो आत्मा को अपने विकास के प्रत्येक स्तर पर सहायता करती है। शिक्षा के अभाव में मानव आत्मा पथभ्रष्ट हो सकती है, जो समाज और व्यक्ति दोनों के लिए घातक है।

4. **शिक्षा व्यक्ति को सामाजिक बनाती है :** शिक्षा व्यक्ति के हृदय में समष्टि का भाव भरती है और उसे आत्मसंयम का पाठ पढ़ाती है। यह व्यक्ति को सत्यवादी और आज्ञाकारी होने की सीख देती है तथा अहंकार व स्वार्थ को त्याग कर परमार्थ की ओर प्रेरित करती है। शिक्षा व्यक्ति की सामाजिक चेतना को जगाकर विभिन्न वर्गों में सामंजस्य व एकता स्थापित करती है।

5. **शिक्षा का राजनीतिक महत्त्व :** शिक्षा के द्वारा शासक व सैनिक वर्ग को प्रशिक्षण प्राप्त होता है और दार्शनिक शासक का जन्म होता है। शिक्षा लोगों को राजनीतिक जीवन में भाग लेने के योग्य बनाती है। राज्य के प्रत्येक वर्ग को उसके कर्त्तव्य से अवगत कराती है। यह व्यक्ति के राजनीतिक जीवन को परिशुद्ध कर राज्य को एकता के सूत्र में बाँधती है।

6. **शिक्षा का दार्शनिक महत्त्व :** शिक्षा अपने आप में एक अच्छाई है। इसका अन्तिम लक्ष्य उस चरम सत्य की खोज करना है जो काल और स्थान से परे है, जो सृष्टि की सभी वस्तुओं का मूल कारण है, जो अपनी विभूति से सदा देदीप्यमान होता है एवं जिसकी ज्योति से समस्त चराचर प्रकाशित होता रहता है। इसी चिरंतन, शाश्वत और अटल सत्य की खोज कर व्यक्ति पार्थिव जीवन की सीमाओं से ऊपर उठने का प्रयास करता है।

शिक्षा सिद्धान्त का दार्शनिक आधार (Philosophical basis of the Theory of Education)

प्लेटो की शिक्षा योजना के पीछे एक दार्शनिक दृष्टिकोण निहित है। प्लेटो की मान्यता है कि मनुष्य की आत्मा कोई निश्चेष्ट वस्तु न होकर सक्रिय तत्त्व है। अपनी सक्रियता के कारण मन अपने आप को पर्यावरण के हर पदार्थ की ओर अग्रसर करता है। अतः शिक्षक का कार्य तो इस सक्रिय आध्यात्मिक शक्ति का सौन्दर्य की ओर आकृष्ट करना है। प्लेटो के लिए शिक्षा का अर्थ है – "मन के 'अन्तरचक्षु' को प्रकाश की ओर प्रेरित करना।"

प्लेटो की शिक्षा योजना का दूसरा महत्त्वपूर्ण दार्शनिक आधार यह है कि मनुष्य की आत्मा को अपनी सतत सक्रियता के लिए सतत भोज्य पदार्थ की उसी प्रकार आवश्यकता है जैसी कि भौतिक अस्तित्व के लिए शरीर को भोजन आवश्यकता है। अतः जब आत्मा का अस्तित्व है तब तक उसे शिक्षा द्वारा पोषक तत्त्व प्रदान किया जाना चाहिए। अतः शिक्षा जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। यह युवावस्था में भावनाओं और कल्पनाओं को संतुलित करती है तो प्रौढ़ावस्था में विज्ञान के द्वारा विवेक का विकास करती है और इसके बाद भी दर्शन के

द्वारा विभिन्न शास्त्रों के पारस्परिक सम्बन्धों का ज्ञान कराती है एवं मानव जीवन के अन्तिम लक्ष्य को समझने हेतु अन्तर्दृष्टि प्रदान करती है।

प्लेटो मानव मस्तिष्क की सोद्देश्यता में विश्वास करता है। इसकी दो बातें प्रमुख हैं – (1) मानव मस्तिष्क सदा एक उद्देश्य की ओर बढ़ता है क्योंकि यह विवेक प्रेरित होता है। (२) यह सदैव एक ही उद्देश्य की ओर बढ़ता है और वह उद्देश्य है शिव (Good) की प्राप्ति। अतः मस्तिष्क सदैव एक ही उद्देश्य की ओर बढ़ता है और उन्हीं वस्तुओं को जानने का प्रयास करता है जिनके कुछ उद्देश्य होते हैं। शिव के स्वरूप की खोज करना विश्व की समस्त वस्तुओं का आधार है। अतः प्लेटो की शिक्षा की परिणति शिव के स्वरूप के ज्ञान प्राप्त करने में होती है। शिव के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने का अर्थ है सदाचारपूर्ण कार्य करना। यही सभी वस्तुओं का अन्तिम लक्ष्य है। इसी वास्तविक एवं अन्तिम अर्थ में प्लेटो ने सद्‌गुण को ज्ञान कहा है। अतः 'ज्ञान ही गुण है' यही प्लेटो की शिक्षा का दार्शनिक आधार है।

प्लेटो का शिक्षा सिद्धान्त (Plato's Theory of Education)

प्लेटो ने रिपब्लिक में अपने शिक्षा – सिद्धान्त पर विस्तार से चर्चा की है। रूसो के शब्दों में –"रिपब्लिक राजनीतिशास्त्र पर ही, वरन् शिक्षा पर लिखा गया सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है।" सेवाईन का मत है कि – "शिक्षा एक सकारात्मक साधन है जिसके द्वारा शासक एक सामंजस्यपूर्ण राज्य का निर्माण करने के लिए मानव प्रकृति को सही दिशा में ढाल सकता है।" प्लेटो अपने समय के एथेन्स व यूनान की शिक्षा पद्धतियों का गहरा विद्वान था। उसने आदर्श राज्य में न्याय की प्राप्ति के लिए शिक्षा का जो सकारात्मक साधन पेश किया, वह एथेन्स व स्पार्टा दोनों की शिक्षा पद्धतियों पर आधारित था। इसलिए प्लेटो की योजना को समझने से पहले इन दोनों पद्धतियों को जानना आवश्यक है।

एथेन्स और स्पार्टा की शिक्षा प्रणालियों का पुनरावलोकन

(Review of Athenian and Spartan Education Systems)

एथेन्स की शिक्षा व्यवस्था (Athenian System of Education)

एथेन्स में शिक्षा परिवार का अपना उत्तरदायित्व था और राज्य का उस पर कोई नियन्त्रण नहीं था। तत्कालीन एथेन्स में प्रचलित शिक्षा समाजोन्मुखी न होकर व्यक्तिपरक थी जिससे राज्य के लिए अच्छे व्यक्तियों का निर्माण असम्भव था। परिवार को स्वतन्त्रता थी कि वे अपने बच्चों को कैसी भी शिक्षा दें और कहीं भी दें। रोमन साम्राज्य के समय तक एथेन्स में कोई राज्य – नियन्त्रित स्कूल नहीं था। प्रसिद्ध विधिशास्त्री सोलन के नियम के अनुसार – "माता – पिता का यह कर्त्तव्य था कि वे अपने बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध करें।" लड़के एवं लड़कियों के लिए शिक्षा की समान व्यवस्था नहीं थी। लड़कियों को घरेलू आवश्यकताओं की ही शिक्षा दी जाती थी। एथेन्स की शिक्षा प्रणाली तीन स्तरों में विभाजित थी, जिसका वर्णन इस प्रकार है : –

1. **प्राथमिक शिक्षा (Primary Education)** : प्राथमिक शिक्षा में केवल पढ़ना लिखना ही सिखाया जाता था और प्राचीन कविता, व्यायाम व संगीत की शिक्षा दी जाती थी। यूनान में कवि धर्म गुरू माने जाते थे, अतः उन्हे साहित्य क अध्ययन में नीतिशास्त्र और धर्मशास्त्र का भी ज्ञान प्राप्त हो जाता था।
2. **माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education)** : इस शिक्षा का लाभ अमीर लोग ही उठा सकते थे। भारी शिक्षा शुल्कों के कारण गरीब व्यक्ति शिक्षा से वंचित रह जाते थे। इसमें अलंकारशास्त्र, भाषण कला और राजनीति की शिक्षा दी जाती थी इसका समय 14 से 18 वर्ष का था।
3. **सैनिक शिक्षा (Military Education)** : एथेन्स के प्रत्येक युवक के लिए यह शिक्षा अनिवार्य थी। इस शिक्षा में दक्ष होने पर ही व्यक्ति को नागरिक अधिकार प्रदान किए जाते थे। शिक्षा का यह स्तर 18 से 20 वर्ष की आयु तक था। यह शिक्षा केवल 2 वर्ष तक राज्य द्वारा प्रदान की जाती थी।

एथेन्स की यह शिक्षा पद्धति व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और चारित्रिक विकास के लिए उपयुक्त थी, परन्तु इसका सबसे बड़ा दोष यह था कि इसमें शिक्षा देना राज्य का नहीं, परिवार का उत्तरदायित्व था। यह शिक्षा पद्धति राज्य की आवश्यकताओं और उसकी प्रकृति के अनुकूल नहीं थी। इसके परिणामस्वरूप एथेन्स अज्ञानी व अयोग्य शासकों द्वारा शासित रहा। प्लेटो ने इन दोषों को पहचानकर अपनी शिक्षा – पद्धति में इन दोषों का निराकरण किया। उसने इस शिक्षा प्रणाली की अच्छी – अच्छी बातों को ग्रहण कर लिया।

स्पार्टा की शिक्षा – प्रणाली (Spartan System of Education)

यह शिक्षा पद्धति राज्य द्वारा पूर्णतय नियन्त्रित थी। स्पार्टा का समाज प्राचीन ढंग का योद्धाओं का समाज था जिसके लिए योद्धाओं की आवश्यकता थी। इसलिए राज्य में सैनिक शिक्षा पर विशेष जोर दिया जाता था। शिक्षा परिवार का उत्तरदायित्व न होकर राज्य का अपना उत्तरदायित्व था। बच्चे 7 वर्ष की आयु तक ही अपनी माता के पास रहते थे। शिक्षा को राज्य के उद्देश्यों के अनुकूल ढालने के लिए बच्चों को 7 वर्ष के बाद राज्य अपने नियन्त्रण में ले लेता था। इसके बाद बच्चों को उनकी प्रतिभा, योग्यता, अभिरूचि के अनुसार राज्य द्वारा शिक्षा दी जाती थी। इस शिक्षा का उद्देश्य अच्छे लड़ाकू व रक्षक पैदा करना था। स्त्रियों के लिए भी शारीरिक शिक्षा जरूरी थी। प्लूटार्क ने लाइकरगस (स्पार्टा का विधि निर्माता) की जीवनी में लिखा है – "यहाँ बालक – बालिकाएँ एक साथ नग्नावस्था में विविध प्रकार के व्यायाम करते थे। युवतियों के शरीर दौड़, कुश्ती, बर्छी, भाला फेकने आदि के व्यायामों द्वारा सुपुष्ट बनाए जाते थे ताकि उनकी सन्तान बलवान और पुष्ट हो सके और स्वयं स्त्रियाँ भी राज्य रक्षा में पुरूषों की भाँति भाग ले सकें।" इस तरह स्पार्टा में राज्य हित की पूर्ति के लिए परिवार को गौण बना दिया था और जीवन के सभी सुखों का सैनिक आवश्यकताओं के ऊपर बलिदान कर दिया था। स्पार्टा में 20 वर्ष की आयु के बाद विवाह की स्वतन्त्रता थी। विवाह एक गुप्त एवं अवैध सम्बन्ध होता था। पति – पत्नी वैवाहिक जीवन का आनन्द नहीं ले सकते थे। स्पार्टा की सामाजिक व्यवस्था भी राज्य की सैनिक आवश्यकताओं के अनुकूल थी। सभी नागरिक सामूहिक भोजनालयों में

भोजन करते थे। स्पार्टा में अमीर गरीब का भेदभाव नहीं था। वहाँ कोई सोना या चाँदी रख सकता था। लोहे की मुद्रा प्रचलित थी। स्पार्टा का शासन कुलीन व्यक्तियों के हाथों में था। जनता आर्थिक व पारिवारिक चिन्ताओं से दूर अपना सारा समय राज्य के लिए अर्पित कर देते थे। इस शिक्षा प्रणाली को समस्त यूनान में ख्याति प्राप्त थी और समस्त यूनान विशेष तौर पर एथेन्स से युवक शिक्षा प्राप्ति के लिए वहाँ जाते थे।

स्पार्टा की इस शिक्षा प्रणाली का पाठ्यक्रम भी संकुचित एवं एकांगी था। इसमें साहित्यिक शिक्षा की उपेक्षा की गई थी, जिससे स्पार्टा की अधिकांश जनता पढ़ना – लिखना नहीं जानते थे। उन्हें यूनान के साहित्य का कोई ज्ञान नहीं था। स्पार्टा में शारीरिक विकास तो हो सकता था लेकिन वहाँ मानसिक एवं बौद्धिक विकास उपेक्षित था। अतः यह शिक्षा व्यक्ति को पूर्ण नहीं बन सकती थी।

उपर्युक्त दोनों शिक्षा पद्धतियों का विश्लेषण करके बार्कर ने कहा है – "एथेन्स से प्लेटो की शिक्षा योजना का व्यक्तिगत पहलू उचित स्थान पर प्रतिष्ठित करने की दृष्टि से शिक्षा राज्य द्वारा नियन्त्रित होनी चाहिए।"

प्लेटो की शिक्षा के उद्देश्य (Aims of Plato's Education)

प्लेटो की शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना है। यह विकास ज्ञान पर ही निर्भर होता है। इसलिए प्लेटो ने अपनी शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य बताए हैं:–

1. व्यक्तित्व के पूर्णत्व की प्राप्ति के लिए प्लेटो के अनुसार शिक्षा को व्यक्ति के सामाजिक और वैयक्तिक दोनों के पक्षों के पूर्ण विकास के उद्देश्य को पूर्ण करना चाहिए।
2. आदर्श राज्य के निर्माण को सम्भव बनाने के लिए विशेषकर संरक्षक वर्ग (सैनिक व दार्शनिक शासक) को प्रशिक्षित करना शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।

3. स्वस्थ शरीर में स्वस्थ आत्मा का निवास होता है। अतः शिक्षा का उद्देश्य शरीर और मस्तिष्क दोनों का विकास करना होना चाहिए।
4. प्लेटो का मत है – सदाचार ही ज्ञान है। अतः शिक्षा का उद्देश्य केवल सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त करना ही नहीं, उसे उस ज्ञान को आचरण में कैसे उतारा जाए इसका व्यावहारिक प्रशिक्षण भी देना चाहिए, प्लेटो के अनुसार विद्यार्थियों को पहले सैद्धान्तिक शिक्षा और उसे बाद प्रयोगात्मक शिक्षा दी जानी चाहिए।
5. मनुष्य की आत्मा का गुण ज्ञान होने के कारण, शिक्षा का उद्देश्य भी ज्ञान प्राप्त करना है, प्लेटो के अनुसार मानव–आत्मा के पास स्वयं ज्ञान–नेत्र होता है, शिक्षा तो उस ज्ञान–नेत्र का रूख प्रकाश की ओर आकर्षित करती है। शिक्षा एक ऐसा वातावरण देती है कि आत्मा का ज्ञान स्वतः ही प्रकट हो जाए। प्लेटो के अनुसार शिक्षा आत्मनेत्र को प्रकाशोन्मुख करती है।
6. शिक्षा का उद्देश्य मात्र वस्तुगत जगत् का ज्ञान प्राप्त करना नहीं है, अपितु वस्तुगत जगत् के मूल में निहित 'सत्' अर्थात अनन्त वास्तविकता का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना है।
7. शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को सौन्दर्य के प्रति आकर्षित करना है, अतः विशिष्ट कलाओं, जैसे साहित्य, संगीत आदि का प्रशिक्षण देना भी शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।

आदर्श राज्य में शिक्षा – योजना (Plan of Education in Ideal State)

प्लेटो की शिक्षा योजना स्पार्टा व एथेन्स की शिक्षा योजनाओं की मिला–जुला रूप है। लेकिन यह प्लेटो की अपनी देन होने के कारण मौलिकता के गुण से भी युक्त है। प्लेटो ने शिक्षा को जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया बताया है। प्लेटो की शिक्षा योजना 6 से 50 वर्ष तक की आयु तक चलने वाली प्रक्रिया व पाठ्यक्रम है। प्लेटो की शिक्षा योजना का निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है : –

1. प्रारम्भिक शिक्षा **(Elementary Education)**
2. उच्चस्तरीय शिक्षा **(Higher Education)**

प्रारम्भिक शिक्षा (Elementary Education)

प्लेटो प्रारम्भिक शिक्षा को तीन भागों में बाँटता है :–

(क) प्रारम्भिक 6 वर्ष की शिक्षा

(ख) 18 से 20 वर्ष तक की शिक्षा

(क) प्रारम्भिक शिक्षा 6 वर्ष की शिक्षा (Education for the first six years) : इस समय में जन्म से 6 वर्ष की शिक्षा शामिल है। इस दौरान बालक को मुख्यतः छोटी–छोटी कहानियों के माध्यम से नैतिक और धार्मिक शिक्षा दी जाती है।

(ख) 6 से 18 वर्ष तक की शिक्षा (Education for the age group of six to eighteen years) : इसमें किशोरों को व्यायाम, अक्षरबोध, संगीत की शिक्षा शामिल है। प्लेटो ने इसे दो विषयों में समाहित किया है – (१) व्यायाम (Gymnastics) (२) संगीत (Music) शिक्षा की यह योजना एथेनियन पाठ्यक्रम पर ही आधारित है जिसमें कुछ सुधार किए गए है।

1. **व्यायाम (Gymnastics)** : व्यायाम द्वारा शरीर को स्वस्थ बनाया जा सकता है। बार्कर के शब्दों में – "व्यायाम मस्तिष्क के लिए शरीर की समस्त शिक्षा को शामिल किया है। इसमें खुराक, व्यायाम और चिकित्सा भी शामिल है। प्लेटो का उद्देश्य हे कि व्यायाम द्वारा विद्यार्थियों को हृष्ट–पुष्ट बनाकर उन्हें रोगमुक्त रखा जाए। प्लेटो ने व्यक्ति को शारीरिक विकास के लिए सात्विक भोजन पर बल दिया है। नैटलशिप के शब्दों में – "शारीरिक प्रशिक्षण में खुराक का सादापन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वस्तु है।" प्लेटो का मानना है कि जो व्यक्ति सादा भोजन करेगा, वह रोगमुक्त हो जाएगा। यदि नागरिक नियमित रूप से व्यायाम और सात्विक भोजन लेते रहेंगे तो वे कभी रोग की चपेट में नहीं आएँगे और उन्हें डॉक्टर की जरूरत नहीं होगी।

2. **संगीत (Music)** : प्लेटो ने व्यायाम की तरह संगीत का भी व्यापक अर्थ में प्रयोग किया है। संगीत का अर्थ केवल गान – विद्या नहीं है। बार्कर के अनुसार – "यह मन के सामान्य प्रशिक्षण का मार्ग है।" प्लेटो के शिक्षा सिद्धान्त में काव्य, साहित्य, इतिहास, गीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला आदि सभी आ जाते हैं। प्लेटो के अनुसार संगीत मन का उसी तरह साधता है, जिस प्रकार व्यायाम शरीर को। काव्य, संगीत व मूर्तिकला का प्रभाव व्यापक होता है। इनकी ओर व्यक्ति स्वतः ही आकृष्ट होता है और अपने जीवन में नवजात शक्ति का अनुभव करता है। प्लेटो के अनुसार, संगीत शिक्षा द्वारा मनुष्य के शौर्यत्व पर संयम कायम रखा जाता है तथा बौद्धिक गुणों को बाहर निकाला गया है। यह आत्मा का विकास करता है। अतः प्लेटो ने उसी संगीत का समर्थन किया है जो न्यायपरायणता के भाव भरे।

प्लेटो ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा में सत् साहित्य को भी शामिल किया है। उसके अनुसार जो साहित्य व्यक्ति के उज्जवल चरित्र, गुरूजनों तथा माता – पिता के प्रति आदर, भ्रातृ–भाव, साहस, सत्यप्रियता, आत्मसंयम आदि गुणों का विकास करता हो सत् साहित्य कहलाने का अधिकारी है। जो साहित्य भय, क्रोध, घृणा, पथभ्रष्टता आदि बुराइयों को बढ़ावा दे उसे छोड़ देना चाहिए। प्लेटो ने जन उपयोगी कविता को ही महत्त्व दिया है। वह देवमन्त्र (Hymns to the Gods) तथा यशस्वी व्यक्तियों की प्रशस्तियाँ ही अपनी कविता में शामिल करना चाहता है, अन्य नहीं। कविता की ही तरह वह नाटक पर रोक लगाने का पक्षधर है। प्लेटो ने धर्म सुधार और साहित्यिक आलोचना का ही सूत्रपात किया है। प्लेटो ने धर्म, विश्वास और साहित्य के सही स्वरूप की रक्षा के लिए सुधार और आलोचना के तरीके अपनाए है।

प्लेटो ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा में वाद्ययन्त्रों के चयन पर काफी जोर दिया है। वह नगरवासियों के लिए 'लिरे' (Lyre) तथा हार्प (Harp) को तथा ग्रामवासियों के लिए 'पाइप' (Pipe) को उचित ठहराया है। उसने वंशी को स्वीकृति प्रदान नहीं की है। प्लेटो संगीत के प्रभाव को शाश्वत मानता है। वह राग – रागनियों को

सावधानीपूर्वक संगीत में शामिल करने की बात करता है। वह सरल लय व ताल को अपनाने की बात करता है। प्लेटो का कहना है कि सुरताल को सरल भेदों तक ही सीमित होना चाहिए। वह संगीत कभी भी मान्य नहीं हो सकता जिसमें न्याय की प्रभुत्वमयी छवि प्रतिबिर्मिबित नहीं हो।

(ग) **18 से 20 वर्ष तक की शिक्षा (Education for the Age Group of Eighteen to Twenty Years)** : प्लेटो इस अवधी के दौरान या 2 वर्ष तक सैनिक शिक्षा का प्रावधान करता है। इससे विद्यार्थियों में साहस, आत्म–नियन्त्रण तथा अनुशासन की प्रवृति बढ़ेगी और वे राज्य की रक्षा करने के योग्य बनेंगे। यह शिक्षा राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण होगी।

उच्चस्तरीय शिक्षा (Higher Education)

प्लेटो ने उन विद्यार्थियों के लिए जो प्राथमिक स्तर पर प्रतिभावान होते हैं, उच्च शिक्षा का प्रावधान किया है। शेष प्राथमिक स्तर की शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियों को सैनिक वर्ग में स्थान दिया जाता है। प्लेटो ने उच्च शिक्षा के दो स्तर निर्धारित किए हैं :–

(क) 20 से 30 वर्ष तक।

(ख) 30 से 35 वर्ष तक।

(क) **20 से 30 वर्ष तक की आयु के लिए शिक्षा** : प्लेटो ने इस वर्ग के विद्यार्थियों के लिए चार विषयों – अंकगणित, रेखागणित, ज्योतिशास्त्र तथा स्वर–विद्या को स्थान दिया है। प्लेटो ने इस आयु में जिन विषयों के अध्ययन पर जोर दिया है, वे वैज्ञानिक अध्ययन के प्रतीक माने गए हैं। प्लेटो मानव आचरण और विकास के सन्दर्भ में विज्ञान को बहुत महत्त्व प्रदान करता था। प्लेटो ने सबसे अधिक महत्त्व अंकगणित को दिया है। उसके बाद रेखागणित, ज्योतिशास्त्र व स्वर–विद्या के अध्ययन पर भी बहुत जोर दिया है।

(ख) **30 से 35 वर्ष तक की आयु के लिए शिक्षा** : 20 से 30 वर्ष की आयु में वैज्ञानिक शिक्षा के बाद एक परीक्षा का आयोजन करके गिने – चुने विद्यार्थियों को 30 से 35

वर्ष की आयु में द्वन्द्व और दर्शन की शिक्षा दी जाएगी। कवायर ने कहा है – "दर्शन प्रौढ़ अवस्था के लिए है, युवावस्था के लिए नहीं।" प्लेटो ने द्वन्द्वात्मकता को गणित से भी बढ़कर माना है।

हम द्वन्द्वात्मक को तर्कशास्त्र, तत्त्वमीमांसा या सीधे दर्शन का नाम दे सकते हैं। इसमें केवल मनोविज्ञान का ही अध्ययन न होकर, सत्ता के आदि और अन्त, सत्ता के कारण व ज्ञान का लक्ष्य का अध्ययन होता है। यहाँ प्लेटो का सत्ता से तात्पर्य उस नियामक शक्ति से है जो इस ब्राह्मण्ड का संचालन करती है और सद् का अस्तित्व कायम करती है। प्लेटो के अनुसार – "द्वन्द्वात्मकवादी वह है जो प्रत्येक वस्तु को निचोड़ की सम्बोधन तक पहुँचाता है और श्रेय के भाव का दर्शन कर लेता है।" यद्यपि ग्रीक जगत् में द्वन्द्वात्मकता का सिद्धान्त सत्य तक पहुँचने के लिए और उसे साक्षात् करने के लिए एक प्रभावशाली साधन था लेकिन फिर भी समझना कठिन होने के कारण सभी लोग इसे समझने में अयोग्य होते थे। यह सिद्धान्त श्रेष्ठ बुद्धि वाले उन लोगों की ही समझ में आ सकता था जो सद्गुणी होते थे। इसे समझने का अथक प्रयास करते थे।

अतः प्लेटो की शिक्षा प्रणाली इस बात का संकेत है कि एक तरफ तो प्लेटो का राज्य नागरिकों में सामाजिकता का भाव जागृत करके शरीर और मन को स्वस्थ व शुद्ध भाव में राज्य की रक्षा का भार सौंपना चाहता है और दूसरी तरफ वह एक ऐसे दार्शनिक शासक का निर्माण करना चाहता है जो सद्गुणी होकर निष्पक्ष रूप से शासन करते हुए प्रजा में तालमेल व संतुलन बनाए रख सके।

प्लेटो की यह शिक्षा सैद्धान्तिक पक्ष से सरोकर रखती है, व्यावहारिक पक्ष से नहीं। अतः प्लेटो ने आगामी 15 वर्षों तक जीवन की पाठशाला में कठिनाई झेलकर व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने की व्यवस्था की है। प्लेटो का मानना है कि 50 वर्ष की आयु में ही दार्शनिक शासक बनने की प्रक्रिया पूरी होती है और उसे शासक वर्ग में शामिल कर लिया जाता है। अब यह राज्य का संचालन संभालकर भावी पीढ़ी की शिक्षा योजना का संचालन करता है

और अपने उत्तराधिकारी तैयार करता है। 50 वर्ष के बाद भी व्यक्ति के आत्म–साक्षात्कार तथा अन्तिम सत्य की खोज के लिए शिक्षा चलती रहती है। आयु के बढ़ने के साथ – साथ राजनीति का क्षेत्र खाली हो जाता है और स्वयं अन्तिम सत्य के अन्वेषण में लग जाते हैं।

प्लेटो की शिक्षा प्रणाली की विशेषताएँ (Features of Plato's Education System)

प्लेटो की शिक्षा प्रणाली की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :–

1. **चरित्र निर्माण पर बल (Emphasis on Character building)** : प्लेटो की शिक्षा का उद्देश्य नागरिकों को अच्छे या सद्‌गुणी बनाकर उन्हें राज्य के प्रति निःस्वार्थ सेवा की भावना जगाना है। प्लेटो शिक्षा को एक ऐसा विद्यात्मक साधन मानता है जो नागरिकों का चरित्र निर्माण करती है।
2. **राज्य द्वारा नियन्त्रित तथा अनिवार्य शिक्षा (State Controlled and Compulsory Education)** : प्लेटो शिक्षा को व्यक्तिगत क्षेत्र में नहीं छोड़ना चाहता। वह शिक्षा पर राज्य के नियन्त्रण का पक्षधर है।
3. **कला और साहित्य पर नियन्त्रण (Strict Sensorship on Art and Literature)** : प्लेटो काव्य और साहित्य पर कठोर नियन्त्रण का पक्षधर है। प्लेटो का उद्देश्य गन्दे साहित्य का निर्माण रोकना है। उसका उद्देश्य युवकों को बुरे रास्ते से हटाकर सद्‌मार्ग पर चलाना है ताकि वे अच्छे नागरिक बन सकें।
4. **स्त्री – पुरूष दोनों के लिए समान शिक्षा (Equal Education for Both Men and Women)** : प्लेटो की शिक्षा योजना स्त्री और पुरूष दोनों के लिए है। प्लेटो स्त्री – पुरूष में कोई स्वाभाविक अन्तर नहीं मानता है। वह इस दृष्टि से एथेन्स की शिक्षा प्रणाली का दोष दूर कर देता है क्योंकि उस समय एथेन्स में केवल पुरूषों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त था। प्लेटो का विश्वास था कि स्त्रियाँ भी राज्य को शक्तिशाली बनाने में योगदान दे सकती हैं। इसलिए दोनों को समान व अनिवार्य शिक्षा मिलनी ही चाहिए।

5. **शिक्षा राज्य के कर्त्तवय के रूप में (Education as the main Function of the State)** : अपने आदर्श राज्य में व्यक्ति को गुणी से सामाजिक बनाने के लिए शिक्षा को अनिवार्य माना है अर्थात् शिक्षा व्यक्ति तथा समाज दोनों का निर्माण करती है। अतः प्लेटो शिक्षा को निजी हाथों में न सौंपकर राज्य को सौंपता है। प्लेटो का उद्देश्य योजनाबद्ध तरीके से नागरिकों में कर्त्तव्यभावना पैदा करके उन्हें समाज के अनुरूप बनाना है। सेबाइन ने लिखा है – "प्लेटो की राज्य नियन्त्रित शिक्षा प्रणाली एथेन्स की शैक्षणिक कार्यशैली का नया परिवर्तन था।"
6. **शिक्षा मानसिक रोग का मानसिक उपचार है (Education is a Cure of Mental by Mental Medicine) :** प्लेटो सारी बुराई की जड़ अज्ञानता को मानता है। उसका कहना है कि शिक्षा द्वारा ही बुराईयों का अन्त किया जा सकता है। शिक्षा व्यक्ति के स्वभाव को राज्य के उद्देश्य के अनुकूल बदलत सकती है। बार्कर के अनुसार – "शिक्षा मानसिक रोग के उपचार के लिए एक मानसिक औषधि है।" अर्थात् यह मानसिक रोग का मानसिक उपचार है।
7. **नैतिक विकास पर बल (Emphasis on Moral Development) :** प्लेटो की शिक्षा योजना 'सद्गुण ही ज्ञान है' के सिद्धान्त को स्वीकार करके व्यक्ति के नैतिक विकासी की परिस्थितियाँ पैदा करती है। प्लेटो कला व साहित्य के ऐसे अंशों पर प्रतिबन्ध लगाने का पक्षधर है जो नागरिकों के नैतिक गुणों का हास करते हों।
8. **सर्वांगीण विकास पर बल (Emphasis on All Round Development) :** प्लेटो की शिक्षा प्रणाली व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक तीनों पक्षों के पूर्ण विकास पर बल देती है। प्लेटो की शिक्षा योजना व्यक्ति के प्रत्येक सद्गुण को विकसित करने का प्रयास करती है।
9. **शिक्षा केवल उच्च वर्ग के लिए (Education Only for the Elite) :** प्लेटो की शिक्षा प्रणाली में उत्पादक वर्ग के लिए शिक्षाका कोई पाठ्यक्रम ही नहीं है। प्लेटो की शिक्षा का

मुख्य उद्देश्य राजनेताओं का निर्माण करना है जिससे आदर्श राज्य का सपना साकार हो सके। अतः प्लेटो संरक्षक वर्ग के लिए शिक्षा की व्यवस्था करने का पक्षपाती है।

10. **शिक्षा – योजना मनोवैज्ञानिक तत्त्वों पर आधारित है (Education System is Based on Psychological Element) :** प्लेटो ने मानव स्वभाव की प्रवृतियों और आत्मा के तीन तत्त्वों के अनुकूल ही अपनी शिक्षा व्यवस्था को आधारित किया है।
11. **शिक्षा का पाठ्यक्रम आयु–भेद व वर्ग–भेद पर आधारित (Curriculum of Education Based on Age and Class Difference):** प्लेटो ने शिक्षा प्रणाली के दो भाग किए हैं – प्राथमिक व उच्च शिक्षा। दोनों शिक्षा स्तरों का आधार आयु व वर्ग – भेद है। प्रारम्भिक शिक्षा नौजवानों के लिए जबकि उच्च शिक्षा प्रौढ़ावस्था का प्रशिक्षण है तथा शासक वर्ग का भी इसमें गणित, तर्क, दर्शन व विज्ञान का ज्ञान दिया जाता है।
12. **प्लेटो की शिक्षा में सीखने की प्रक्रिया सरल से जटिल की ओर (The Process of Education from Simple to Difficult):** प्लेटो की शिक्षा व्यवस्था में पाठ्यक्रम सरलता से जटिलता की ओर बढ़ता है। शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर पर संगीत, साहित्य, व्यायाम आदि सरल विषय पढ़ाए जाते हैं, परन्तु बीस वर्ष के बाद गणित, विज्ञान आदि कुछ जटिल विषय और अन्त में 30 वर्ष बाद द्वन्द्व व दर्शन का ज्ञान कराया जाता है।
13. **शिक्षा आजीवन प्रक्रिया (Education is a Life Long Process) :** प्लेटो की शिक्षा योजना जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। 35 वर्ष से 50 वर्ष तक मनुष्य दार्शनिक व व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करता है। उसके बाद अन्तिम सत्य की खोज करता है। अतः यह आजीवन प्रक्रिया है।
14. **दार्शनिक शासक के लिए प्रशिक्षण (Training of Philosopher King) :** प्लेटो की शिक्षा का उद्देश्य एक ऐसे दार्शनिक शासक का निर्माण करना है जो सर्वगुणसम्पन्न हो और सैनिक व उत्पादक वर्ग पर समाज हित में पूर्ण नियन्त्रण व सभी वर्गों में एकता व सामंजस्य कायम रख सके।

15. **शिक्षा में गणित को महत्त्व (Importance of Mathematics in Education) :** प्लेटो की शिक्षा योजना में सबसे अधिक महत्त्व गणित को दिया गया है। प्लेटो ने अपनी अकादमी के बाहर दरवाजे पर ये शब्द लिखे थे – "जिसे अंकगणित का ज्ञान नहीं, वह इसमें प्रवेश नहीं कर सकता।" अतः प्लेटो ने सर्वाधिक महत्त्व गणित को दिया है।

आलोचनाएँ

प्लेटो के शिक्षा सिद्धान्त की आलोचना के निम्न आधार है :–

1. **शिक्षा मात्र अभिभावक वर्ग के लिए (Education Only for the Guardian Class) :** प्लेटो शिक्षा को महान् वस्तु मानता है और उसे आदर्श राज्य का आचार बताता है किन्तु उसने समस्त नागरिकों के लिए शिक्षा का प्रबन्ध न करके केवल अभिभावक वर्ग (सैनिक व दार्शनिक वर्ग) के लिए ही शिक्षा की योजना प्रस्तुत की है। इस प्रकार उसकी शिक्षा योजना कुलीतन्त्रवादी है जिसे आधुनिक दृष्टि से अप्रजातान्त्रिक कहा जाएगा। सेबाइन ने कहा है – "राज्य में शिक्षा के महत्त्वपूर्ण स्थान को देखकर यह आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि प्लेटो शिल्पियों (उत्पादक वर्ग) के लिए शिक्षा के सम्बन्ध में कोई विचार नहीं करता।" अतः यह सिद्धान्त अभिजातवर्ग का ही पोषक है।
2. **उत्पादक वर्ग की उपेक्षा (Ignores Producer Class) :** प्लेटो की शिक्षा प्रणाली है। प्लेटो ने बहुसंख्यक उत्पादक वर्ग की पूर्ण उपेक्षा की है। प्लेटो के न्याय सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक वर्ग, जिसमें उत्पादक वर्ग भी एक है, को अपने समस्त कार्य विशिष्टता के साथ करने चाहिएं। किन्तु प्लेटो यह भूल जाता है कि उत्पादक वर्ग बिना शिक्षा व प्रशिक्षण के अभाव में कार्य–कौशल व विशेषज्ञता कैसे प्राप्त करेंगे। अतः प्लेटो द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में उत्पादक वर्ग की अपेक्षा न्याय के सिद्धान्त के विपरीत है।

3. **डॉक्टर एवं वकीलों का बहिष्कार (No Role for Doctors and Lawyers) :** प्लेटो ने अपने राज्य से डॉक्टरों और सभी अदालती संस्थाओं का बहिष्कार किया है। उसके अनुसार व्यायाम और संगीत के प्रशिक्षण से नागरिक के शरीर और मन दोनों स्वस्थ रहेंगे और इस प्रकार शारीरिक और मानसिक रोगों के होने की गुंजाइश ही नहीं रहेगी। आलोचकों ने कहा है कि प्लेटो ने अपनी शिक्षा प्रणाली यह ही भरोसा किया है, डॉक्टरों व वकीलों पर नहीं।
4. **साहित्य की उपेक्षा (Little Importance to LIterature) :** प्लेटो ने अपनी शिक्षा योजना में गणित को अधिक तथा साहित्य को कम महत्त्व दिया है। साहित्य जीवन व समाज का दर्पण है और मानव की कोमल भावनाओं को विकसित कर उसके दृष्टिकोण को व्यापक करता है।
5. **कला और साहित्य पर कठोर नियन्त्रण (Strict Control of Art and Literature) :** काव्य और साहित्य पर कठोर प्रतिबंध लगाना उचित नहीं होता। इससे स्वतन्त्र कलात्मक प्रवृत्ति मुरझा सकती है और उस पर विध्वंसकारी प्रभाव पड़ सकता है। कला और साहित्य का विकास स्वतन्त्र वातावरण में ही हो सकता है। बार्कर के शब्दों में – "एक नैतिक उद्देश्य के लिए राज्य के पास में जकड़ी हुई कला मानव की भावनाओं को स्पर्श नही कर सकती और जो कला विशुद्ध कला के रूप में श्रोता या पाठक की भावनाओं को गुदगुदा नहीं सकती, वह उसके आधार को भी प्रभावित नहीं कर सकती।"
6. **शिक्षा क्रम लम्बा और खर्चीला है (Education Process is Lengthy and Expensive) :** प्लेटो का शिक्षा–क्रम इतना लम्बा और खर्चीला है कि इसको धनी–वर्ग ही ग्रहण कर सकता है। 35 वर्ष तक लगातार अध्ययन से ज्ञान का उत्साह कम हो जाता है और लोगों में इसके प्रति आकर्षण समाप्त हो जाता है। यह राज्य की व्यक्ति के ऊपर जबरदस्ती थोपी गई इच्छा है।
7. **पुरूषों व स्त्रियों की प्रकृति और भावना में अन्तर :** प्लेटो ने सभी पुरूषों एवं स्त्रियों के लिए एक ही प्रकार का पाठ्यक्रम निश्चित किया है। दोनों के स्वभाव एवं

भावनाओं में अन्तर होने के कारण दोनों के पाठ्यक्रम में अन्तर होना आवश्यक है। प्लेटो ने दोनों के लिए समान शिक्षा व्यवस्था करने की भारी भूल है।

8. **शिक्षा – योजना में विरोधाभास (Paradox in Education System) :** एक ओर तो प्लेटो शिक्षा व्यवस्था को आदर्श राज्य का आधार मानता है, दूसरी तरफ राज्य का नियन्त्रण स्थापित करता है। यदि उचित शिक्षा के द्वारा आदर्श राज्य की स्थापना हो सकती है तो राज्य का शिक्षा पर नियन्त्रण ठीक नहीं है। प्लेटो कहता है कि उचित शिक्षा की व्यवस्था राज्य द्वारा ही हो सकती है, लेकिन दूसरी ओर शिक्षा व्यवस्था आदर्श राज्य की स्थापना के बाद प्रारम्भ होती है। अतः प्लेटो के दृष्टिकोण में विरोधाभास है। बार्कर के अनुसार – "प्लेटो के शिक्षा सिद्धान्त में कार्य सम्बन्धी आदर्श तथा चिन्तन सम्बन्धी आदर्श के बीच एक प्रकार की डगमगाहट पाई जाती है।"
9. **तकनीकी शिक्षा का कोई प्रावधान नही :** प्लेटो ने अपनी शिक्षा योजना में तकनीकी शिक्षा का कोई प्रावधान नहीं किया है जो आज के औद्योगिक और तकनीकी विकास के लिए आवश्यक है। तकनीकी विकास के बिना किसी भी राज्य का आर्थिक विकास नहीं हो सकता।
10. **अनावश्यक एकरूपता का दोष** : प्लेटो ने अपनी शिक्षा योजना में सदैव के लिए एक स्थायी और परिवर्तनशील पाठ्यक्रय निश्चित किया है। परन्तु वह मानव स्वभाव की रूचि की विविधता को भूल जाता है जिससे वैचारिक संकीर्णता बढ़ती है।
11. **शिक्षा योजना में अधिनायकवाद** : प्रो० अल्फ्रेड हार्नले के अनुसार प्लेटो के शिक्षा सिद्धान्त में अधिनायकतन्त्र के बीज छिपे हैं। फासीवादी, नाजीवादी और साम्यवादी के समान प्लेटो का राज्य भी शिक्षा पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है, कला और साहित्य पर कठोर प्रतिबन्ध लगाता है, शासन के अनुरूप व्यक्ति के व्यक्तित्व को ढालता है एवं व्यक्ति को अपनी प्रतिभा को स्वतन्त्र रूप से मुखरित करने से वंचित करता है।
12. **व्यक्तित्व का स्वतन्त्र विकास नहीं :** प्लेटो ने व्यक्ति के व्यक्तिव का विकास राज्य के हित के अनुकूल किया है। प्लेटो ने राज्य के हितों पर व्यक्ति के हितों की बलि

चढ़ाकर व्यक्ति के व्यक्तिव की स्वतन्त्रता पर ध्यान नहीं दिया है। पापर के अनुसार – "प्लेटो की शिक्षा का उद्देश्य आत्म–समीक्षा करना एवं समीक्षात्मक विचारों को जगाना नहीं, अपितु मत–शिक्षण है – मस्तिष्क और आत्मा के एक ऐसे साँचे में ढालना है कि वे स्वतन्त्र रूप से कुछ करे के योग्य न हो सकें।

प्लेटो की शिक्षा सिद्धान्त का महत्त्व (Importance of Platonic Theory of Education)

प्लेटो के सिद्धान्त की अनेक आलोचनाएँ हुई फिर भी उसका महत्त्व है प्लेटो के विचार आधुनिक युग के लिए भी सत्य है। आधुनिक युग में भी स्त्रियों की शिक्षा पर जोर दिया जा रहा है, यह प्लेटो की देन है। मानसिक विकास के साथ –साथ शारीरिक शिक्षा पर भी आज जोर दिया जा रहा है। आज विश्व के अनके देशों में खराब साहित्य पर राज्य रोक लगाता है। प्लेटो के शिक्षा सिद्धान्त के निम्नलिखित महत्त्व है :–

1. प्लेटो पहला चिन्तक है जिसने यह बताया कि शिक्षा का सम्बन्ध केवल जीवन के किसी एक निश्चित काल से न होकर समस्त जीवन से है। प्लेटो ने आजीवन शिक्षा की व्यवस्था की है।
2. प्लेटो ने शिक्षा को आजीवन व निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया बताया है। यह सिर्फ मानसिक नहीं, धार्मिक, नैतिक और शारीरिक भी है; संकीर्ण नहीं, सर्वांगीण हैं, सैद्धान्तिक नहीं, व्यावहारिक भी है।
3. प्लेटो उचित आयु के लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था करता है।
4. प्लेटो की शिक्षा का उद्देश्य शरीर और मस्तिष्क दोनों का विकास करना है।
5. प्लेटो का प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की अनिवार्य व्यवस्था आज के राज्यों में भी पाई जाती है। यह प्लेटो के सिद्धान्त का अनुसरण है।

मैक्सी के अनुसार – "प्लेटो की शिक्षा योजना अनेक दृष्टियों से आश्चर्यजनक रूप में आधुनिक लगती है।" प्लेटो ने शिक्षा पर जो बल दिया है तथा शिक्षा का जो व्यापक महत्त्व बताया है। उसके लिए संसार उस महान् शिक्षा – शास्त्री का सदैव ऋणी रहेगा। जावेट का सारगर्भित कथन है – "प्लेटो पहला लेखक है जो स्पष्ट रूप से कहता है कि शिक्षा का

क्रम आजीवन चलना चाहिए।" अतः प्लेटो का शिक्षा सिद्धान्त राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में एक अमूल्य एवं बहुत ही महत्त्वपूर्ण देन है।

1.8 साम्यवाद का सिद्धान्त (Theory of Communism)

प्लेटो ने अपने आदर्श में न्याय की प्राप्ति के लिए जो दो तरीके अपनाए हैं, उनमें से साम्यवाद का निषेधात्मक व भौतिक तरीका भी शामिल है। प्लेटो का मानना है कि आदर्श राज्य की स्थापना में तीन बाधाएँ – अज्ञान, निजी सम्पत्ति व निजी परिवार है। इन बाधाओं को दूर करने के लिए प्लेटो शिक्षा का सिद्धान्त व साम्यवादी व्यवस्था का प्रावधान करता है। अज्ञान को तो शिक्षा द्वारा दूर किया जा सकता है लेकिन निजी सम्पत्ति परिवार की संस्था का लोप करने के लिए व जिस व्यवस्था का समर्थन करता है, वह साम्यवाद के नाम से जानी जाती है। प्लेटो का साम्यवाद राजनीतिक सत्ता तथा आर्थिक लोलुपता के सम्मिश्रण से उत्पन्न बुराई को दूर करता है। प्लेटो साम्यवाद के द्वारा अभिभावक या संरक्षक वर्ग को सम्पत्ति तथा पारिवारिक जीवन की चिन्ताओं से मुक्त रखना चाहता है। इस सिद्धान्त को प्रतिपादित करने के पीछे प्लेटो का उद्देश्य शिक्षा के माध्यम से निःस्वार्थी शासकों को तैयार करने के बाद भी सांसारिक आकर्षणों और चारित्रिक दुर्बलताओं के शिकार होकर अपने कर्त्तव्य – पथ से भटकने को रोकना है। प्लेटो साम्यवाद को समाज का आध्यात्मिक उत्थान करने का नकारात्मक मार्ग कहता है। वह इसे व्यक्ति के उत्थान का भौतिक साधन मानता है। प्लेटो का मानना है कि कांचन और कामिनी का मोह संरक्षक वर्ग को धनलोलुप, स्वार्थी और आस्क्त बना देता है। अतः संरक्षक वर्ग को अपने कर्त्तव्य पथ से विचलित होने से रोकना अति आवश्यक है। इसके लिए वह सम्पत्ति और पत्नियों का साम्यवाद का सिद्धान्त पेश करता है। इसके बारे में बार्कर ने कहा है – "साम्यवाद आत्मिक सुधार का केवल एक भौतिक व आर्थिक अनुपूरक साधन है, जिसे सर्वप्रथम तथा सर्वाधिक महत्त्व देते हुए प्लेटो लागू करना चाहता है।"

साम्यवाद का अर्थ (Meaning of Communism)

प्लेटो का मानना है कि सैनिक और शासकों के लिए आदर्श राज्य में न तो अपना परिवार या घर होना चाहिए न ही निजी सम्पत्ति। अपने इस उद्देश्य या विचार को सकारात्मक रूप देने के लिए प्लेटो ने जिस विस्तृत योजना का निर्माण किया है, उसे ही प्लेटो का साम्यवाद या प्लेटो का साम्यवादी सिद्धान्त कहा जाता है। प्लेटो का कहना है कि सरंक्षक या अभिभावक वर्ग के सदस्य विवाह करने और निजी परिवार बसाने के अधिकार से वंचित रहेंगे। पतियों, पत्नियों तथा बच्चों पर एक व्यक्ति या परिवार का अधिकार न होकर, सम्पूर्ण समाज या राज्य का अधिकार रहेगा। सभी को उसमें साँझा अधिकार प्राप्त होगा। अच्छी संतान या योग्य संतान पैदा करने के लिए योग्य पुरूष व स्त्री का संयोग कराया जाएगा, संरक्षक वर्ग के सदस्य निजी सम्पत्ति से भी वंचित रखे गए हैं। प्लेटो के अनुसार समस्त सम्पत्ति (चल व अचल) राज्य के नियन्त्रण में ही रहेगी। प्लेटो की योजना के अनुसार सभी सैनिकों व शासकों को (अभिभावक या संरक्षक वर्ग) बैरकों में रखना होगा और उन्हें साथ – साथ भोजन करना होगा। उत्पादक वर्ग अपनी पैदावार का कुछ हिस्सा उनहें दे देगा ताकि उनकी अनिवार्य आवश्यकताएँ पूरी हो सकें। सामूहिकता की जीवन–व्यवस्था को प्लेटो ने पत्नियों व सम्पत्ति को साम्यवाद का नाम दिया है।

प्रेरणा स्त्रोत (Sources of Inspiration)

प्लेटो की साम्यवादी विचारधारा कोई नवीन तथा मौलिक विचारधारा नहीं है। प्लेटो से पहले भी यूनान में साम्यवाद के बीज विद्यमान थे। एथेन्स में 5 वीं शताब्दी ई० पूर्व में ही साम्यवाद के दर्शन होते हैं। एथेन्स में राज्य का व्यक्तिगत सम्पत्ति पर नियन्त्रण था। स्पार्टा में स्त्रियों को राज्य हित की दृष्टि से शासन संचालन का भार सौंप दिया जाता था, बालकों को 7 वर्ष की आयु के बाद राज्य को सौंप दिया जाता था। स्पार्टा में सार्वजनिक जलपान गृह तथा भोजनालयों की व्यवस्था थी। स्पार्टा के नागरिक अपनी उपज का एक भाग सामूहिक भोजनालयों में भेजते थे। क्रीट नामक नगर में सामूहिक खेती की जाती थी। एथेन्स के नगर में भी राज्य की अपनी जंगलात व खानें थी। एथेन्स में पाइथोगोरस का

मत था – "मित्रों की सम्पत्ति पर समान रूप से सबका अधिकार है।" यह साम्यवादी विचार था यूरीपाइडीज नामक विचारक ने भी प्लेटो से पहले ही स्त्रियों के साम्यवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर दिया था, हिरोडोटस ने अर्गाथीसियन्ज की चर्चा में नारियों की साम्यवादी प्रथा का वर्णन किया है।

प्लेटो के साम्यवादी विचारों पर तत्कालीन परिस्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ा है। प्लेटो के काल में सम्पत्तिशालियों के हित में शासन का संचालन होता था, शोषण प्रथा प्रचलित थी एवं आर्थिक तत्त्व राजनीतिक वातावरण पर प्रभावी थे। प्लेटो के युग में महिलाओं की दशा काफी दयनीय थी। सामाजिक क्षेत्र में उनकी भूमिका नगणय थी। उन्हें चारदिवारी तक ही सीमित कर दिया गया था। प्लेटो नारियों की दुर्दशा से चिन्तित था। इसलिए उसने नारी उत्थान के लिए पत्नियों के साम्यवाद का सिद्धान्त पेश किया।

प्लेटो के साम्यवाद की विशेषताएँ (Features of Plato's Communism)

प्लेटो की सम्पत्ति व पत्नियों से सम्बन्धित साम्यवाद की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :–

1. **अर्ध–साम्यवाद (Half Communism)** : प्लेटो की साम्यवादी व्यवस्था समाज के केवल एक वर्ग (शासक वर्ग) पर लागू होती है; उत्पादक वर्ग पर नहीं। इसमें संरक्षक वर्ग सम्पत्ति और कुटुम्ब से अछूता रहेगा, उत्पादक वर्ग को अपनी सम्पति व परिवार रहेंगे। इसलिए इसे अर्ध – साम्यवाद की संज्ञा दी जाती है।
2. **न्याय की पूरक व्यवस्था (Supplementary to Justice) :** प्लेटो के न्याय सिद्धान्त का प्रमुख उद्देश्य आदर्श राज्य की स्थापना करना है। प्लेटो ने न्याय सिद्धान्त की व्यावहारिकता के लिए दो साधानों – शिक्षा एवं साम्यवाद को अपनाया है। शिक्षा योजना न्याय की प्राप्ति का आध्यात्मिक व सकारात्मक साधन है; वहीं साम्यवादी योजना न्याय की प्राप्ति का भौतिक व नकारात्मक तरीका है।
3. **अभिजातवादी (Aristocratic) :** प्लेटो केवल उच्च वर्ग को ही साम्यवादी व्यवस्था के अन्तर्गत रखता है। यह व्यवस्था केवल शासक वर्ग के लिए है, साम्यवाद का प्रयोजन केवल थोड़े शासकों के जीवन को नियन्त्रित करना है ताकि वे सामाजिक

हित के कार्य निर्बाध रूप से पूरे कर सकें। अतः प्लेटों का साम्यवाद 'बौद्धिक अल्पतन्त्र' के शासन की स्थापना करता है।

4. **राजनीतिक (Political) :** प्लेटो का साम्यवाद आर्थिक न होकर राजनीतिक है। प्लेटो के साम्यवाद का उद्देश्य आर्थिक असमानता को दूर करना नहीं था अपितु तत्कालीन दोषों को दूर करना था। प्लेटो चाहता था कि शासन की बागडोर दार्शनिक शासक के हाथों में हो।
5. **तपस्यात्मक (Ascetic) :** प्लेटो ने शासक तथा सैनिक वर्ग को सम्पत्ति तथा परिवार का मोह त्यागकर सन्यासी बनने को कहा है। यह व्यक्तिगत सुख की अपेक्षा समाज के सुख को महत्त्व देता है। प्लेटो के शासक वर्ग का जीवन त्याग का है, भौतिक सुखों का नहीं। प्लेटो का साम्यवाद साधुवादी है जिसमें शासक वर्ग समस्त आर्थिक सुख – सुविधाओं का त्याग करता है।
6. **आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन नहीं (No change in Economic Pattern) :** प्लेटो का साम्यवाद उत्पादक वर्ग को इस व्यवस्था से बाहर रखता है। उत्पादक वर्ग अपनी सम्पत्ति का स्वामी बन रहता है। प्लेटो अपने साम्यवाद में आर्थिक ढाँचे को यथावत् बनाए रखना चाहता है।
7. **राज्य की एकता की रक्षक व्यवस्था (System of Preserving Unity of State) :** प्लेटो राज्य में एकता स्थापित करने के लिए संरक्षक वर्ग के लिए साम्यवादी व्यवस्था की योजना प्रस्तुत करता है। प्लेटो की साम्यवादी योजना अभिभावक वर्ग को कंचन और कामिनी के मोह से दूर रखकर सार्वजनिक हित में शासन करने के लिए प्रेरित करेगी। स्त्रियों को भी राज्य की सेवा का सक्रिय अवसर मिलेगा, इससे राज्य की एकता में वृद्धि होगी।

साम्यवाद के प्रकार

प्लेटो का साम्यवाद दो तरह का है :–

(क) सम्पत्ति का साम्यवाद (Communism of Property)

(ख) पत्नियों का साम्यवाद (Communism of Wives)

(क) **सम्पत्ति का साम्यवाद** : प्लेटो ने सम्पत्ति के साम्यवाद के अन्तर्गत यह व्यवस्था की है कि अभिभावक वर्ग के लिए अर्थात शासक एवं सैनिक वर्ग के लिए निजी सम्पत्ति निषिद्ध होगी; उनकी कोई निजी भूमि या निजी सम्पत्ति नहीं होगी। उनका निजी घर भी नहीं होगा अपितु वे राज्य द्वारा निर्मित बैरकों में रहेंगे, उनका आवास सभी के लिए खुला रहेगा। जिसमें कोई भी कभी आ सके। राज्य के उत्पादकों द्वारा उनको इतनी जीवन वृति दी जाएगी कि वह उनके लिए कम न पड़े और न ही निजी संग्रह के लिए बचे। वे सामूहिक रूप से मेजों पर भोजन करेंगे। उन्हें सोने – चाँदी के सामान का स्पर्श करना निषिद्ध होगा। चल–अचल सम्पत्त्वि से विरक्त होकर वे देश की सेवा और रक्षा करेंगे। इसी में उनकी मुक्ति है और ऐसा करने से वे राज्य के रक्षक बन सकेंगे। किन्तु जब वे कभी भी भूमि, घर और धन का उपार्जन करेंगे तब वे अन्य नगरवासियों से घृणा करेंगे और वे लोगों से। वे अपने सार्वजनिक हित के धर्म से पदच्युत हो जाएंगे। इस प्रकार वे राष्ट्र के सर्वनाश का ही मार्ग प्रशस्त करेंगे। प्लेटो के सम्पत्ति विषयक साम्वाद की कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित है:–

1. यह साम्यवाद सभी नागरिकों के लिए नहीं, "बल्कि केवल शासक और सैनिक वर्ग के लिए है। उसका उद्देश्य यद्वपि सम्पूर्ण समाज का कल्याण है किन्तु सम्पूर्ण समाज द्वारा व्यवहार में नहीं लिया जाता है।
2. प्लेटो का सम्पत्ति सम्बन्धी साम्यवाद भोग का नहीं बल्कि त्याग का मार्ग है। यह समाज के शासक वर्ग की कंचन और कामिनी का मोह छोड़कर जन–कल्याण में लगे रहने के लिए प्रेरित करता है। फोस्टर के शब्दों में – "प्लेटो के संरक्षक वर्ग

को सामूहिक रूप से सम्पत्ति का स्वामित्व ग्रहण करना नहीं, वरन् इसका त्याग करना है।"

3. इसका उद्देश्य राजनीतिक है, आर्थिक नहीं। वर्तमान साम्यवाद की तरह यह आर्थिक विषमता को दूर न करके राजनीतिक दोषों को ही दूर करता है।

सम्पत्ति के साम्यवाद के पक्ष में तर्क (Arguments in favour of the ommunism of Property)

प्लेटो ने निम्न आधारों पर सम्पत्ति को साम्यवाद का समर्थन किया है :–

1. **मनोवैज्ञानिक आधार (Psychological Basis)** : प्लेटो के अनुसार शासक और सैनिक आत्मा के विवेक और साहस तत्त्व का क्रमशः प्रतिनिधित्व करते हैं। इन तत्त्वों से प्रेरित होकर वे अपने निश्चित प्रतिनिधित्व करते हैं। इन तत्त्वों से प्रेरित होकर वे अपने निश्चित उत्तरदायित्वों को निभाना चाहते हैं, तो उन्हें क्षुधारूपी निकृष्ट तत्त्व के जाल में नहीं फँसना चाहिए। निजी सम्पत्ति की व्यवस्था मनुष्य की उदार प्रवृत्ति पर विपरित प्रभाव डालती है और व्यक्ति को स्वार्थी बनाती है। यदि दार्शनिक शासक व सैनिक वर्ग के लिए निजी सम्पत्ति की व्यवस्था स्वीकार की जाएगी तो उनमें भी स्वार्थ की वृद्धि होगी और क्रमशः उनका विवेक और साहस कुण्ठित हो जाएगा। सेबाइन के अनुसार – "शासकों को लालच से मुक्ति दिलाने का एक ही उपाय है कि उन्हें किसी चीज को अपना या निजी कहने के अधिकार से वंचित कर दिया जाए और यह उपाय प्लेटों की सम्पत्ति की व्यवस्था में ही सम्भव है।" अतः प्लेटो का सम्पत्ति का साम्यवाद आदर्श राज्य के लिए मनोवैज्ञानिक आवश्यक शर्त है।
2. **राजनीतिक और व्यावहारिक आधार** : प्लेटो का सम्पत्ति का सिद्धान्त दो आधारों पर राजनीतिक है। एक तो यह सिर्फ शासक व सैनिक वर्ग पर लागू होता है, उत्पादक वर्ग पर नहीं। शासक वर्ग तक सीमित होने के कारण यह राजनीतिक है। दूसरा यह है कि शासन के ऊपर धन का बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इस बुराई को दूर करने के लिए प्लेटो अभिभावक वर्ग को सम्पत्ति के अधिकार से मुक्त करता है। प्लेटो के

अनुसार जब राजसत्ता तथा निजी सम्पत्ति का संयोग हो जाता है तो राज्य का पतन हो जाता है। शासक वर्ग धन की लालसा के लिए सत्ता का दुरूपयोग करता है। अतः प्लेटो राजनीतिक अर्थ शक्ति के केन्द्रीयकरण को समाप्त करके शासक वर्ग को केवल राजनीतिक शक्ति देने के पक्ष में है। प्लेटो की यही व्यावहारिक मान्यता भी है और राजनीतिक अनिवार्यता। यदि शासकों को व्यक्तिगत सम्पत्ति की छूट दी जाए तो शासक वर्ग भ्रष्ट होकर आदर्श राज्य को धनिकतन्त्र (Plutocracy) में बदल देगा। इस सम्बन्ध में सेबाइन ने लिखा है – "जहाँ तक सैनिकों व शासकों का सम्बन्ध है, प्लेटो को शासन के ऊपर धन के बुरे प्रभावों के बारे में इतना दृढ़ विश्वास था कि इस दोष को मिटाने के लिए उसे स्वयं सम्पत्ति के नाश के अतिरिक्त कोई रास्ता दिखाई नहीं दिया।"

3. **नैतिक आधार (Moral Basis)** : प्लेटो इस बात में विश्वास नहीं करता कि व्यक्ति का अस्तित्व मात्र स्वार्थसिद्धि के लिए है, उनके अनुसार कर्त्तव्यों का पूर्ण निष्ठा के साथ सम्पादन कर, अपने योग्य कार्य – क्षेत्र की सीमा में रहकर एवं समष्टि के एक अभिन्न अंग के रूप में अपने अस्तित्व को स्वीकार करके ही व्यक्ति अपने जीवन को सार्थक बना सकता है। प्लेटो का सिद्धान्त व्यक्ति को विवेकी व निस्वार्थी बनाकर कर्त्तव्यों का सम्पादन करने पर जोर देता है।
4. **दार्शनिक आधार (Philosophical Basis)** : प्लेटो का सम्पत्ति का साम्यवादी सिद्धान्त दार्शनिक आधार पर भी उचित है। प्लेटो ने इसे कार्य विशिष्टीकरण के आधार पर सही ठहराया है। प्लेटो का कहना है कि जिन लोगों के ऊपर शासन का भार है, उनकी जीवन–शैली विशिष्ट होनी चाहिए। यह शैली कार्य विशेष के आधार पर ही होनी चाहिए। शासक वर्ग को उच्चादर्शों को प्राप्त करने के लिए सांसारिक प्रलोभनों से मुक्त होना चाहिए। प्लेटो का कहना है कि जिन व्यक्तियों पर शासन का भार है, उन्हें अपने कार्य में बाँधा या विघ्न उत्पन्न करने वाले सभी सांसारिक तत्त्व से उसी प्रकार बचना चाहिए जिस प्रकार ईश्वर की भक्ति में लगे एक साधक या संन्यासी को घर, पानी, बच्चे, सम्पत्ति या सांसारिक मोह–माया से दूर रहना चाहिए।

सम्पत्ति के साम्यवाद के उद्देश्य (Aims of Communism of Property)

प्लेटो की सम्पत्ति की योजना के प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार से है :–

1. **सार्वजनिक हित के लिए (For Public Interest)** : प्लेटो का दार्शनिक राजा सार्वजनिक हित में शासन करता है। वह सैनिक वर्ग व उत्पादक वर्ग पर सार्वजनिक हित के ही सन्दर्भ में कठोर नियन्त्रण रखता है।
2. **अभिभावक वर्ग के लिए कार्यकुशलता (For efficiency of Guardian Class)** : सम्पत्ति के साम्यवाद की योजना सैनिक वर्ग तथा शासक वर्ग को आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त करती है वह अपना समस्त समय व ध्यान अपनी कार्यकुशलता की वृद्धि में लगा सकते हैं।
3. **राज्य की एकता के लिए (For the Unity of State)** : जब शासक वर्ग के पास निजी सम्पत्ति होती है तो शासक वर्ग में सम्पत्ति को लेकर आपसी प्रतियोगिता व ईर्ष्या भी होती है और इससे राज्य को एकता को भय उत्पन्न हो जाता है। किन्तु सम्पत्ति को साम्यवादी योजना शासक वर्ग में इस प्रकार का भय उत्पन्न नहीं होने देती और यह राज्य की एकता की रक्षक सिद्ध होती है।
4. **सामाजिक भ्रातृभाव के लिए (For Social Harmony)** : प्लेटो का सम्पत्ति का साम्यवाद संरक्षक वर्ग को साधुवादी प्रवृति अपनाने की सलाह देता है। सम्पत्ति पर किसी एक का अधिकार न होकर सम्पूर्ण समाज का अधिकार होगा। इससे किसी के पास कम या अधिक सम्पत्ति संचय करने की भावना पैदा नहीं होगी। सम्पत्ति का साम्यवाद लोगों में भ्रातृभाव की भावना को जन्म देगा।

सम्पत्ति के साम्यवाद की आलोचनाएँ (Criticisms of Communism of Property)

प्लेटो के सम्पत्ति सम्बन्धी साम्यवाद की सेबाइन, बार्कर, पोपर व अरस्तू द्वारा अनेक आलोचनाएँ की गई हैं :–

(क) अरस्तू द्वारा की गई आलोचनाएँ (Aristotle's Criticisms)

1. यह धारणा मानवीय प्रकृति की मूलभूत प्रवृत्तियों की अवहेलना करती है। प्रत्येक मानव में निजी सम्पत्ति प्राप्त करना उसकी स्वाभाविक प्रवृति है और अगर उसे इस

अधिकार से वंचित रखने की कोशिश की जाती है तो यह उसकी प्रकृति के प्रतिकूल बात होगी।

2. अरस्तू साम्यवाद को जीवन के सामान्य अनुभव के विरूद्ध मानता है।
3. अरस्तू का यह भी कहना है कि सम्पत्ति की साँझी व्यवस्था कभी भी सामाजिक कल्याण में वृद्धि नहीं कर सकती।
4. अरस्तू का यह भी कहना है कि वैयक्तिक सम्पत्ति की प्रथा का विकास हमारी सभ्यता के विकास का प्रतीक है। वैयक्तिक सम्पत्ति का अभाव प्रगति के मार्ग को रोकता है।
5. इससे परोपकार और उदारता की श्रेष्ठ मानवीय सम्भावनाएँ नष्ट हो जाएँगी क्योंकि व्यक्ति परोपकार सम्बन्धी कार्य निजी सम्पत्ति के आधार पर ही करता है।
6. अरस्तू ने यह विचार प्रस्तुत किया है कि यह अधिक अच्छा होगा कि सम्पत्ति निजी हो परन्तु उसका प्रयोग सामूहिक हो। इससे राज्य तथा व्यक्ति दोनों का भला हो सकता है।
7. व्यक्तिगण सम्पत्ति के लिए उत्साह और लगन के कारण ही मनुष्य दुसरों के साथ प्रतियोगिता करता है तथा अपने सर्वोत्तम गुणों का विकास करता है परन्तु निजी सम्पत्ति के न होने पर ऐसा नहीं होगा।
8. प्लेटो की यह योजना बहुमत को शामिल नहीं करती है और इसलिए यह असफल होकर रहेगी तथा इससे राज्य में विभाजन होगा तथा फूट, ईर्ष्या व कलह की सम्भावना प्रबल होगी।
9. अरस्तू का मानना है कि बिना सम्पत्ति के अभिभावक वर्ग सुखी नहीं रहेगा और जिस राज्य में शासक वर्ग ही सुखी नहीं रहेगा उसमें भला प्रजा कैसे सुखी रह सकती है। अतः प्लेटो का साम्यवादी राज्य एक दुःखपूर्ण राज्य होगा।
10. राज्य में एकता को उचित शिक्षा द्वारा ही बढ़ाया जाना चाहिए, साम्यवाद से नहीं। प्लेटो स्वयं आत्मिक उपाय को भौतिक उपाय से अधिक महत्त्व देते हैं। अतः साम्यवाद एक गौण उपाय है।

11. प्लेटो आवश्यकता से अधिक एकता लाने की प्रवृति पर कायम है। वह राज्य की वेदी पर व्यक्तियों की इच्छाओं का बलिदान कर देता है।

(ख) **अन्य विद्वानों द्वारा की गई आलोचनाएँ (Criticisms Advocated by Others)**

1. **सद्‌गुणों के विकास में बाधक (Obstacle in the development of the Virture)** : निजी सम्पति की व्यवस्था अनेक सद्‌गुणों के विकास में सहायक होती है, जैसे दान, परोपकार, अतिशय आदि के सद्‌गुण। किन्तु प्लेटो ने निजी सम्पत्ति के अवगुणों की ओर ध्यान न देकर संरक्षक वर्ग को इससे वंचित कर दिया है, जो अनुचित है।
2. **मानव स्वभाव के प्रतिकूल (Against Human Nature)** : प्लेटो ने निजी सम्पत्ति का अन्त करके मानव स्वभाव के विपरित कार्य किया है। सम्पत्ति अर्जित करना मानव की स्वाभाविक प्रवृति है। इससे व्यक्ति के अनेक उदार गुण विकसित होते है। अतः प्लेटो ने मानव स्वभाव के विपरित कार्य किया है।
3. **न्यायपूर्ण वितरण की समस्या (Problem of Just Distribution)** : निजी सम्पत्ति के अभाव में यह बताना कठिन होगा कि किस व्यक्ति का समाज में कितना योगदान है। इससे न्यायपूर्ण वितरण की अनेक समस्याएँ खड़ी होंगी जो समाज की एकता को नष्ट कर देंगी।
4. **व्यक्ति की प्रेरणा शक्ति का हास (Effect Incentrive to Work) :** निजी सम्पत्ति के समर्थकों का मानना है कि सम्पत्ति का आकर्षण व्यक्ति को अधिक से अधिक कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करता है। इसी प्रेरणा से व्यक्ति अनेक नए–नए आविष्कार करता है, परिश्रम करता है। इसके अभाव में प्रेरणादायक शक्ति का हास हो जाएगा।
5. **अमनोवैज्ञानिक (Unpsychological) :** निजी सम्पत्ति की संख्या मानव स्वभाव के अनुकूल है। व्यक्ति सम्पत्ति अर्जन करने के लिए ही सारे क्रियाकलाप करता है। प्लेटो अभिभावक वर्ग को इससे वंचित करके मानव प्रकृति के विरूद्ध चला जाता है। अतः प्लेटो का सम्पत्ति का सिद्धान्त अमनोवैज्ञानिक है।

6. **अर्ध–साम्यवाद (Half-Communism) :** प्लेटो सम्पूर्ण सामाजिक इकाई की बजाय एक वर्ग विशेष को ही इस व्यवस्था में शामिल करता है। प्लेटो का साम्यवाद केवल शासक और सैनिक (संरक्षक) वर्ग के लिए ही है। अगर व्यक्तिगत सम्पत्ति मतभेद, अनेकता, लोभ व मोह का जन्म देती है तो उत्पादक वर्ग को इसका अधिकार देना विवेकपूर्ण नहीं है।
7. **मानव स्वतन्त्रता के बलि चढ़ाना (Opression of Human Liberty) :** प्लेटो ने साम्यवाद के नाम पर मानव – स्वतन्त्रता का दमन किया है। प्लेटो की साम्यवाद व्यवस्था में केवल वही कार्य करने का अधिकार होगा जो राज्य चाहेगा। प्लेटो ने व्यक्ति को एक साधनमात्र मानकर व्यक्ति के अधिकार व स्वतन्त्रताओं पर कुठारघात किया है।
8. **सम्पत्ति से वंचित शासकों की कठिनाइयाँ (Problems faced by Rulers without Property) –** प्लेटो के संरक्षक वर्ग के सदस्य व्यक्तिगत सम्पत्ति से सम्बन्धित समस्याओं और प्रेरणाओं के ज्ञान से भी वंचित रहेंगे जिसके कारण उन्हें साधारण लोगों की सम्पत्ति से जुड़ी समस्याओं का निपटारा करने में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। शासक उत्पादक वर्ग की व्यक्तिगत सम्पत्ति को तभी नियन्त्रित कर सकता है, जबकि वह स्वयं निजी सम्पति के गुण – दोषों के बारे में ज्ञान रखता हो।
9. **आध्यात्मिक रोगों के लिए भौतिक उपचार अनुचित (Materialistic Treatment to Spritual Problems is not Correct):** प्लेटो ने आध्यात्मिक रोगों को रोकने के लिए कोई आध्यात्मिक औषधि न ढूँढकर भौतिक साधनों का सहारा लिया है। संसार की भौतिक वस्तुएँ आध्यात्मिक वस्तुओं के साथ लगी हुई है, जिनके निराकरण से यदि बुराई दुर होती है तो उनके द्वारा जो हित होता है, वह भी दूर हो जाएगा। भौतिकतर आध्यात्मिकता का आधार है और उसके लिए साधन भी। भौतिकता को दूर करने का तात्पर्य होगा इन साधनों का अन्त।

10. **तपस्यात्मक (Ascetic) :** सम्पत्ति के साम्यवाद की योजना सार्वजनिक हित के नाम पर अभिभावक वर्ग को सम्पत्तिहीन रखती है और सम्पत्ति सम्बन्धी स्वतन्त्रता का अन्त करती है तथा तपस्वी का जीवन व्यतीत करने पर बाध्य करती है। प्लेटो के साम्यवाद में व्यक्ति का जीवन त्याग का जीवन है, भौतिक सुखों का भोग नहीं। प्लेटो का साम्यवाद साधुवादी हैं जिसमें राज्य के श्रेष्ठ व्यक्ति आर्थिक सुख – सुविधाओं का त्याग करते हैं। अतः साम्यवाद तपस्यात्मक है।
11. **दास – प्रथा का जिक्र नहीं (Silent on Slavery System) :** प्लेटो ने अपने व्यक्तिगत सम्पत्ति के सिद्वान्त में दास–प्रथा जैसे महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त की चर्चा नहीं की है। प्लेटो ने किसी ऐसे कार्य का उल्लेख नहीं किया है जो दासों द्वारा किया जाए। प्लेटो का दास – प्रथा को महत्त्वहीन समझना उसे स्वयं को ही महत्त्वहीन बना देता है।
12. **सम्पत्ति पर एक पक्षीय विचार (One sided Views on Property) :** प्लेटो सम्पत्ति के अवगुणों के आधार पर ही अपने सम्पत्ति के साम्यवादी सिद्धान्त को खड़ा करता हैं उसने सम्पत्ति के गुणों की अनदेखी करने की भारी भूल की है।

अनेक आलोचनाओं के बावजूद यह मानना ही पड़ेगा कि प्लेटो का सम्पत्ति का साम्यवादी सिद्धान्त व्यावहारिक, तर्कपूर्ण एवं उपयोगी है। यह उनके न्याय सिद्धान्त का तर्कसंगत निष्कर्ष है। सम्पत्ति का लालच समाज में भ्रष्टाचार व अराजकता को जन्म देता है। आज के सामाजिक वैमनस्य के लिए सम्पत्ति की चाह ही जिम्मेदार हैं प्लेटो ने तत्कालीन एथेन्स की सामाजिक बुराइयों को बहुत करीब से देखा था और उन दोषों को दूर करने के लिए उसने अपना यह सिद्धान्त खड़ा किया। य़द्यपि उसकी कुछ आलोचनाएँ तर्कपूर्ण हैं लेकिन आज भी यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि प्लेटो का साम्यवादी सिद्धान्त बहुत महत्त्वपूर्ण देन है।

1.8 पत्नियों का साम्यवाद (Communism of Wives)

प्लेटो अपनी पुस्तक रिपब्लिक में सरंक्षक वर्ग के लिए केवल निजी सम्पत्ति को ही निषिद्ध नहीं करता अपितु परिवार की संस्था को समाप्त कर अपनी पत्नियों की साम्यवादी योजना भी प्रस्तुत करता है। प्लेटो के न्याय सिद्धान्त पर आधारित एक आदर्श के निर्माण के लिए सम्पत्ति के साम्यवाद के साथ ही परिवार का साम्यवाद भी जरूरी है। प्लेटो के न्याय सिद्धान्त पर आधारित एक आदर्श के निर्माण के लिए सम्पत्ति के साम्यवाद के साथ ही परिवार का साम्यवाद भी जरूरी है। प्लेटो परिवार व सम्पत्ति में घनिष्ठ सम्बन्ध मानता है। वस्तुतः परिवार का साम्यवाद की योजना उसके सम्पत्ति के ही साम्यवाद का तार्किक विस्तार है। प्लेटोका मानना है कि यदि पारिवारिक संस्था का अन्त किए बिना ही व्यक्तिगत सम्पत्ति के उन्मूलन का प्रयास निरर्थक होगा। विवाह और परिवार भी निजी सम्पत्ति के ही रूप हैं और इससे लालच और ईर्ष्या को बढ़ावा मिलता है। अतः उद्देश्य की दृष्टि से साम्यवाद के ये दोनों प्रकार एक – दूसरे के सहायक व पूरक हैं। प्लेटो के परिवार या पत्नियों के साम्यवाद के महत्त्व पर बार्कर लिखता है – "परिवार की समाप्ति का दिन राज्य के लिए एकता व व्यक्ति के लिए स्वतन्त्रता तथा इन दोनों के लिए न्याय की शुरूआत का दिन होगा।"

पत्नियों के साम्यवाद के पक्ष में तर्क (Arguments for Communism of Wives)

प्लेटो के साम्यवाद का प्लेटो ने निम्न आधारों पर पक्ष लिया है :–

1. **राजनीतिक आधार : (Political Basis)** : प्लेटो चाहता था कि स्त्रियाँ घर की चारदीवारी की कैद से मुक्त होकर राज्य के शासन सम्बन्धी कार्यों में भाग ले। नारियों के योगदान के बिना राज्य अपने आधे भावी संरक्षकों से वंचित रह जाता है। वह स्त्री – पुरूष में कोई भेद स्वीकार नहीं करता। उसका मानना है कि ऐसा कोई भी प्रशासनिक कार्य नहीं है जो स्त्री न कर सके। वह केवल लिंग–भेद को ही स्वीकार करता है, परन्तु इसे शासन क्रियाओं में बाधक नहीं मानता है। प्लेटो का मानना है कि स्त्रियाँ राजनीतिक, प्रशासनिक और सैनिक कार्यों में भाग ले सकती हैं

और अपना कर्त्तव्य उचित प्रकार से निभा सकती हैं। इसलिए प्लेटो परिवार की कैद से उन्हें मुक्ति दिलाना चाहता है।

2. **नैतिक आधार (Ethical Basis)** : प्लेटो का मानना है कि परिवार व सम्पत्ति का मोह शासक वर्ग को भ्रष्ट बना देता है। पारिवारिक स्नेह–बंधन का कारण होता है। संतान की चिन्ता व्यक्ति को स्वार्थी बनाकर पथभ्रष्ट करती है। परिवारों के मोह के कारण शासक अनुचित नीतियों का पालन करते हैं। इससे शासक वर्ग के विभिन्न परिवारों में भी संघर्ष उत्पन्न होता है। यह राज्य की एकता के लिए भय को पैदा करता है। परिवार राज्य की एकता में महान् बाधक होता है। शासक व सैनिक वर्ग परिवार के प्रति अनुरक्त होकर राज्य के प्रति अपने कर्त्तव्यों की अवहेलना कर सकते हैं। अतः प्लेटो नैतिक आधार पर इस साम्यवाद का समर्थन करता है।
3. **सुप्रजनन का आधार (Eugenic Basis)** : प्लेटो तत्कालीन वैवाहिक प्रथा और पारिवारिक व्यवस्था पर कुठारघात करता है। उस समय मनुष्य लापरवाही से संभोग करके पशु–पक्षियों की तरह अवैध सन्तानों को जन्म देते थे जो राज्य के हित में किसी भी दृष्टि से उपयोगी नहीं होती थी। राज्य में कुरूप व अयोग्य सन्तानों का अम्बार लगा हुआ था। प्लेटो ने इस समस्या से निजात दिलाने के लिए महसूस किया कि आदर्श राज्य के लिए श्रेष्ठ नागरिक जरूरी हैं। इसके लिए योग्य पुरूष व स्त्रियों का ही सहवास होना आवश्यक है ताकि श्रेष्ठ सन्तान, ही जन्म ले। प्लेटो संरक्षक या अभिभावक वर्ग को ही इसके योग्य समझकर इस वर्ग के स्त्री पुरूषों में अस्थायी विवाह सम्बन्ध द्वारा सन्तानोत्पत्ति आवश्यक मानता है। परन्तु वह इसमें यह सावधानी रखता है कि स्त्रियों व पुरूषों के जोड़े उनकी आयु व गुण को ध्यान में रखकर ही बनाए जाएं ताकि श्रेष्ठ सन्तान का जन्म हो।

पत्नियों के साम्यवाद का स्वरूप और उसकी व्याख्या (The form of Communism of Wives and its Exposition)

1. **राज्य–परिवार का स्वरूप (Nature of State Family)**: प्लेटो ने संरक्षक वर्ग के निजी परिवार का उन्मूलन कर राज्य – परिवार का समर्थन किया है। उसके समक्ष नारी सुधार की समस्या थी और साथ ही राज्य के लिए अच्छी – से – अच्छी सन्तान उत्पन्न करना चाहता था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने संरक्षक के निजी परिवार का उन्मूलन किया और एक राज्य – परिवार का रूप चित्रित किया।
2. **यौन–सम्बन्ध (Sexual Relation) :** प्लेटो ने उस समय की वैवाहिक प्रथा के दोषों को दूर करने के लिए, अपने – अपने आदर्श के निर्माण के लिए यौन–सम्बन्धों में पत्नियों के साम्यवाद के माध्यम से सुधार करने का प्रयास किया है। संरक्षक वर्ग भी अपनी निजी पत्नी नहीं रख सकेगा। सभी का समाजीकरण कर दिया जाएगा। वे एक साथ बैरकों में रहेंगे और एक साथ खाना खाएँगे। प्लेटो का विश्वास है कि परिपक्व व श्रेष्ठ नर–नारी ही श्रेष्ठ संतान को जन्म दे सकते हैं। जिन स्त्री–पुरूषों ने सार्वजनिक सेवा के कार्य या युद्ध में श्रेष्ठता दिखाई है, उसे अधिक सन्तान पैदा करने की छूट प्राप्त होगी। स्त्री व बच्चे सामाजिक होंगे न कि किसी एक व्यक्ति के।
3. **राज्य बच्चों के पालन – पोषण का पूरा ध्यान रखेगा (State Will take Care of Upbringing)** : प्लेटो अनुसार बच्चों जन्म के बाद उनके पालन–पोषण का उत्तरदायित्व राज्य अपने ऊपर लेगा। बच्चों को शिशु–गृहों में रखा जाएगा। माताएँ बच्चों को राज्य की देख–रेख में दूध पिलाएँगी, परन्तु उन्हें अपने बच्चों का कोई भी निजी ज्ञान नहीं होगा, बच्चों को भी अपनी माँ का कोई ज्ञान नहीं होगा।
4. **बच्चा पैदा करने की आयु (Age of Conception) :** प्लेटो के अनुसार स्त्रियों को 20 से 40 वर्ष तक तथा पुरूषों को 25 से 55 वर्ष तक सन्तान पैदा करने की छूट होगी। इस समय स्त्री व पुरूष परिपक्व होते हैं। उनके इस आयु में सहवास से योग्य सन्तान ही पैदा होगी। राज्य केवल श्रेष्ठ स्त्री–पुरूष के सहवास से उत्पन्न

सन्तान का ही लालन–पालन करेगा, निकृष्ट स्त्री–पुरूषों के संभोग से उत्पन्न सन्तान का लालन – पालन राज्य नहीं करेगा। राज्य के नियमों के विरूद्ध जो सन्तान पैदा होगी, उसे या तो राज्य नहीं पालेगा या उसे किसी अज्ञात एवं अंधकारमय जगह में गाड़ दिया जाएगा या जन्म लेने से पूर्व ही गर्भभात द्वारा नष्ट कर दिया जाएगा।

5. **सम्बन्धों का ज्ञान (Knowledge of Relations):** प्लेटो कहता है कि संरक्षक वर्ग के अन्तर्गत आने वाले बच्चे सामुदायिक जीवन के भागीदार होंगे और इस सामुदायिक जीवन में उनके सम्बन्ध भी सामुदायिक होंगे। पुरूष उन सभी बच्चों को अपना पुत्र या पुत्री समझेगा जो उनके वर बनने के मास से लेकर 10 वें मास तक पैदा होते हैं और वे स्त्री के बच्चे उस पुरूष को पिता समझेगे। वह इन बच्चों की सन्तानों को पौत्र कहेगा और वे समुदाय के पुरूषों व स्त्रियों को दादा–दादी कहेंगे तथा वे सब बच्चे जो कि एक माता– पिताओं के समुदाय के प्रजनन काल में उत्पन्न हुए हैं एक दूसरे को भाई – बहिन मानेंगे।

पत्नियों के साम्यवाद के उद्देश्य (Aims of Communism of Wives)

प्लेटो के अनुसार पत्नियों के साम्यवाद को प्रतिपादित करने के पीछे निम्नलिखित उद्देश्य हैं:–

1. **नारियों की मुक्ति (Emancipation of Women)** : प्लेटो के समय में एथेन्स में राजनीतिक व सामाजिक कार्यों में स्त्रियाँ को भाग लेने का अधिकार प्राप्त नहीं था। उन्हें केवल घर की चारदिवारी में रहकर बच्चों का लालन–पालन करना होता था। राज्य की सेवा के लिए बच्चों को उत्पन्न करने में विवाह एक साधन और पत्नी एक उपकरण मानी जाती थी। परिवार की सीमित परिधि में बंधी होने के कारण उनका व्यक्तित्व कुंठित होता है। इससे समाज को भी हानि होती है, क्योंकि स्त्री समाज की आधी सुषुप्त शक्ति होती है। प्लेटो ने यह स्वीकार किया है कि स्त्रियों की संभाव्य शक्ति को ध्यान में रखते हुए उन्हें चारदीवारी से बाहर निकालना आवश्यक

है। प्लेटो ने कहा है – "परिवार एक ऐसा साधन है जहाँ मनुष्य की प्रतिभा का हनन होता है तथा पत्नी की मानसिक शक्ति चौके – चूल्हे में ही बर्बाद हो जाती है।" प्लेटो स्त्रियों के इस हीन जीवन का अन्त करके उन्हें सक्रिय राजनीति में देखना चाहता था।

2. **अभिभावक वर्ग की क्षमता में वृद्धि (Increase in Potentiality of Guardian Class)** : परिवार के साम्यवाद की योजना उन्हें परिवार के कुप्रभावों से बचाती हुई अपने परिवार की दैनिक आवश्यकताओं की चिन्ता से मुक्त रखती है। ऐसी स्थिति में अभिभावक वर्ग अपने कर्त्तव्य की पूर्ति करने में भी अधिक सक्षम होगा।
3. **जनसंख्या का सन्तुलन (Equilibrium in Population) :** परिवार के साम्यवाद की योजना का एक प्रमुख उद्देश्य आदर्श नगर राज्य की जनसंख्या को आदर्श सीमा में ही बनाए रखना है। प्लेटो के अनुसार – "विवाहों की संख्या को हम शासकों के स्वविवेक पर छोड़ देंगे। वे इस लक्ष्य को सदैव ध्यान में रखेंगे कि युद्धों, महामारियों आदि से जनसंख्या की होने वाली हानि के बाद भी नागरिकों की जनसंख्या यथासम्भव स्थिर रहे और वे ऐसे सभी सम्भव प्रयत्न करेंगे कि हमारा राज्य न तो जनसंख्या की दृष्टि से बड़ा हो पाए और न छोटा रह जाए ...। "एण्टोनी फलु के अनुसार – "प्लेटो सामाजिक दृष्टि से जनसंख्या की विस्फोटक स्थिति के बारे में जागरूक है।"
4. **नस्ल–सुधार (Improvement in Race) :** प्लेटो के इस साम्यवाद का उद्देश्य नस्ल–सुधार करना भी है। प्लेटो ने स्पष्ट कहा है कि केवल योग्य पुरूषों व स्त्रियों का ही संभोग कराया जाएगा। कुरूप बच्चों को मार दिया जाएगा या राज्य प्रतिभाशाली सन्तान को पैदा करके पूरा हो सकता था। अतः प्लेटो ने नस्ल–सुधार के लिए परिवार के साम्यवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया।
5. **शासकों के शुद्ध विवेक की रक्षा (To Protect Kings Pure Reason):** प्लेटो के आदर्श राज्य में निर्लिप्त, निष्काम, प्रज्ञावान, दार्शनिक शासकों का शासन होगा, किन्तु सब जानते हैं कि ऐसे शासक पारिवारिक मोह के कारण शुद्ध कर्म व ज्ञान के मार्ग से

भटक सकते हैं। प्लेटो ने माना है कि कंचन और कामिनी शासक वर्ग को अपने मार्ग से विचलित कर सकते हैं। इसलिए वह शासक वर्ग के शुद्ध विवेक की रक्षा करने के लिए परिवार को साम्यवाद की व्यवस्था करता है।

6. **राज्य में एकता (Unity in State) :** परिवार व्यक्तियों में तेरे – मेरे की भावना उत्पन्न करता है और इस भावना के कारण संरक्षक वर्ग में सत्ता प्राप्ति के लिए संघर्ष उत्पन्न होता है। प्लेटो ने राज्य के हित में पारस्परिक संघर्ष की इस प्रवृति का अन्त आवश्यक माना है। अतः प्लेटो अभिभावक वर्ग के समस्त स्त्री– पुरूषों को एक ही परिवार (राज्य परिवार) के रूप में बाँधकर राजनीतिक एकता की स्थापना करना चाहता है ताकि समाज के सभी व्यक्ति आपस में भ्रातृभाव से रहें।

पत्नियों के साम्यवाद की आलोचना (Criticisms of Communism of Wives)

प्लेटो के साम्यवाद की निम्न आधारों पर आलोचना की गई है :–

1. **परिवार–एक ऐतिहासिक अनुभव (Family – A Historical Experience)** : प्लेटो ने परिवार नामक संस्था का लोप करके भारी गलती की है। परिवार से ही राज्य व समाज का जन्म हुआ है। परिवार राज्य की छोटी ईकाई है। परिवार का अन्त करना मानव समाज के लिए अहितकार होगा क्योंकि :–

   (क) परिवार एक ऐतिहासिक संस्था है। इसके पीछे युगों का अनुभव है। इसे समाप्त करने का अर्थ है – पुनः असभ्यता के युग में लौटना।

   (ख) राज्य की तरह परिवार भी मानव–स्वभाव से उत्पन्न संस्था है। राज्य के नाम पर परिवार का अन्त करना सर्वथा अनुचित है।

   (ग) परिवार नागरिकता की प्रथम पाठशाला है। परिवार ही बच्चे को सद्गुणी बनाता है। परिवार में सहयोग, सहानुभूति, दया, परोपकार व अनुशासन जैसे गुणों को सीखा जाता है।

2. **पत्नी और परिवार के प्रति प्लेटो के विचार सही तथ्यों पर आधारित नहीं हैं (Plato's Ideas on Wives and Family are not Based on Correct Fact)** : आलोचकों का कहना है कि स्त्री का बच्चों के प्रति स्नेह और उनके पालन – पोषण की जो स्वाभाविक प्रवृति होती है, उसे न तो शिशु पालनगृहों को स्थानान्तरित किया जा सकता है और न ही उन गृहों मे वही प्यार ही प्राप्त हो सकता है। वैसे भी मातृत्व को समाप्त करना कभी भी एक आदर्श राज्य की नीति नहीं हो सकती बल्कि मातृत्व को राज्य में उचित स्थान को प्राप्त करने का प्रोत्साहन ही प्लेटो के न्याय का सही रूप हो सकता था। मातृत्व एक ऐसी चीज है जिसे माँ के सिवाय कोई दूसरा कृत्रिम तरीके से प्रदान नहीं कर सकता। स्त्री और पुरूष का सम्बन्ध भी पशुओं जैसा सम्बन्ध नहीं जो सन्तान की उत्पत्ति के लिए ही जुड़ता हो। उसमें एक पवित्रता है और यह सम्बन्ध जीवनभर के लिए होता है। अतः प्लेटो ने पारिवारिक सम्न्धों के पीछे की वास्तविकता को नही समझा। इसलिए अरस्तू ने इस एक व्यभिचारी योजना कहा है जिसे कोई भी सभ्य मानव – जाति स्वीकार नहीं करेगी। माता के स्नेह को प्लेटो राज्य की एकता के नाम पर कुर्बान नहीं कर देता है।
3. **जो वस्तु सभी की होती है, वह किसी की भी नहीं होती (The Thing That Belongs to None)** : अरस्तू का आरोप है कि प्लेटो के साम्यवाद में अभिभावक वर्ग की सारी पत्नियों और सभी बच्चे यदि सभी के हैं तो वास्तव में वे किसी के नहीं है और इसलिए कोई भी उनकी व्यवस्था व परवाह उतने प्रेम से नहीं कर सकता जितना परिवार में उन्हें मिलता है।
4. **अपराध अधिक होंगे (Crimes will Increase)** : आलोचकों का कहना है कि यदि परिवार व व्यक्तिगत सम्पत्ति न रहेंगे तो पिता–पुत्र, माँ – बेटे, भाई–भाई का रिश्ता समाप्त हो जाएगा और तब समाज में स्वाभाविक होने वाली समस्याओं, झगड़ों या अपराधों को पारिवारिक ढंग से नहीं सुलझाया जा सकेगा। ऐसी स्थिति में अपराध बढ़ेगे। समाज में नैतिक मूल्यों का पतन हो जाएगा और नागरिक अधिक अपराधों की ओर प्रवृत होंगे।

5. **अमनोवैज्ञानिक तथा अव्यवहारिक (Unpsychological and Impracticable) :** प्लेटो के परिवार के साम्यवाद की योजन अपनी प्रकृति से अमनोवैज्ञानिक और अव्यावहारिक है। यही कारण है कि यह योजना प्लेटो के समय में ही अमान्य हो गई थी और न ही इसे आज तक कहीं लागू किया गया। प्लेटो ने स्वयं भी अपनी ग्रन्थ 'लॉज' में अस्थायी विवाह की जगह स्थायी विवाह वह निजी परिवार की व्यवस्था को मान्यता दी है।
6. **अनावश्यक योजना (Unnecessary Planning) :** अरस्तू का विचार है कि प्लेटो ने न्याय की स्थापना के लिए साधन के रूप में परिवार का साम्यवाद गलत अपनाया क्योंकि प्लेटो जिन दोषों – जैसे लोभ, पक्षपात आदि को दूर करने की बात करता है। उसके लिए तो शिक्षा व्यवस्था का सहारा लेना उचित होता। ये रोग नैतिक रोग के समान हैं और इनका इलाज भौतिक साधन द्वारा नहीं हो सकता।
7. **परिवार रहित शासक की व्यावहारिक कठिनाइयाँ (Practical Dfficulties for the Ruler)** : पारिवारिक सम्बन्धों से अनभिज्ञ व अनजान शासकों को उत्पादक वर्ग के पारिवारिक विवादों को हल करने का अधिकार है, किन्तु वे इस दृष्टि से अयोग्य ही सिद्ध होंगे, क्योंकि उन्हें स्वयं पारिवारिक जीवन का कोई अनुभव नहीं होता है।
8. **अपवित्र यौन–सम्बन्ध की सम्भावना (Possibility of Immoral Sexual - Relation) :** प्लेटो को परिवार के साम्यवाद में ऐसी यौन सम्भावना भी है जिससे रक्त का सम्बन्ध भी हो। इस व्यवस्था में पिता–पुत्री को और भाई–बहिन को नहीं पहचानता। अतः इससे अपवित्र यौन–सम्बन्ध की अधिक सम्भावना है जो सामाजिक मापदण्डों के विरूद्व है। नैतिकता इसका कभी समर्थन नहीं कर सकती।
9. **दासों के लिए स्थान नहीं (No Place for Slaves) :** प्लेटो ने दास – वर्ग को इस व्यवस्था से पूर्णतः बाहर रखा है। दास– प्रथा उस समय की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रथा थी। दास एक उपयोगी सामाजिक वर्ग का रूप ले चुका था। उनकी अवहेलना करना सर्वथा गलत है।

10. **न्याय सिद्धान्त के विरूद्ध (Against the Theory of Justice):** प्लेटो के न्याय सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वाभाविक गुण के अनुसार आचरण करना चाहिए, किन्तु प्लेटो का परिवार का साम्यवाद के सिद्धान्त का उल्लंघन करता है। स्त्रियों के लिए स्वाभाविक गुण बच्चों का लालन – पालन है, किन्तु प्लेटो अभिभावक वर्ग की स्त्रियों को इस स्वाभाविक कर्म से वंचित करता है।
11. **व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में बाधक (Obstacle Under Development of Individual):** प्लेटो राज्य की एकता को साध्य मानकर व्यक्ति को उसका साधनमात्र मान लेता है। वह अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए परिवार की संस्था को राज्य के अधीन कर देता है। अतः यह व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में बाधक है।
12. **जीवशास्त्र के नियमों के विरूद्ध (Against the Principles of Biology):** प्लेटो की परिवार की साम्यवादी व्यस्था जीवशास्त्र के नियमों के विरूद्ध है। इसमें कोई गारण्टी नहीं है कि गुणवान माता–पिता की सन्तान भी गुणवान हो। यह पद्धति पशु –विज्ञान में तो लागू हो सकती है, जीवशास्त्र में नहीं।
13. **स्त्री–पुरूष में भेद होता है (Difference between Man & Woman):** प्लेटो स्त्री – पुरूष में लिंग – भेद को छोड़कर अन्य कोई अन्तर नहीं मानता। स्त्री कोमल हृदय होती है, जबकि पुरूष कठोर हृदयी होते हैं। इस तरह के कई अन्तर दोनों में होते हैं।

प्लेटो का पत्नियों का साम्यवाद न ही वांछनीय है और न ही सम्भव। प्लेटो परिवार जैसे महत्त्वपूर्ण संस्था का लोप करता है, जो असम्भव है। परिवार जैसी संस्था के समाप्त होते ही बच्चे सद्गुणी न होकर आपराधिक प्रवृति की ओर प्रवृत होंगे। यह सिद्धान्त तर्क की दृष्टि से तो ठीक हो सकता है लेकिन नैतिकता, संस्कृति तथा मनोविज्ञान की दृष्टि से यह कभी मान्य नहीं हो सकता। प्लेटो की सबसे बड़ी उपलब्धि तो यह है कि उसने महिलाओं और पुरूषों की समानता पर जोर दिया है। उसके सारे प्रयास नारी उत्थान के लिए ही हैं। इस कार्य में परिवार की भूमिका काफी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है, जिसकी प्लेटो ने

उपेक्षा की है। यह निर्विवाद सत्य है कि साम्यवादी व्यवस्था का प्रयास प्लेटो की नारी उत्थान के लिए एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण देन है।

1.9 प्लेटो प्रथम साम्यवादी के रूप में (Plato As the First Communist)

मैक्सी ने अपने ग्रन्थ 'पोलिटिकल फिलास्फी' (Political Philosophy) में लिखा है कि प्लेटो साम्यवादी विचारों का मुख्य प्रेरणा–स्त्रोत है और 'रिपब्लिक' (Republic) में सभी साम्यवादी और समाजवादी विचारों के बीज मिलते हैं। लेकिन प्रो० नैटलशिप, प्रो० कैटलिन, प्रो० बार्कर, मैक्सी के इस विचार से सहमत नहीं है। प्रो० कैटलिन के अनुसार प्लेटो का साम्यवाद न तो स्ववर्गीय है और न ही अन्तराष्ट्रीय है। यह आधुनिक साम्वाद से बिल्कुल मेल नहीं खाता। आधुनिक साम्यवाद जिसका प्रतिपादन कार्ल मार्क्स और लेनिन जैसे विचारकों ने किया है, एक वर्ग – विहिन और राज्य विहिन समाज के विश्वास करते है। मुख्य रूप में यह विचारधारा पूंजीपति वर्ग के सर्वहारा वर्ग के शोषण को समाप्त करने पर जोर देती है।

प्रो० जयाजी की राय में प्लेटो और रूस के साम्यवादियों में बहुत सी समानता है। दोनों ही व्यक्तिगत सम्पत्ति को सभी बुराइयों की जड़ मानते हैं, दोनों ही व्यक्तिगत सम्पत्ति और गरीबी को समाप्त करने के पक्षधर हैं। दोनों ही सामूहिक शिक्षा और बच्चों की सामूहिक देख–रेख में चाहते हैं। दोनों ही कला और साहित्य को राज्य का केवल साधन मानते हैं और दोनों सभी विज्ञान और विचारधाराओं को राज्य के हित में प्रयोग करना चाहते हैं। इस आधार पर प्लेटो को प्रथम साम्यवादी मानना सर्वथा सही है। लेकिन दूसरी ओर टेलर ने इसके विपरित विचार दिए हैं। टेलर के अनुसार – "रिपब्लिक में न तो समाजवाद पाया जाता है और न साम्यवाद।" प्लेटो को प्रथम साम्यवादी मानने के लिए साम्यवाद की आधुनिक विचारधारा को प्लेटो की विचारधारा से तुलना आवश्यक हो जाता है। दोनों अवधारणाओं में कुछ समानाताएँ व असमानताएँ हैं।

समानताएँ (Similarities)

प्लेटो के प्रथम साम्यवादी होने के पक्ष में कुछ विचार हैं, जो परस्पर दोनों विचारधाराओं की समानता पर आधारित है। दोनों में मुख्य समानताएँ हैं :–

1. **व्यक्तिगत सम्पत्ति सारी बुराइयों की जड़ है (Private Property is the Root of all Evils)** : प्लेटो और आधुनिक साम्यवाद दोनों ही इस बात पर सहमत हैं कि समाज में समस्त दोषों का कारण निजी सम्पत्ति का पाया जाना है। इसलिए इसके स्थान पर सार्वजनिक सम्पत्ति की व्यवस्था करना आवश्यक है। प्लेटो ने संरक्षक वर्ग को व्यक्तिगत सम्पत्ति से वंचित करके स्वयं को आधुनिक साम्यवाद के पास लाकर रख दिया है। व्यक्तिगत सम्पत्ति के अन्त से ही समाज की सभी बुराइयों का अन्त हो सकता है।
2. **अधिनायकतन्त्र में आस्था (Faith in Dictatorship)** : दोनों ही साम्यवाद सम्पूर्ण समाज के हित के लिए एक सर्वसत्ताधिकावादी राज्य या शासक में विश्वास करते हैं। प्लेटो विवेकयुक्त दार्शनिक शासक के अधिनायकतन्त्र की स्थापना करता है जो कानून एवं परम्परा से ऊपर है। वह उत्पादक व सैनिक वर्ग पर समाज हित में पूर्ण नियन्त्रण रखता है। प्लेटो का दार्शनिक शासक सर्वशक्तिमान है। आधुनिक साम्यवादी सर्वहारा वर्ग की तानाशाही में विश्वास करते हैं। अतः दोनों ही अधिनायकतन्त्र के पक्षधर हैं।
3. **स्त्री – पुरूष की समानता में विश्वास (Faith in Equality of Women and Men)** : दोनों ही साम्यवादी स्त्री–पुरूष की समान योग्यता व क्षमता में विश्वास करते हैं। प्लेटो के अनुसार स्त्री – पुरूष में लिंग भेद को छोड़कर कोई अन्तर नहीं है। स्त्रियाँ भी पुरूषों की तरह प्रशासकीय पदों को अच्छी तरह संभाल सकती हैं। आधुनिक साम्यवादी भी नारी शक्ति में पूर्ण विश्वास करते हैं।
4. **कला और साहित्य राज्य के साधन हैं (Art and Literature are Means of State)** : दोनों ही साम्यवाद कला और साहित्य को केवल एक साधन मानते हैं जो केवल

राज्य के हितों के अनुकूल होना चाहिए। इसलिए वे कला और साहित्य पर नियन्त्रण की बात करते हैं। कविता की भावना, संगीत के स्वर, वाद्ययन्त्रों की लय तक को वे राज्य द्वारा नियन्त्रित व निर्देशित करना चाहते हैं। इसी तरह आधुनिक साम्यवादी भी कला और साहित्य पर कठोर नियन्त्रण की बात करते है। यदि कोई कला व साहित्य राज्य हितों के विपरित है तो उसे किसी भी अवस्था में सम्मान नहीं दिया जा सकता। अतः दोनों ही साम्यवादी कला और साहित्य पर नियन्त्रण के पक्षधर हैं और वे इन्हें राज्य के कल्याण का एक साधन मानते हैं। इस साधन का पवित्र होना जरूरी है।

5. **कर्त्तव्य की भावना ही सामाजिक न्याय है (The sense of Duty is Social Justice):** दोनों ही साम्यवाद समाज के हित में ही व्यक्ति का हित मानते हैं। वे कर्त्तव्यों पर अधिक जोर देते हैं। वे अधिकारों के नाम पर प्रतिबन्धों की व्यवस्था के समर्थक हैं। प्लेटो ने अपनी योग्यतानुसार योग्य स्थान पर काम करने को सामाजिक न्याय कहा है। आधुनिक साम्यवाद भी इस बात पर जोर देता है कि खाने का अधिकार उसी मनुष्य को है जो समाज के लिए काम करता है। अतः दोनों ही साम्यवाद अधिकारों की तुलना में कर्त्तव्यों को महत्त्व देते हैं।
6. **अव्यावहारिक (Impractcable) :** दोनों ही साम्यवाद मानव–स्वभाव व मनोविज्ञान के अनुरूप नहीं है, इसलिए वे व्यावहारिक नहीं है। इस दोष के कारण न तो प्लेटो की साम्यवादी व्यवस्था कभी कायम हुई है और न ही होगी। इसी तरह आधुनिक साम्यवादी जिस शक्ति द्वारा साम्यवादी समाज की स्थापना की बात करते हैं, वह भी अव्यावहारिक है। आज विश्व के अनेक साम्यवादी व्यवस्था पतन की राह पर है।
7. **समष्टिवाद में विश्वास (Faith in Collectivism):** दोनों ही व्यवस्थाएँ समष्टिवादी हैं। दोनों साम्यवाद समुदाय की सर्वोच्चता में विश्वास करते हैं जिसमें व्यक्ति की वैयक्तिवता की उपेक्षा करते हैं। दोनों व्यवस्थाओं में व्यकित को एक साधनमात्र माना गया है।

8. **आर्थिक प्रतियोगिता की समाप्ति (End of Economic Competition):** दोनों ही साम्यवाद समाज के आर्थिक प्रतियोगिता को समाप्त करने के पक्षधर है। प्लेटो का विश्वास है, यदी राजनीतिक कलह का कारण है। आधुनिक साम्यवाद भी आर्थिक प्रतियोगिता का समाप्त कर समाज में एकता का भाव पैदा करना चाहता है।

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्लेटो ने ही साम्यवाद के बीज बो दिए थे। प्लेटो के साम्यवादी सिद्धान्तों के आधार पर ही आधुनिक साम्वादी दर्शन खड़ा किया गया है। इस दृष्टि से प्लेटो को प्रथम साम्यवादी कहना सर्वथा सही है।

असमानताएँ (Dissimilarities)

प्लेटो के साम्यवाद व आधुनिक साम्यवाद में बहुत सी असमानताएँ हैं जिनके आधार पर उसके प्रथम साम्यवादी होने के विचार का खण्डन किया गया है। वे आधार निम्नलिखित हैं:–

1. **अर्ध साम्यवाद और पूर्ण साम्यवाद (Half Versus Full Communism)** : प्लेटो का साम्यवाद सारे समाज पर लागू न होकर केवल संरक्षक वर्ग तक ही सीमित है। प्लेटो ने उत्पादक वर्ग को अपनी इस व्यवस्था से पूर्णतय बाहर रखकर अपने अर्ध – साम्यवादी होने का ही परिचय दिया है। आधुनिक साम्यवाद परे समाज के लोगों पर समान रूप से लागू होता है लेकिन इसमें परिवार का साम्यवाद शामिल नहीं है। आधुनिक साम्यवाद समाज के हर वर्ग को अपने से समेटकर चलता है। अतः दोनों में अन्तर है।
2. **संन्यासवाद और भौतिकवाद (Asceticism Versus Meterialism)** : प्लेटो का साम्यवाद वास्तव में तपस्यात्मक है। प्लेटो शासकों को भौतिक सुख साधनों से विरक्त बनाता है। बार्कर के शब्दों में – "यह समर्पण का मार्ग है और उस समर्पण की माँग सर्वोत्तम और केवल सर्वोत्तम व्यक्ति से ही की गई है।" प्लेटो ने संरक्षक वर्ग को समस्त सम्पत्ति से वंचित कर दिया है क्योंकि वह निजी सम्पति को सार्वजनिक कल्याण के कर्त्तव्य – पालन में एक बाधा मानता है। आधुनिक साम्यवाद

की आधारशिला भौतिकता है। आधुनिक साम्यवाद भौतिक सुख–साधनों में वृद्वि को ही अपना लक्ष्य मानता है। आधुनिक साम्यवाद सम्पत्ति की वांछनीयता को स्वीकार करते हुए उसके वितरण पर बल देता है। अतः प्लेटो के साम्यवाद में न्याय का तात्पर्य कार्यों का यथोचित वितरण है तो आधुनिक साम्यवाद के सन्दर्भ में राज्य के उत्पादन का न्यायोचित वितरण।

3. **राजनीतिक उद्देश्य और आर्थिक उद्देश्य (Political Versus Economic Aim) :** प्लेटो के साम्यवाद का लक्ष्य राजनीतिक है क्योंकि वह विशेष प्रकार की आर्थिक योजना के आधार पर राज्य में कुशासन तथा भ्रष्टाचार को समाप्त कर अच्छे शासन की स्थापना करना चाहता है। प्लेटो का उद्देश्य राजनीतिकत स्थिरता पैदा करता है। आधुनिक साम्यवाद का प्रमुख लक्ष्य आर्थिक है। आधुनिक साम्यवादी विशेष प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था के आधार पर आर्थिक साधनों को न्यायपूर्ण वितरण करना चाहते हैं। अतः एक का लक्ष्य राजनीतिक है तो दूसरे का आर्थिक।
4. **सवर्ग समाज और वर्गहीन समाज (Class Based Versus Classless Society) :** प्लेटो के साम्यवाद में वर्गों का अस्तित्व है जिनके कार्यों की विशिष्टता द्वारा राज्य की एकता में वृद्धि की जाती है। आधुनिक साम्यवाद में वर्गविहीन समाज की स्थापना की बात की जाती है। इसमें वर्गो का कोई महत्त्व नहीं है।
5. **पारिवारिक साम्यवाद के सम्बन्ध में भेद (Difference Regarding Communism of Families) :** प्लेटो की साम्यवादी व्यवस्था में सम्पत्ति के साम्यवाद के साथ – साथ पत्नियों के साम्यवाद की भी व्यवस्था की गई है। किन्तु आधुनिक साम्यवाद में इस प्रकार की किसी व्यवस्था का प्रतिपादन नहीं किया गया है।
6. **नगर राज्यों और अन्तराष्ट्रीय का भेद (Difference Between City – States & International States):** प्लेटो का साम्यवाद यूनान के छोटे – छोटे नगर – राज्यों को ध्यान में रखकर प्रतिपादित किया गया है। प्लेटो ने कभी विश्व व्यवस्था की बात नहीं की। अतः उनका साम्यवाद क्षेत्रवाद पर ही आधारित है। कार्लमार्क्स सम्पूर्ण विश्व के आर्थिक व राजनीतिक घटनाचक्र को ध्यान में रखते हुए अपने साम्यवादी

सिद्धान्त की रचना की है। वे समस्त विश्व की एकता में विश्वास रखते है। अतः आधुनिक साम्यवाद विश्वस्तरीय है।

7. **साम्यवाद में दार्शनिक शासकों की भूमिका के अन्तर (Difference Regarding the Role of the Working Class) :** प्लेटो के साम्यवाद में शासन का संचालन दार्शनिक शासक के नेतृत्व में होगा और सामान्य नागरिक उसका अनुसरण करेंगे, जबकि आधुनिक साम्यवाद में दार्शनिक राजा का कोई स्थान नहीं। मजदूरों का साम्यवादी दल तानाशाही से सम्पूर्ण शासन – व्यवस्था पर नियन्त्रण रखता है।
8. **साधन सम्बन्धी अन्तर (Difference Regarding Means) :** प्लेटो ने अपने साम्यवाद की स्थापना के लिए किसी साधन का वर्णन नहीं किया है। आधुनिक साम्यवादी क्रान्ति या दुसरे हिंसात्मक साधनों के प्रयोग द्वारा साम्यवाद की स्थापना करने की बात कहते हैं
9. **वर्गों की संख्या में अन्तर (Difference in Number of Classes) :** प्लेटो ने समाज में तीन वर्ग – दार्शनिक, सैनिक तथा उत्पादक का वर्णन किया है, जबकि मार्क्स ने पूंजिपति व सर्वहारा वर्ग की ही व्याख्या की है। अतः प्लेटो के अनुसार समाज में तीन तथा आधुनिक साम्यवादी दो वर्गों की बात करते हैं।
10. **श्रमिक वर्ग की महत्ता के सम्बन्ध में अन्तर (Difference Regarding the Importance of the Working Class) :** प्लेटो के साम्यवाद में श्रमिक वर्ग को कोई महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं है, जबकि आधुनिक साम्यवाद में श्रमिक वर्ग को ही क्रान्ति का आधार माना गया है। आधुनिक साम्यवादी दर्शन तो श्रमिक वर्ग के इर्द –गिर्द ही घूमता है।
11. **अव्यावहारिक (Impractical):** प्लेटो का साम्यवाद पूर्णतः अव्यावहारिक है और इस व्यवहार में कभी भी लागू नहीं किया जा सकता। आधुनिक साम्यवाद के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि आधुनिक साम्यवाद अनेक देशों में व्यावहारिक रूप में लागू हुआ है। यद्यपि यह रूस में तो असफल रहा लेकिन चीन में इसका अब भी

अस्तित्व है। अतः प्लेटो के साम्यवाद की तुलना में आधुनिक साम्यवाद अधिक व्यावहारिक है।

12. **परिस्थितियों सम्बन्धी अन्तर (Difference Regarding Circumstances) :** प्लेटो का साम्यवाद 5 वीं शताब्दी को एथेन्स की परिस्थितियों की उपज है, जबकि आधुनिक साम्यवाद 19 वीं सदी में उत्पन्न औद्योगिक क्रान्ति का परिणाम है।

इस प्रकार अनेक समानताओं के आधार पर टेलर का कथन उचित है – "रिपब्लिक में समाजवाद तथा साम्यवाद के बारे में बहत कछ कहे जाने के बावजूद वास्तव में इस ग्रन्थ में न तो समाजवाद है और नही साम्यवाद।" इसलिए प्लेटो को प्रथम साम्यवादी मानना सर्वथा गलत है। प्लेटो में ऐसा कोई विशेष तत्त्व नहीं है, जो आधुनिक साम्यवाद से मेल खाता हो।

1.10 दार्शनिक शासक की अवधारणा (Conception of Philosopher King)

प्लेटो ने तत्कालीन एथेन्स की राजनीतिक दुर्दशा देखकर एक शक्तिशाली शासन की आवश्यकता महसूस की ताकि स्वार्थी तत्त्वों से आसानी से निपटा जा सके। उसने महसूस किया कि राजा इतना शक्तिशाली होना चाहिए कि वह आसानी से एथेन्स को राजनीतिक भ्रष्टाचार, व्यक्तिवाद व अस्थिरता के गर्त से निकाल सके और राज्य में शान्ति व्यवस्था कायम कर सके। इसलिए उसने अपने आदर्श राज्य की संकल्पना के न्याय को लागू करने के लिए दार्शनिक शासक का सिद्धान्त पेश किया है जो उसकी एक प्रमुख एवं मौलिक देन है। प्लेटो के अनुसार राज्य तभी आदर्श रूप प्राप्त कर सकता है जब उसका शासन कुशल, योग्य, ज्ञानी एवं स्वार्थहीन व्यक्ति के हाथ में हो। फोस्तर ने इसे प्लेटो का सबसे अधिक मौलिक विचार बताया है। राजनीतिक दर्शन के इतिहास में प्लेटो का यह सिद्धान्त जितना अधिक प्रेरणादायक और प्रगतिशील रहा है, अन्य किसी चिन्तक का कोई सिद्वान्त नहीं रहा।

प्लेटो का दार्शनिक राजा का सिद्धान्त दो मान्यताओं पर आधारित है। पहली मान्यता यह है कि "सद्गुण ही ज्ञान है" (Virtue is Knowledge)। इसका सरल अर्थ यह है कि केवल तथ्यों की जानकारी को ही ज्ञान नहीं कहा जा सकता, अपितु तथ्यों के पीछे निहित 'सत्' (Good) को जानना और उसमें पूर्ण आस्था रखना ही ज्ञान है। सद्गुण यह है जो व्यक्ति व समाज के लिए 'सत्यम् शिवम् व सुन्दरम्' मूल्यों की स्थापना करता है और ऐसी सद्गुणमयी दृष्टि केवल प्रत्ययवादी ज्ञान (दर्शन) से ही प्राप्त हो सकती है। ऐसे ज्ञान प्राप्त व्यक्ति को प्लेटो दार्शनिक कहता है। सत्य ही वास्तविकता है और मनुष्य की इच्छा गौण है। सत्य का ज्ञान विवेक से ही हो सकता है। अतः विवेकी व्यक्ति ही शासन करने का अधिकारी है। ऐसा व्यक्ति जो सद्गुणी होगा, वह स्वयं भी न्यायी होगा और राज्य में भी न्याय की स्थापना करेगा। इससे नगर – राज्यों के सारे दोष दूर हो जाएंगे और आदर्श राज्य व्यवस्था की स्थापना होगी। अतः प्लेटो के राजदर्शन का तार्किक परिणाम 'दार्शनिक शासक' का शासन है। इसलिए बार्कर कहता है – "दार्शनिक राजा प्लेटो की राज्य – रचना की पद्धति का न्याय – संगत परिणाम है।"

प्लेटो की दूसरी मान्यता यह है कि आत्मा त्रिगुणी है। उसका एक अंश तृष्णा (Appetite) है जो अविवेकी इच्छा तथा वासनात्मक प्रवृति का स्त्रोत है। दूसरा अंश शौर्य (Spirit) है जो मानव पुरूषार्थ, अभिलाषा, प्रतिस्पर्धा आदि गुणों का स्त्रोत है। तीसरा अंश विवेक है जो ज्ञान प्राप्त करने तथा प्रेम करने का मार्ग सिखाता है। ये तीनों तत्त्व राज्य – समाज में पाए जाते हैं, क्योंकि व्यक्ति और समाज की चेतना एक ही है। इन तत्त्वों के आधार पर समाज में तीन वर्ग पाए जाते हैं – उत्पादक वर्ग (तृष्णा प्रधान)ए सैनिक वर्ग (शौर्य प्रधान) और शासक वर्ग (विवेक प्रधान)। इन तीनों गुणों का सामंजस्य ही प्लेटो का आदर्श राज्य है। इस आदर्श राज्य के प्रशासन में सबसे अधिक महत्त्व विवेक तत्त्व का है। इस प्रकार विवेक के प्रतीक दार्शनिक व्यक्ति को ही आदर्श राज्य का शासन होना चाहिए।

दार्शनिक राजा कौन है ? (Who is a Philosopher King ?)

प्लेटो के अनुसार एक दार्शनिक राजा में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है : –

1. **विवेक का प्रेमी (Lover of Wisdom)** : दार्शनिक राजा विवेक का संगी होगा। वह समस्त जगत् के ज्ञान का भण्डार होगा और जानने की इच्छा कभी समाप्त नहीं होगी। वह सदैव ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर रहेगा और अपने विवेक से जनता को लाभान्वित करेगा। मैक्सी के अनुसार – "एक सच्चा दार्शनिक ज्ञान से प्रेम रखता है न कि किसी मत से। वह क्रोध, घृणा, संकीर्णता, द्वेष, स्वार्थपरता आदि से दूर रहता है।"

2. **सत्य का प्रेमी (Lover of Truth) :** दार्शनिक राजा सत्य के मार्ग पर चलेगा। वह कभी सत्य के मार्ग से विचलित नहीं होगा। उसके मस्तिष्क में अविश्वास, निन्दा, झूठ, फरेब और धोखा आदि विचार नहीं आएगें।
3. **आत्म नियन्त्रण (Self Control) :** दार्शनिक शासक आत्म – नियन्त्रण के गुण से युक्त होना चाहिए। उसे सांसारिक मोह – माया के जाल से स्वयं को दूर रखना चाहिए। उसे अपने इच्छाओं पर नियन्त्रण रखना चाहिए। उसमें आदेश व निर्देश देने की शक्ति होती है, जो अपने जीवन एवं शासन का संचालन स्वयं करता है।
4. **निस्वार्थता (Selflessness) :** प्लेटो का दार्शनिक राजा पूर्णतः निःस्वार्थी होता है। उसका न अपना परिवार और न ही अपनी सम्पत्ति होती है। अतः वह निःस्वार्थ भावना से सर्वकल्याण के कार्य से लगा रहता है।
5. **सज्जनता और सामाजिकता (Gentle and Social) :** प्लेटो का दार्शनिक राजा सज्जन, भद्र और सामाजिक होगा। संक्षेप में प्लेटो का दार्शनिक शासक श्रेष्ठ आत्मा के सभी गुणों से युक्त होता है। वह सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् का मूर्तिमान स्वरूप होता है। वह मृत्यु से नही डरता, असत्य का अलाप नहीं करता। उसमें सुन्दर आत्मा के सभी गुण होते हैं। उसे न्याय, सौन्दर्य और संयम के विचारों का तथा

परम सत् का ज्ञान हो चुका होता है। अतः प्लेटो का दार्शनिक शासक प्रकृति गुणों से युक्त होता है और उसका उत्तम ढंग से प्रयोग करता है।

6. **शांत स्वभाव (Calm in Nature) :** प्लेटो के अनुसार, "दार्शनिक शासक का स्वभाव शान्त होना चाहिए। वह अपने राज्य में शान्ति बनाए रखेगा। उसका अपना व्यक्तित्व होगा। उसकी जनता अमन – चैन से साँस लेगी।" इस प्रकार दार्शनिक शासक शील स्वभाव से युक्त होगा।
7. **न्याय का प्रेमी (Lover of Justice) :** आदर्श राजय में दार्शनिक राजा 'न्याय' का प्रेमी होगा तथा वह यह भी ध्यान रखेगा कि राज्य के दो अन्य वर्ग – सैनिक और उत्पादक वर्ग अपने कर्त्तव्य का पालन उचित ढंग से करें ताकि न्याय की स्थापना हो सके।

अतः उपर्युक्त गुणों से युक्त दार्शनिक शासक ही शासन करने का अधिकारी होगा।

प्लेटो द्वारा दार्शनिक शब्द को नूतन अर्थ प्रदान करना

(The Term 'Philosopher' gets a new meaning)

प्लेटो ने 'दार्शनिक' शब्द को सर्वथा अलग अर्थ में प्रयुक्त किया है जिसे हम भी साधारण बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त करते है। नैडलशिप के अनुसार – "दार्शनिक से प्लेटो का अर्थ वह नहीं है, जिसे हम लोग समझते है। शब्द को पूर्ण अर्थ में उसका अभिप्राय प्रतिभाशाली व्यक्तियों से है। हम लोग इस शब्द का अर्थ किसी ऐ से व्यक्ति से लेते है जो एक विशेष प्रकार के गुण से सम्पन्न हो। परन्तु प्लेटो ने इस सम्बन्ध में उन सारे गुणों का उल्लेख किया है जो एक महान् व्यक्ति को निर्मित करते हैं।" फॉस्टर के अनुसार – "दार्शनिक से प्लेटो का तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जो वैज्ञानिक चिन्तन की शक्ति से सम्पन्न और प्लेटो के अनुसार सच्चा ज्ञान ही विज्ञान है।" प्लेटो के अनुसार दर्शन का कार्य यह है कि वह न केवल गणित के क्षेत्र में बल्कि प्रत्येक क्षेत्र में राय की जगह सच्चे ज्ञान की प्रतिष्ठा करे।

प्लेटो का दार्शनिक शासक ज्ञान का उपासक ही नहीं है अपितु ज्ञान और विद्वता का अपूर्व भण्डार है। वह सत्य का अन्वेषक, ज्ञान का प्रेमी, शान्ति का पुजारी, न्यायी, साहसी और संयमी है। उसकी बुद्धि तीव्र है, स्मरण शक्ति तीक्ष्ण है और चरित्र उज्ज्वल है। अतः दार्शनिक के द्वारा शासन से अभिप्राय 'विद्वता का शासन' अथवा 'विवेक का शासन' से है।

दार्शनिक शासक की शिक्षा (Education ofPhilosopher King)

प्लेटो अपनी शिक्षा पद्धति के माध्यम से दार्शनिक शासक ाक निर्माण करता है। 20 वर्ष तक की प्राथमिक शिक्षा की अवधि में व्यायाम और संगीत के द्वारा उसके शरीर और मन का विकास किया जाता है। 20 से 30 वर्ष तक विभिन्न विज्ञानों के द्वारा उसके विवेक को विकसित और आत्मचक्षु को सत्य की ओर उन्मुख किया जाता है। 30 से 35 वर्ष तक की अवस्था के बीच द्वन्द्वात्मकता की शिक्षा के द्वारा उसे सर्वोच्च सत्य का ज्ञान प्राप्त होता है। परन्तु शिक्षा यहीं पूर्ण नहीं होती। आगामी 15 वर्ष तक अपने सैद्वान्तिक ज्ञान को व्यावहारिक रूप देने के लिए उसे संसार की पाठशाला में विचरण करना पड़ता है। इस अवधि में उसे सोने की तरह अग्नि में तपाया जाता है ताकि वह भविष्य में शासक बनने पर भ्रष्ट और पथ से विचलित न हो। यहाँ तक कि कंचन और कामिनी का मोह भी उसे पथभ्रष्ट न करें। इस प्रकार उसे धन – लोलुप, स्वार्थी व आसक्त बनने से रोकने के लिए उसे सब प्रकार के प्रलोभनों से वंचित कर दिया जाता है।

दार्शनिक शासक के कर्त्तव्य और बन्धन (Duties and Limitations of Philosopher King)

कानूनों के बन्धन को अस्वीकार करते हुए भी प्लेटो अपने दार्शनिक शासक को कुछ अनुदेश (हिदायत) देना जरूरी मानता है। ये अनुदेश ही दार्शनिक शासक के कर्त्तव्य है। ये कर्त्तव्य निम्नलिखित है :–

1. राज्य में अत्याधिक धन और अत्यधिक गरीबी अर्थात् अत्याधिक सम्पन्नता और अत्यधिक विपन्नता को आने से रोक क्योंकि दोनों की अधिकता राज्य के लिए हानिकारक है। अत्यधिक धन विलासिता, आलस्य और गुटबन्दी को जन्म देता है और अत्यधिक निर्धनता नीचता और बुरे कार्यों का जन्म देती है।

2. जहाँ तक समभव हो राज्य को आदर्श राज्य के निकट बनाए रखे और उसके आधारभूत सिद्धान्तों में कोई परिवर्तन न करे।
3. राज्य का अत्यधिक विस्तार न हो अर्थात् एकता और आत्म – निर्भरता के अनुकूल राज्य का क्षेत्रफल हो।
4. न्याय सिद्धान्त का पालन कराए ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपने स्थान के कार्य को करें और दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप न करें।
5. राज्य की शिक्षा प्रणाली में कोई परिवर्तन न करे। प्लेटो कहता है कि सभी बुराइयों की जड़ त्रुटिपूर्ण शिक्षा है और उसका उपचार भी शिक्षा है। दार्शनिकों को सकरात्मक कर्त्तव्य है कि वे "आत्मओं का पोषण करें और उन्हें स्वरूप दें।"

उपर्युक्त अनुदेशों से स्पष्ट होता है कि पलेटो के दार्शनिक शासक भी मूलभूत सामाजिक व्यवस्था के सेवक है।

सीमाएँ (Limitations)

दार्शनिक राजा सर्वशक्तिमान् होते हुए भी प्रतिबन्धों से युक्त है। यद्यपि वह न जनता के द्वारा चुना जाता है और न जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। वह लोकमत, रीति– रिवाज और कानून के बन्धन से पूर्णतः मुक्त होता है। प्लेटों ने अपने आदर्श राज्य में लोकमत और कानून के महत्त्व को बिल्कुल अस्वीकार कर दिया है। उसकी मान्यता है कि यदि दार्शनिक अपने ज्ञान के कारण शासक बनता है तो उसे लोकमत के प्रति उत्तरदायी बनाना पूर्णतः अप्रासंगिक है। इसी प्रकार दार्शनिक शासक को कानून की जंजीरों में बाँधना, उसके हाथों को कानून के नियमों से बाँधना, उसी प्रकार मूर्खतापूर्ण है जिस प्रकार किसी योग्य चिकित्सक को इस बात के लिए विवश करना कि वह चिकित्सा के ग्रन्थ देखकर ही दवा लिखे। वस्तुतः प्लेटो दार्शनिक के स्वतन्त्र विवेक के महत्त्व में विश्वास रखता है।

बार्कर के अनुसार – "हालांकि दार्शनिक राजा का शासन ऊपर से देखने पर निरंकुश लग सकता है, वह लिखित विधि से स्वतन्त्र हो सकता है; पर जिन्हें हम संविधान के मूल अनुच्छेद कह सकते है, उनके अंकुश से वह स्वतन्त्र नहीं होता। दार्शनिक का काम यह

नहीं कि मनमाने ढंग से राज्य को प्रभावित करे या उसे बदल डाले, वह तो मूल सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा रखते हुए एक अचल संस्था के रूप में उसकी रक्षा करने के लिए, उसकी स्थिरता कायम रखने के लिए होता है। प्लेटो ने दार्शनिक राजा के शासन पर निम्नलिखित सीमाएँ या प्रतिबन्ध लगाए है।

1. **शिक्षा पद्धति बनाए रखना** : उसे शिक्षा पद्धति में कोई परिवर्तन नहीं करना चाहिए क्योंकि शिक्षा पद्धति में परिवर्तन होने से राज्य के मूलभूत नियम भी बदल जाते हैं।
2. **न्याय प्रशासन कायम रखना (To Ensure JudicialAdministration)**: दार्शनिक शासक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह न्याय के सिद्धान्त को बनाए रखने के लिए अपने राजय में प्रत्येक व्यक्ति से अपने निर्धारित कार्य का पालन कराता रहे।
3. **राज्य की सीमा में वृद्धि या कमी को रोकना (To Prevent the Increaseor Decrease of Boundary of State) :** राज्य की एकता को कायम रखने के लिए उसे राज्य की सीमा को न तो अधिक बढ़ाना चाहिए और न ही अधिक कम करना चाहिए।
4. **राज्य में धन और निर्धनता का प्रवेश रोकना :** प्लेटो के अनुसार दार्शनिक शासक को यह देखते रहना पड़ेगा कि राज्य में निर्धनता अथवा धन का प्रवेश न हो क्योंकि धन से विलासिता, आलस्य और वैमनस्य पैदा होते हैं तथा दरिद्रता से कमीनापन और कुकृत्य।

   इस प्रकार प्लेटो का दार्शनिक शासक निरंकुश नहीं, मर्यादित होता है, राज्य का स्वामी नहीं, सेवक होता है। उसे कुछ मर्यादाओं का पालन करना पड़ता है। ये महिलाएँ ही उसके ऊपर सीमाएँ है जिनसे वह मुक्त नहीं हो सकता।

दर्शन के शासन की विशेषताएँ (Features of Rule of Philosophy)

प्लेटो के दर्शन को शासन की बहुत सी विशेषताएँ हैं, उनमें से प्रमुख निम्नलिखित है :–

1. यह प्रजातन्त्र का विरोधी है। प्लेटो ने तत्कालीन एथेन्स में प्रजातन्त्र के शासन को मूर्खों का शासन कहकर आलोचना की है। प्लेटो ने प्रजातन्त्र के दोषों को दूर करने

के लिए इस मौलिक विचार का प्रतिपादन किया है। प्लेटो का दर्शन की शासन ज्ञान का प्रतीक है।

2. प्लेटो के दर्शन के शासन के विचार का जन्म शिक्षा व्यवस्था की देन है। प्लेटो की शिक्षा पद्धति में दार्शनिक शासक को इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाता है ताकि वह हर तरह से योग्य सिद्ध हो। जीवन के हर क्षेत्र में सफल होने पर ही उसे दार्शनिक की उपाधि मिलती है अतः दर्शन का शासन उच्च दर्जे के प्रशिक्षण की उपज है।
3. दर्शन का शासन सद्‌गुणों पर आधारित होता है। दार्शनिक शासक सत्य का अन्वेषक, ज्ञान का प्रेमी, शान्ति का पुजारी, न्यायी, साहसी और संयमी होता है। उसकी बुद्धि तीव्र होती है, स्मरणशक्ति तीक्ष्ण और चरित्र उज्ज्वल होता है। उसे शिव का ज्ञान होता है। वह विवेकशील होता है। मैक्सी के अनुसार – "एक सच्चा दार्शनिक ज्ञान से प्रेम करता है, न कि किसी मत से। वह क्रोध, घृणा, संकीर्णता, द्वेष, स्वार्थपरता आदि से दूर रहता है।"
4. दर्शन का शासन निःस्वार्थ भावना पर आधारित होता है। उसे कंचन और कामिनी का मोह नहीं होता। वह विवेकी होने के कारण राज्य से प्रेम करता है। उसकी राज्य के प्रति असीम श्रद्धा होती है। वह अपना हर कार्य राज्य हित के लिए ही करता है। उसका कोई व्यक्तिगत हित नहीं होता। वह पूर्णतः निस्वार्थ भावना पर टिका हुआ होता है।
5. यह अभिजन वर्ग का शासन है। सभी व्यक्ति दार्शनिक नहीं हो सकते। यह प्रतिभा तो कुछ ही व्यक्तियों में होती है। सभी व्यक्ति ज्ञानी नहीं हो सकते। यह प्रतिभा तो एक या कुछ ही व्यक्तियों में होती है, सभी में नहीं।
6. दार्शनिक शासक की शक्ति पूर्णतः अमर्यादित होती है। वह न तो जनता के द्वारा चुना जाता है न जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। वह जनमत, परम्परा और कानून के बन्धन से पूर्णतः मुक्त होता है। वह उत्तम ज्ञान के आधार पर ही शासक बनता है। अतः उस पर कोई भी प्रतिबन्ध उचित नहीं हो सकता।

दार्शनिक शासन ऊँचे दर्जे के प्राविधिक प्रशिक्षण की उपज होने के कारण पूर्ण विवेक पर आधारित होता है। उस पर प्रतिबन्ध लगाना गलत है। लेकिन फिर भी प्लेटो के दर्शन के शासन को कुछ आलोचनाओं का शिकार होना पड़ा।

आलोचना

प्लेटो के दर्शन के शासन की निम्न आधारों पर आलोचना हुई है :–

1. यह निरंकुश शासकों को जन्म देता है जो आधुनिक युग में घृणा का पात्र है।
2. आधुनिक शासन प्रणालियों में कर्त्तव्यों के साथ – साथ अधिकारेां पर भी महत्त्व दिया जाता है लेकिन दर्शन का शासन कर्त्तव्यों तक ही सीमित रह जाता है।
3. कानून और जनमत की अवहेलना गलत है। क्योंकि कानून जनमत के द्वारा शताब्दियों से संग्रहीत विवेक का परिणाम है। प्लेटो ने स्वयं 'लाज' में इसके महत्त्व को स्वीकार किया है।
4. यह प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रजातन्त्र के किसी भी रूप का विरोधी है। सत्य तो यह है कि आज का युग प्रजातन्त्र का युग है। जनमत की अवहेलना करके कोई भी शासन स्थायित्व को प्राप्त नहीं कर सकता।
5. दर्शन का शासन एकमात्र कल्पना है। आज तक इतिहास में इस बात के प्रमाण नहीं है जहाँ ऐसा कानून लागू हुआ है।
6. दर्शन का शासन प्लेटो की महत्त्वकांक्षा को ही परिलक्षित करता है। वह स्वयं एथेन्स का शासक बनना चाहता था।

इस प्रकार प्लेटो के आदर्श राज्य में दर्शन से शासन की अनेक आलोचनाएँ की गई है। क्रासमैन के अनुसार – "दार्शनिक शासक सम्बन्धी प्लेटो का प्रस्ताव अव्यावहारिक है क्योंकि किसी भी नगर या राष्ट्र में बुद्धिमान लोगों की संख्या इतनी अधिक नहीं होती कि वे स्थायी रूप से शासक वर्ग का निर्माण कर सकें और यदि वे हों भी तो अपार जनसमूह में से

उनका चयन कठिन हो जाएगा।" आज तक इतिहास में कोई भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता जहाँ दर्शन का शासन लागू हुआ हो।

लेकिन अनेक आलोचनाओं के बावजूद भी यह कहना पड़ेगा कि प्लेटो ने शासकों के लिए जिस प्रशिक्षण की आवश्यकता महसूस की, वह आज भी जरूरी है। आधुनिक शासक वर्ग को उचित प्रशिक्षण द्वारा राज्य हितों का साधक बनाया जा सकता है। आधुनिक शासक वर्ग को व्यावसायिक ज्ञान के स्तर पर शून्य होने के कारण अनेक शासन सम्बन्धी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती है। सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए शासक वर्ग का सद्‌गुणी होना आवश्यक है। यह कहा गया है कि 'यथा राजा तथा प्रजा'। आज का युग है। आज अशान्ति के दौर में दार्शनिक शासक जैसा विवेकी शासक ही प्रजाजनों को अपनी ज्ञान – ज्योति से सही रास्ता दिखा सकता है। अतः दर्शन का शासन प्लेटो की बहुत ही महत्त्वपूर्ण देन है। इसका राजदर्शन के इतिहास में बहुत महत्त्व है।

स्टेट्समैन में राजनीतिक विचार (Political Ideas in Statesman)

प्लेटो की पुस्तक स्टेट्समैन प्रधानतः राजनीति सम्बन्धी एक प्रबन्ध ग्रन्थ है। इस पुस्तक की रचना 'Republic' के प्रकाशन से कई वर्षों बाद हुई। इसका रचनाकाल 367–361 ई०पू० के मध्य रखना अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि इस दौरान प्लेटो के डायोनिसियस द्वितीय के साथ सम्बन्ध अच्छे थे। इस दौरान वह डायोनिसियस द्वितीय के साथ विधियों की प्रस्तावना करने में व्यस्त था। इस पुस्तक का दूसरा नाम 'पॉलिटिक्स' (Politics) है। इस पुस्तक में प्लेटो ने कानून पर नए दृष्टिकोण से विचार किया है। इसमें प्लेटो आदर्श राज्य की कल्पना को संजोए हुए है लेकिन वह 'रिपब्लिक' की तुलना में इस समय अधिक व्यावहारिक आदर्शवादी दिखता है। शैली और स्वर दोनों के दृष्टिकोण से ऐसा प्रतीत होता है कि यह पुस्तक प्लेटो के उन विचारों का संक्रमण है, जिनकी अभिव्यक्ति लॉज में हुई है। इस पुस्तक में प्लेटो इस बात पर विचार करने का प्रयास करता है कि यदि मनुष्य को शासन करना है तो उसे कैसे होना चाहिए और क्या करना चाहिए। इसमें वह राजनीति

और राजनीति विज्ञान की भूमिका पर भी विचार करता है। इस प्रकार यह पुस्तक अधिक तर्कसंगत और यथातथ्य है। इसमें वर्णित प्रमुख राजनीतिक विचार निम्नलिखित है :

1. **सरकारों का वर्गीकरण :** प्लेटो का मानना है कि आदर्श दार्शनिक शासक का कर्त्तव्य राज्य के प्रशासन का संचालन करना ही नहीं है बल्कि ऐसी व्यवस्था कायम करना है कि लोग शिवत्व और न्याय के आदर्श मानदण्डों को अपना सकें। यदि शासक दार्शनिक है तो उसे कानून की आवश्यकता नहीं परन्तु आदर्श शासक एक दुर्लभ व्यक्ति होता है, अतः कानून आवश्यक है क्योंकि कानून व्यावहारिक ज्ञान तथा भूतकाल के अनुभव का संकलन होता है। इस प्रकार प्लेटो स्टेट्मैन में कानून और उसकी आवश्यकता को आधार मानकर सरकारों का नया वर्गीकरण प्रस्तुत करता है वह सरकारों के छः प्रकार बताता है :–

कानून द्वारा संचलित सरकार		कानून द्वारा संचालित न होने वाली सरकार		
1. एक व्यक्ति का शासन (Rule of one)	–	राजतन्त्र (Monarchy)	1.	अत्याचारी शासन (Tyranny)
2. कुछ व्यक्तियों का शासन (Rule of Few)	–	कुलीनतन्त्र (Aristocracy)	2.	अल्पतन्त्र (Oligarchy)
3. अनेक व्यक्तियों का शासन (Rule of Many)	–	लोकतन्त्र (Democracy)	3.	अतिवादी प्रजातन्त्र (Extreme Democracy)

सरकारों के इस वर्गीकरण में प्लेटो ने उनकी पारस्परिक श्रेष्ठता व हीनता पर भी विचार किया है। उसने कहा है कि कानून द्वारा शासित राज्य में जनता की भलाई के लिए एक व्यक्ति को शासन अर्थात् राजतन्त्र सर्वोत्तम है और प्रजातन्त्र सबसे निम्न श्रेणी की ही शासन प्रणाली है। परन्तु कानून के शासन के बिना संचालित सरकारों में अतिवादी प्रजातन्त्र सबसे अच्छा है और अत्याचारी शासन सबसे बुरा है।

2. **जनसंख्या का वर्गीकरण** : अपने ग्रन्थ स्टेट्समैन में प्लेटो ने राज्य की जनसंख्या को कार्यों के आधार पर चार भागों में बाँटा है :–

   (१) शासक वर्ग (Ruling Class)

   (२) प्रशासक वर्ग (Administration Class)

   (३) परीक्षक वर्ग (Examining Class)

   (४) जो उपर्युक्त तीनों वर्गों में शामिल नहीं।

   शासक वर्ग में शासक, प्रशासक वर्ग में प्रशासनिक ज्ञान रखने वाले अधिकारी, परीक्षक वर्ग में न्यायधीश व शुद्व नीतियों की परीक्षा करने वाले तथा अन्तिम वर्ग में पुरोहित, शिल्पी और किसान आदि शामिल होते है। इस पुस्तक में 'Republic' की तुलना में जनसंख्या का विभाजन अधिक व्यावहारिक व तर्कसंगत जान पड़ता है।

3. **लोकतन्त्र पर विचार (Views on Democracy) :** प्लेटो ने 'स्टेट्समैन' में वर्णित वास्तविक राज्यों के सन्दर्भ में प्रजातन्त्र के प्रति अधिक सन्तुलित दृष्टिकोण अपनाया है। जबकि उसने रिपब्लिक में इसके विपरित विचार व्यक्त करते हुए उसे सबसे निकृष्ट शासन माना है किन्तु विधि या कानून – रहित शासनों में इसे सर्वोत्तम माना है क्योंकि इसमें जनता स्वेच्छाचारी शासकों को आसानी से बदल सकती है और उनके स्थान पर अन्य को बिठा सकती है।

4. **इतिहास सम्बन्धी विचार (Views on History) :** प्लेटो ने 'स्टेट्समैन' में मानव –इतिहास की विस्तृत व क्रमवद्ध विवरण प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार मानव समाज सबसे पहले 'क्रोमस का युग' (The Age of Cromus) था। इस युग में संसार का शासन दैवी था। लोगों की स्थिति पशुओं के झुण्ड जैसी थी। इसके बाद सभ्यता का युग आया। इसमें ईश्वर ने संचालन का कार्य अपने हाथों में वापिस ले लिया और लोग लाचार व निरीह बन गए। वे जंगली जानवरों का शिकार बन जाते थे। देवताओं ने उनकी दुर्दशा पर रहम करके मनुष्यों को आग, कलाएँ पौधे व बीज दिए। इससे मनुष्य स्थायी निवास बनाकार उत्तरदायित्व ढंग से अपना जीवन व्यतीत करने लगा।

उपर्युक्त विचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि 'स्टेट्मैन' में प्लेटो का दृष्टिकोण यथार्थवादी है। उसने इस पुस्तक में प्रजातन्त्र को सराहा है। इस पुस्तक में प्लेटो ने उत्पादक वग को महत्त्व दिया है। इसमें कानून को महत्त्व देते हुए उसने सरकारों का वर्गीकरण किया है। इस पुस्तक में प्लेटो के प्रौढ़ विचारों का दर्शन होता है। बार्कर के अनुसार – "आदर्शवाद समाप्त होने से बहुत दूर है किन्तु वास्तविक राजनीति के प्रति एक अधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ इसका अस्तित्व है। "वस्तुतः 'स्टेट्समैन' में प्लेटो के जिस यथार्थवादी दृष्टिकोण की शुरूआत हुई है, उसका पूर्ण विकास उसके अगले ग्रन्थ 'लॉज' में हुआ है।

लाज : उप आदर्श राज्य (The Laws : Sub-Ideal State)

प्लेटो की तीनों रचनाओं में लॉज अन्तिम कृति है जिसका प्रकाशन 347 ई० पू० में हुआ । प्लेटो का वृद्धावस्था में लिखित ग्रन्थ जिसमें गम्भीरता व परिपक्वता का गुण 'रिपब्लिक' की तुलना में अधिक है। लॉज में प्लेटो ने आदर्श एवं व्यावहारिकता का सुदर समन्वय करके उप–आदर्श राज्य की रूपरेखा तैयार करने का प्रयास किया है। उसने राज्य में व्यावहारिकता का गुण पैदा करने के लिए आदर्श राज्य में पर्याप्त संशोधन किए हैं। प्लेटो ने लॉज के दार्शनिक शासक के स्थान पर कानून को प्रतिष्ठित करके न्याय के स्थान पर आत्मसंयम के सिद्धान्त के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। लॉज में दार्शनिक शासक पर विधि की सीमाएँ है। लॉज प्लेटो के सम्पूर्ण राजनीतिक अनुभवों का निचोड़ है। इसमें प्लेटो ने बताया है कि शासक विधि के स्वामी नहीं सेवक और दास है। लॉज में प्लेटो का दृष्टिकोण यथार्थवादी है। लॉज प्लेटो की उत्तरकालीन कृति होने के कारण विचारों की प्रौढ़ता का सागर है जो अमूल्य रत्न प्रदान करती है। इस पुस्तक में प्लेटो ने नगर राज्यों की समस्याओं पर अन्तिम परिणाम प्रस्तुत किए है। सेबाइन ने कहा है कि लॉज प्लेटो के सम्पूर्ण लेखों में सबसे अधिक सुन्दर है। यह पुस्तक 12 भागों मे विभाजित है। प्रथम दो भागों में संगीत व नृत्य शिक्षा, तीसरे में राजय के ऐतिहासिक विकास, चौथे में राजनीतिक विकास, पाँच से आठ तक राज्य के कानूनों, शासन विधान, पदाधिकारियों, राज्य की

जनसंख्या, शिक्षा पद्धति आदि का वर्णन, नौवें से ग्यारहवें तक फौजदारी और दीवानी नियम संहिताओं का वर्णन, बारहवें भाग में कर्त्तव्यविमुख होने वाले सरकारी अधिकारियों के लिए दण्ड–व्यवस्था का वर्णन किया गया है। यह पुस्तक भी संवाद शैली में लिखी गई है। इसमें वर्णित राजनीतिक विचार निम्नलिखित है :–

1. **आत्मसंयम (Self Control) :** 'रिपब्लिक' में आदर्श राज्य में न्याय ही प्लेटो के सिद्धान्त का मौलिक गुण है, लेकिन लॉज के आत्मसंयम का गुण ही मौलिक गुण है। आत्मसंययम का अभिप्राय यह है कि नागरिक कानून का पालन करें, राज्य की संस्थाओं के प्रति उनके मन में सम्मान हो और वे कानून की सर्वोच्च्ता को स्वीकार करने के लिए सदा तैयार रहें। लॉज में न्याय आत्मसंयम के अधीन है। बार्कर का कहना है –"कोई भी सद्गुण तब तक सद्गुण नहीं होता जब तक कि आत्मसंयम का सद्गुण पूर्ण रूप से उससे प्रथम स्थान प्राप्त नहीं करे; बुद्धि, साहस तथा न्याय सभी के सद्गुण होने के लिए, समान रूप से, यह एक पूर्व शर्त है अथवा इनकी पूर्णता के लिए अनिवार्य है।" आत्मसंयम का सद्गुण राज्य की आधारशिला है। आत्मसंयम पर आधारित न होने वाला राज्य अपूर्ण एवं दोषपूर्ण है। प्लेटो का मानना है कि राज्य में एकता, स्वतन्त्रता, सहमति की स्थापना इस सद्गुण के द्वारा ही हो सकती है। आत्म–संयम का सद्गुण राज्य में विवेक तथा वासना के तत्त्वों में समन्वय स्थापित करके राज्य में शान्ति – व्यवस्था कायम करता है।
2. **कानून की सर्वोच्चता (Supremacy of Law) :** प्लेटो ने अपने ग्रन्थ 'लॉज' में कानून के शासन को अच्छा माना है। इसमें शासक व शासित दोनों की कानून के अधीन रहते हैं। प्लेटो ने अपने कटु अनुभव के अनुसार यह निष्कर्ष निकाला है। कि यदि राज्य में दार्शनिकों का शासन न हो तो कानून का शासन अवश्यक होना चाहिए। उसका मानाना है कि एक प्रज्ञावान शासक को तो कानून की आवश्यकता नहीं होती लेकिन ऐसा सद्गुणी शासक मिलना कठिन होता है, इसलिए कानून की आवश्यकता पड़ती है। प्लेटो ने कहा है कि – "कानूनों के बिना व्यक्ति की स्थिति बर्बर पशुओं की तरह हो जाती है।" अपने व्यावहारिक कटु अनुभव के बाद प्लेटो ने कानून की

सर्वोच्चता को प्रतिपादित किया और कहा कि यदि प्रज्ञावान उपलब्ध न हो, तो कानून के शासन को ही स्वीकार करना चाहिए। प्लेटो ने कानून को मानव–आत्मा का अंग तथा आत्मसंयम व विवेक मूर्त रूप माना है। प्लेटो के अनुसार प्राचीन समाजों में विभिन्न परिवारों एवं कुलों में विभिन्न परम्पराएँ व प्रथाएँ होती है, जिनमें परस्पर विरोध होता रहता है। इससे सार्वजनिक हित का मार्ग अवरूद्ध होता है। इसलिए सार्वजनिक हित की पुष्टि से इन परम्पराओं और प्रथाओं में उचित समन्वय एवं तालमेल पैदा करने के लिए कानून का जन्म होता है। इसके अलावा कानून का निर्माण प्राकृतिक प्रकोपों, युद्धों अथवा आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी किया जाता है। प्लेटो का मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति में सार्वजनिक हित को समझने की योग्यता नहीं होती। वह अपने स्वार्थ के कारण सार्वजकिन हित के रास्ते में बाधा उत्पन्न करता है। इसे दूर करने के लिए कानून का बहुत महत्त्व है। कानून का शासन ही सर्वोच्च होता है। इसलिए शासकों को कानून का ही अनुकरण करना चाहिए, अन्यथा सार्वजनिक हित की हानि होगी और राज्य का पतन हो जाएगा। प्लेटो के अनुसार कानून सार्वभौमिक होता है, इसलिए इसका कठोर व संहिताकरण होना जरूरी है। कानून का शासन ही दार्शनिक शासक के अभाव में शासक व जनता का मार्गदर्शक बनकर उन्हें सद्मार्ग पर चलाता है। कानून निर्माण समाज सुधार के लिए ही होता है, इसलिए उसे ईमानदारी से लागू किया जाना चाहिए। प्लेटो का कहना है कि – "राज्य को कानून के अनुसार होना चाहिए, कानून को राज्य के अनुसार नहीं। सरकार को भी कानून के शासन का संचालन करना चाहिए। सरकार कानून की दास व सेविका होती है, स्वामी नहीं। सरकार कानून में परिवर्तन नहीं कर सकती। इसे तो जनता एवं देववाणियों द्वारा स्वीकृत होने पर ही बदला जा सकता है।" अतः हम कह सकते है कि प्लेटो ने लॉज में कानून को सर्वोच्च मानकर कानून के शासन का ही समर्थन किया है।

3. **इतिहास का महत्त्व (Importance of History) :** प्लेटो ने लॉज में ऐतिहासिक अनुभवों में लाभ प्राप्त करने के लिए ऐतिहासिक विधि का सहारा लिया है। वह हमें अनुभवों पर आधारित शिक्षा देता है। प्लेटो ने लॉज में इतिहास के आधार पर एक निश्चित शासन प्रणाली का समर्थन किया है जिसमें राज्य की सत्ता और जनता की सहमति को स्वीकार किया जाता है। प्लेटो ने इतिहास के उदाहरणों के आधार पर कानून के नियम और मिश्रित संविधान की व्यवस्था का समर्थन किया है। प्लेटो ने बताया है कि राज्यों के आत्मसंयम न रहने और सत्ता के एक ही व्यक्ति के हाथ में आ जाने पर ही आरगोस (Argos) एवं मैसिना (Messina) जैसे राज्यों का उसी तरह पतन हो गया जिस तरह अधिक पालों वाले जहाज तथा अधिक माँस वाला शरीर नष्ट हो जाता है। एथेन्स के लोकतन्त्र का पतन भी आत्म–संयम के अभाव के कारण ही हुआ था। इस प्रकार अनेक ऐतिहासिक दृष्टातों के आधार पर प्लेटो ने अपने राजनीतिक विचारों को 'लॉज' में पुष्ट किया है।

4. **शान्ति एवं युद्ध (Peace and War) :** प्लेओ ने अपने ग्रन्थ 'लॉज' में युद्ध की निन्दा व शान्ति का समर्थन किया है। प्लेटो ने 'लॉज' की प्रारम्भिक पुस्तकों में सैनिकवाद की कटु आलोचना करते हुए, स्पार्टा के पतन का कारण वहाँ के सैनिक संगठन को माना है। उसकी मान्यता है कि 'साहस' युग पर आधारित राज्य विकृत होकर युद्ध – प्रेमी हो जाता है। युद्ध निरर्थक होता है। इससे शान्ति का पतन होता है और समाज में अशान्ति व अराजकता का सूत्रपात होता है। युद्ध से साहस विकसित होता है और अनुशासन की भावना बढ़ती है, परन्तु यह साहस अविवेक पर आधारित होने के कारण जनकल्याणकासरी नहीं होता। प्लेटो कहता है कि वास्तविक साहस तभी सम्भव है, जब वह विवेक द्वारा अनुशासित होकर जन– कल्याण के लिए कार्य करे। प्लेटो युद्ध को एक व्याधि मानता है। उसका कहना है कि रोगग्रस्त, रूग्ण और अपूर्ण राज्य ही युद्ध का सहारा लेता है। आंतरिक शांति व लोककल्याण के लिए युद्ध की अपेक्षा शान्ति अधिक जरूरी होती है। इस प्रकार प्लेटो ने 'रिपब्लिक'

में वर्णित सैनिकवाद की लॉज में कटु आलोचना करके शान्ति को ही अधिक महत्त्व दिया है।

5. **प्रशासनिक व्यवस्था (Administrative System) :** 'रिपब्लिक' की तरह प्लेटो ने लॉज में सरकार की सर्वोच्चता को महत्त्व न देकर कानून के शासन को महत्त्व दिया है। कानून के शासन के पालन के लिए एक सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था का ढाँचा भी लॉज में पेश किया गया है। प्लेटो ने उपादर्श राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था की रूपरेखा निम्न प्रकार से प्रस्तुत की है:–

(क) जन–सभा (Popular Assembly) : यह राज्य की नगर सभा है। इसमें नगर – राज्य के सभी 5040 सदस्य शामिल होते हैं और यह राज्य के उच्च संस्थाओं और पदाधिकारियों का यचन करती है। यह कानूनों में परिवर्तन और न्याय भी करती है। इसकी बैठक वर्ष में एक बार जरूरी होती है।

(ख) विधि – संरक्षक अथवा परामर्शदाता बोर्ड (Guardians of Law or Advisory Board) : इस संस्था के सदस्य केवल 50 वर्ष से अधिक आयु के नागरिक ही बन सकते हैं। उनका कार्यकाल 20 वर्ष होता है। उनकी कुल संख्या 37 होती है। उनका चुनाव तिहरी चुनाव प्रणाली द्वारा साधारण सभा के 5040 सदस्यों में से किया जाता है। ये कानून के संरक्षक होते हैं। राज्य के प्रशासन में शिक्षामन्त्री का विशेष स्थान होता है।

(ग) प्रशासनिक परिषद् (Administrative Council) : प्रशासनिक परिषद् में 360 सदस्य होते हैं। इनका चुनाव एक वर्ष के लिए किया जाता है। नागरिकों के चारों वर्गों में से 90 – 90 सदस्य निर्वाचित किए जाते हैं। प्रशासनिक परिषद् के 360 सदस्यों को 12 भागों में बाँटा जाता है। विधि – संरक्षकों के परामर्श अनुसार प्रशासनिक परिषद् शासन करती है।

(घ) न्याय–व्यवस्था (Administration of Justice) : प्लेटो ने 'लॉज' में सभी विवादों का व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक दो भागों में बाँटकर उनके समाधान हेतु तीन न्यायालयों की स्थापना की गई है – (१) पंचायती न्यायालय (२) क्षेत्रीय न्यायालय (३) विशेष

चुने हुए न्यायधीशों का न्यायालय। इस सम्पूर्ण न्याय विभाग का संरक्षक शिक्षा – मन्त्री होता है।

(ङ) स्थानीय शासन (Local Administration) : प्लेटो ने 'लॉज' में स्थानीय शासन की व्यवस्था में नगरों में दो प्रकार के अधिकारी – नगर निरीक्षक एवं बाजार निरीक्षक का उल्लेख किया है। नगर निरीक्षक तीन तथा बाजार निरीक्षक पाँच है। नगर निरीक्षक का चुनाव नागरिकों के प्रथम वर्ग से तथा बाजार निरीक्षकों का चुनाव द्वितीय व तृतीय वर्ग के नागरिकों में से किया जाता है। स्थानीय प्रशासन को सुविधापूर्ण ढंग से चलाने के लिए सम्पूर्ण नगर – राज्य को 12 भागों में बाँटकर प्रत्येक भाग में 5 ग्रामीण निरीक्षक नागरिकों द्वारा चुने जाते हैं।

उपर्युक्त संस्थाओं के अतिरिक्त 'लॉज' में प्लेटो ने दोष निरीक्षक, परीक्षा मण्डल, रात्रि – परिषद् आदि का भी उल्लेख किया है।

6. **सामाजिक और आर्थिक ढाँचा (Social and Economic Structure) :** प्लेटो ने 'लॉज' में उप–आदर्श राज्य के सामाजिक संगठन पर विचार करते हुए परिवार एवं विवाह की संस्थाओं पर विचार किया है। वह परिवार को एक नैतिक एवं धार्मिक सत्ता मानता है। वह विवाह को एक धर्म तथा अविवाहित रहने को अधर्म मानता है। उसने विवाह की संस्था पर राय के नियन्त्रण को स्वीकार किया है। उसने विवाह – उत्सवों का समर्थन किया है। वह विपरित गुण व प्रकृति वाले विवाहों को उत्तम मानता है। विवाह से पूर्व स्वास्थ्य प्रमाण – पत्र चिकित्सक से अवश्य लेना चाहिए। वह जनसंख्या को स्थिर रखने के लिए सन्तानोपत्ति को राज्य राज्य नियन्त्रित करने का समर्थक है। वह स्त्री – शिक्षा को अनिवार्य मानता है। वह स्त्री को सामाजिक जीवन में भाग लेने के लिए कहता है। वह सह–शिक्षा का विरोध करता है।

'रिपब्लिक' के विपरीत लॉज में प्लेटो ने व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने की छूट अवश्य दी है, लेकिन उसके प्रयोग और उसकी मात्रा को निश्चित कर दिया है। वह सार्वजनिक हित में सम्पत्ति पर राज्य का नियन्त्रण आवश्यक मानता है। वह लॉज के सम्पत्ति सम्बन्ध ढाँचे पर कहता है कि नागरिकों को भूमि एवं मकान तो निजी

रूप में प्राप्त होंगे। उसकी भूमि को उपज का उपभोग सार्वजनिक भोजनालयों में पंचायती ढंग से होगा। नागरिकों में भूमि वितरण इस प्रकार से होगा कि नागरिकों में आर्थिक असमानता सीमित मात्रा में रहेगी। नागरिक केवल भूमि से उत्पन्न धन ही रखेंगे। उन्हें सोना, चाँदी अथवा विलास की वस्तुएँ रखने का अधिकार नहीं होगा। दास खेती और विदेशी व्यापार करेंगे। नगर राज्य में तीन वर्ग – दास, विदेशी व नागरिक होंगे। इस प्रकार प्लेटों ने कुछ विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्तियों को ही नागरिक माना है। इस ग्रन्थ में भी प्लेटो की मौलिक समस्या यह है कि व्यक्ति अपने व्यक्तिगत कार्यों को करते हुए सामाजिक कार्यों में भाग कैसे ले। इस समस्या का समाधन करने में प्लेटो 'लॉज' में असफल ही रहा।

7. **शिक्षा व्यवस्था (Educaiton System) :** प्लेटो ने 'लॉज' में भी 'रिपब्लिक' की तरह शिक्षा को बहुत महत्त्व दिया है। उसने स्त्री व पुरूषों के लिए समान पाठ्यक्रम स्वीकार किया है लेकिन सह – शिक्षा प्रणाली का विरोध किया है। वह शिक्षा का उद्देश्य नागरिकों को सद्‌गुणी बनाना बताता है। वह समान शिक्षा प्रणाली अपनाने का सुझाव देता है। उसने शिक्षा को प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा तीन भागों में बाँटकर सब नागरिकों के लिए शिक्षा को अनिवार्य मानता है। वह कला और साहित्य पर कठोर नियन्त्रण की बात करता है। उसने पाठ्यक्रम में संगीत ओर व्यायाम को पूर्ण महत्त्व दिया है। उसका 'लॉज' में वर्णित शिक्षा – सिद्धान्त वास्तव में शिक्षा – संगठन का सिद्धान्त है।
8. **धार्मिक संस्थाएँ (Religious Institutions)** : प्लेटो ने 'लॉज' के दसवें अध्याय में धर्म की विस्तृत व्याख्या की है। उसकी धर्म की प्रति रूचि उसकी वृद्धावस्था के अनुभव की परिचायक है। उसे धर्म का अव्यवस्थित तथा व्यक्तिगत रूप पसन्द नहीं है और वह धार्मिक आडम्बरों का विरोध करता है। वह नास्तिकता को दण्डनीय अपराध मानता है तथा धर्म को राज्य के नियन्त्रण में रखता है। उसका मानना है कि धर्म का रूप राज्य द्वारा निश्चित होना चाहिए उसके धार्मिक विचारों के कारण उसकी पुस्तक 'लॉज' को धार्मिक उत्पीड़ना का प्रतिपादन करने वाला प्रथम ग्रन्थ कहा है।

उपर्युक्त विचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि 'लाज' प्लेटो के राजनीतिक चिन्तन और अनुभवों का सारांश है। लॉज के इन अनुभवों पर आधारित सिद्धान्तों ने परवर्ती चिन्तकों को बहुत अधिक प्रभावित किया है और इतिहास में अपनी गहरी व अमिट छाप छोड़कर अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया है। 'लॉज' में प्लेटो ने अपने उपादर्श राज्य में अपने राजनीतिक अनुभवों को प्रतिस्थापित किया है। प्लेटो की विचारधारा का अस्स्तू पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा और रोमन कानून को तो 'लॉज' की ही सन्तान कहा गया। अतः प्लेटो की पुस्तक 'लॉज' प्लेटो का उपादर्श राज्य का व्यावहारिक ढाँचा प्रस्तुत करती है। इससे प्लेटो को यथार्थवादी होने का गौरव प्राप्त हुआ और उसका यह ग्रन्थ एक ऐतिहासिक धरोहर बन गया।

रिपब्लिक व लॉज में अन्तर (Difference between the Laws and Republic)

1. 'रिपब्लिक' में प्लेटो के विचार आदर्शवादी हैं, जबकि 'लॉज' में यथार्थवादिता का पुट है।
2. 'रिपब्लिक' में सुधारवादी चिन्तक की देन है, जबकि 'लॉज' प्लेटो के मन की गम्भीरता एवं निर्णय की प्रौढ़ता की परिचायक है।
3. 'रिपब्लिक' में प्लेटो ने दार्शनिक राजा के शासन का समर्थन किया है, जबकि 'लॉज' में कानून के शासन की सर्वोच्चता को महत्त्व दिया है।
4. 'रिपब्लिक' का आदर्श राज्य काल्पनिक वस्तु है, जबकि 'लॉज' में वर्णित उपादर्श राज्य इस पृथ्वी पर प्राप्त करने योग्य व्यावहारिक राज्य है।
5. 'रिपब्लिक' में प्लेटो सम्पत्ति की साम्यवादी व्यवस्था करते है, लेकिन 'लॉज' में कुछ शर्तों के साथ निजी सम्पत्ति व परिवार का समर्थन करते है।
6. 'रिपब्लिक' में न्याय ही राज्य का भौतिक गुण है, लेकिन 'लॉज' में आत्म–नियन्त्रण ही एक आवश्यक मौलिक गुण है।
7. 'रिपब्लिक' में प्लेटो ने दार्शनिक राजा की निरंकुशता का समर्थन किया है, जबकि 'लॉज' में लोकतन्त्र को महत्त्व दिया है।

1.11 प्लेटो प्रथम फासीवादी के रूप में (Plato as the First Fascist)

राजनीतिक दर्शन में प्लेटो के सिद्धान्तों के आधार पर उन्हें प्रथम फासीवादी मानने पर विचार किया जाता है। प्लेटो के कुछ आलोचक उसे फासीवादी का अग्रदूत और मुसोलिनी का पूर्वज कहते हैं। पॉपर, क्रासमेन, रसेल, अलफ्रेड हार्नल जैसे विद्वान उसे विश्व प्रथम फासिस्ट और सर्वसत्ताधिकारवादी मानते हैं। प्लेटो के फासीवाद को जानने से पहले फासीवादी विचारधारा का अर्थ जानना आवश्यक है। फासीवाद का जनक मुसोलिनी था जो इटली का तानाशाह था। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद सर्वाधिकारवादी विचारधारा का जन्म हुआ, फासीवाद एक ऐसी विचारधारा है जो व्यक्ति के स्थान पर समूह को व्यक्तिगत हित के स्थान पर राष्ट्रहित को सर्वोपरि मानकर चलती है। यह विचारधारा सर्वसत्ताधिकारवादी राष्ट्र की जान होती है। इसमें उग्र– राष्ट्रवाद वैयक्तिक स्वतन्त्रता का विरोध, लोकतन्त्र व उदारवाद का विरोध, बुद्धिवाद का विरोध, हिंसा व शक्ति में विश्वास आदि प्रवृतियाँ पाई जाती है। प्लेटो को इन फासीवादी विचारों का प्रेरणा–स्त्रोत मानकर उन पर प्रथम फासीवादी होने का लेबल लगा दिया गया। प्लेटो ने भी अपने आदर्श राज्य में दार्शनिक शासक की निरंकुशता, राज्य का महत्त्व, विवेक पर आधारित कुलीनवर्ग का प्रभुत्व, यूनानी जाति की श्रेष्ठता का गुणगान, लोकतन्त्र की भर्त्सना करके ऊपर फासीवादी होने का आरोप लगवा लिया। प्लेटो के फासीवादी होने के तर्क को स्पष्ट करने के लिए प्लेटो के विचारों की फासीवादी विचारधारा से तुलना करना आवश्यक हो जाता है। दोनों में कुछ समानताएँ हैं, जिनके आधार पर उसे प्रथम फासीवादी माना जाता है।

प्लेटो फासीवादी के रूप में (Plato as the Fascist)

अनेक विद्वान प्लेटो को प्रथम फासीवादी कहते हैं। इसके निम्नलिखित कारण हैं :–

1. **सर्वाधिकारवादी राज्य में विश्वास (Belief in Totalitarian State)** : प्लेटो का सर्वसत्तावाद उसके साम्यवादी सिद्धान्त में स्पष्ट हो जाता है। वह विवाह जैसे व्यक्तिगत मामलों में भी व्यक्ति को राज्य के अधीन कर देता है। प्लेटो का विश्वास है कि जो कुछ है राज्य के अन्दर है, बाहर नहीं। वह व्यक्ति को पूर्णतया राज्य के अधीन कर देता है।

फासीवादी नेता मुसोलिनी का भी यही तर्क था कि – "सब कुछ राज्य के अन्दर है, राज्य के विरूद्ध या राज्य के बाहर कुछ नहीं।"

2. **निरंकुश शासन (Dictatorial Rule) :** दोनों का विश्वास है कि आम जनता में शासन करने की क्षमता नहीं होती। शासन करने की योग्यता तो कुछ ही व्यक्तियों में होती है। अतः श्रेष्ठ व्यक्ति ही शासन करने के योग्य हो सकते हैं। प्लेटो ने दार्शनिक राजा के निरंकुश नेतृत्व में विश्वास किया है। उसने दार्शनिक राजा को सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ तथा बुद्धिमान मानकर उसकी आज्ञाओं का पालन जनता द्वारा करना अनिवार्य बना दिया है। उसने स्पष्ट कर दिया है कि दार्शनिक शासक स्वयं कानूनों, जनमत व परम्पराओं से परे है। इसी प्रकार फासीवादी भी एक नेता के शासन में विश्वास करते है जो सर्वसत्तावादी होता है।
3. **लोकतन्त्र व उदारवाद का विरोध (Opposition to Democracy and Liberalism) :** दोनो विचारधाराएँ लोकतन्त्र व उदारवाद की घोर विरोधी हैं। प्लेटो ने अपने ग्रन्थ 'रिपब्लिक' में लोकतन्त्र की आलोचना करते हुए कहा है – "लोकतन्त्र के कानून मृतक शब्द रहते हैं, उसकी स्वतन्त्रता निरंकुशता है, उसकी समानता आसमानों की समानता है।" फासीवादियों के लिए प्रजातन्त्र मूर्खतापूर्ण, भ्रष्ट, धीमी, काल्पनिक तथा अव्यावहारिक प्रणाली है। प्लेटो प्रजातन्त्र को अज्ञानी लोगों का शासन कहता है। इसी प्रकार दोनों उदारवादी विचारधारा का भी विरोध करते हैं।
4. **उग्र–राष्ट्रवाद का समर्थन (Favour of Radical Nationalism) :** प्लेटो के लिए नगर राज्य पूर्ण और सर्वश्रेष्ठ है। फासीवाद भी अपने इटली राष्ट्र को सर्वेसर्वा मानकर उसके लिए त्याग तथा बलिदान की माँग करता है। दोनों ही राष्ट्र के हित में सब कुछ बलिदान करने पर जोर देते हैं।
5. **जातीय श्रेष्ठता (Racial Supremacy) :** प्लेटो यूनानियों को सभ्य व सुसंस्कृत मानकर उन्हें दास बनाने का विरोधी है। उसका मानना है कि यूनानी जाति विश्व में सर्वश्रेष्ठ है। इसी प्रकार फासीवाद नेता मुसोलिनी जातीय श्रेष्ठता में विश्वास रखते हैं। इस प्रकार दोनों में काफी समानता है।

6. **राज्य की सर्वोच्चता (Supremacy of State) :** प्लेटो व फासीवादी दोनों ही राज्य को सर्वोपरि मानते है। दोनों का रूप अधिनायकवादी है। दोनों राज्य–हित को सर्वोपरि मानते हैं। दोनों राज्य को साध्य व व्यक्ति को साधन मानते हैं। व्यक्ति राज्य हित में वृद्धि का साधन मात्र होता है। इसलिए राज्य को साध्य मानकर दोनों राज्य के हित में व्यक्ति के हितों की बलि दे देते हैं।
7. **अन्तरराष्ट्रीयवाद का विरोध (Against Internationalism) :** प्लेटो को चिन्तन का केन्द्र यूनानी नगर राज्य एथेन्स था। वह अपने चिन्तन में एथेन्स की राजनीतिक समस्याओं का वर्णन करता है। फासीवाद का जनक इटली नगर था। मुसोलिनी ने इटली की राजनीतिक स्थिरता के लिए ही फासीवाद का नारा दिया। दोनों विचारधाराएँ अन्तरराष्ट्रीय सन्धियों व समझौते की कट्टर विरोधी हैं।
8. **कर्त्तव्यों की प्रधानता (Emphasis on Duties) :** दोनों विचारधाराओं में कर्त्तव्यों पर ही बल दिया गया है। फासीवाद का यह मानना है कि नागरिकों को अपने नेता की बात आँख बन्द करके माननी चाहिए। इस तरह दोनों व्यक्ति के अधिकारों की मांग की उपेक्षा करके कर्त्तव्यों पर ही बल देते हैं। प्लेटो ने तो राज्य की आज्ञा का पालन करने के लिए नागरिकों से प्राण तक त्यागने की बात की है।
9. **शिक्षा पर नियन्त्रण (Control on Education) :** फासीवादी राष्ट्र की आवश्यकतानुसार ही पाठ्यक्रम निर्धारित करते है। फासीवाद में फासीवादी सिद्धान्तों की ही शिक्षा दी जाती है। राज्य का शिक्षा पर पूरा नियन्त्रण रहता है। इसी प्रकार प्लेटो ने भी राज्य की आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम निर्धारित किया हैं शिक्षा द्वारा सैनिक और शासक तैयार किए जाते हैं। राज्य का शिक्षा पर पूरा नियन्त्रण रहता है। इस प्रकार दोनों में बहुत अधिक समानता है।
10. **अभिजन – वर्ग का शासन (Rule of Elities) :** प्लेटो का मानना है कि शासन करने की क्षमता थोड़े ही व्यक्तियों में होती है। यह अल्पसंख्यक वर्ग ही शासन कर सकता है। इसी प्रकार फासीवादी भी थोड़े से व्यक्तियों के शासन में विश्वास करते

है। उनका मानना है कि बहुमत का शासन भ्रष्ट व अयोग्य होता है। अतः दोनों कुलीनतन्त्र में विश्वास करते हैं, जो बुद्धिजीवियों का समूह है।

11. **समानता के सिद्धान्त का विरोध (Against Principle of Human Equality) :** दोनों असमानता में विश्वास करते हैं। उनका मानना है कि प्रकृति ने सबको समान नहीं बनाया। इसलिए कुछ तो शासक बनने के लिए पैदा होते हैं और कुछ शासित होने के लिए। सभी व्यक्तियों की बौद्धिक क्षमता व कार्य करने की क्षमता समान नहीं होती। अतः दोनों समानता के सिद्धान्त के घोर विरोधी हैं।

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्लेटो एक फासीवादी चिन्तक थे। बार्कर ने प्लेटो के शासन को योग्य व्यक्तियों की निरंकुशता माना है। रसेल ने भी प्लेटो के शासक को तानाशाह कहा है। लेकिन कुछ विद्वानों ने प्लेटो को फासीवादी मानने से इन्कार किया है। उनका मानना है कि दोनों में मौलिक अन्तर है। एच०बी० एक्टन, ई० अंगर, जी०सी० फील्ड, आदि विद्वानों का कहना है कि प्लेटो को फासिस्ट मानना एक मिथ्या धारणा है। सी०ई०एम० जोड़ ने अपने प्रसिद्ध 'गाइड टु फिलासफी ऑफ मोरलस एण्ड पॉलिटिक्स' (Guide to Philosophy of Morals and Politics) में दिखाया है कि फासीवाद और प्लेटोवाद में मौलिक अन्तर है। इसलिए फासीवादी सिद्धान्तवादियों का यह दावा अतिश्योक्तिपूर्ण है कि प्लेटो फासीवादी थे। प्लेटो के प्रथम फासीवादी न होने के पक्ष में निम्न तर्क है :–

1. दोनों सिद्धान्तों के उद्‌भव काल में 2300 वर्ष का अन्तर है। दोनों जिन परिस्थितियों से जन्मे उनमें बिल्कुल अन्तर है।
2. प्लेटो का दर्शन एक पूर्ण व व्यवस्थित दर्शन है, जबकि फासीवाद एक सम्पूर्ण दर्शन न होकर नीत्शे, प्रेटो, हेगल, मुसोलिनी आदि फासीवादियों के सिद्धान्तों का समूह है जो इधर – उधर बिखरे हुए हैं।
3. फासीवाद में तर्क के विरूद्ध विद्रोह है, जबकि प्लेटो आदर्श राज्य में मुक्ति को एक गौरवपूर्ण स्थान देते हैं।

4. प्लेटो साम्राज्यवाद का विरोधी था जबकि फासीवादी साम्राज्यवाद का समर्थन करते हैं।
5. प्लेटो का राज्य हमेशा एक विचार ही रहा जबकि फासीवादी विचार एक तथ्य है। प्लेटोवाद राजनीतिक आदर्शवाद का जबकि फासीवाद राजनीतिक यथार्थवाद का प्रतीक है।
6. प्लेटो ने राजनीति विज्ञान को नीतिविज्ञान के अधीन किया है, जबकि फासीवाद नीति – विज्ञान को ही राजनीति – विज्ञान के अधीन कर देते हैं।
7. प्लेटो साम्यवाद की बात करता है, जबकि फासीवादी साम्यवाद व समाजवाद के घोर शत्रु है।
8. प्लेटोवाद एक शान्तिवादी विचारधारा है, जबकि फासीवाद हिंसा व युद्ध मे ंविश्वास रखता है।
9. प्लेटोवाद संयम व विवेक पर आधारित है। वह किसी भी प्रकार से विरोधियों के दमन की अनुमति नहीं देता, परन्तु फासीवादी विचारधारा विरोधियों के दमन व शोषण का समर्थन करती है।
10. प्लेटोवाद नैतिकता में विश्वास करता है, जबकि फासीवादी किसी प्रकार की नैतिकता में विश्वास नहीं करते। उनका लक्ष्य तो सदैव अवसरवादिता के आधार पर हित–साधना है।
11. प्लेटो शासक में सद्गुणों का होना आवश्यक बताता है, जबकि फासीवादी शासक के लिए शारीरिक और धूर्ततापूर्ण बल पर जोर देते हैं।
12. फासीवाद "जिसकी लाठी उसकी भैंस" की उक्ति में विश्वास करते हैं, जबकि प्लेटो शक्ति के किसी भी रूप का घोर विरोधी है।
13. प्लेटो के शासक का उद्देश्य जनकल्याण करना है, जबकि फासीवादी शासक का उद्देश्य स्वार्थ – सिद्धि करना है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है, प्लेटो न तो फासिस्ट था और न ही फासीवाद का अग्रगामी। यद्यपि उसकी कुछ बातें फासीवाद से मिलती हैं, लेकिन दोनों

के चिन्तन में असमझौतावादी अन्तर है। उसे हिटलर व मुसोलिनी की तरह सर्वसत्ताधिकारवादी नहीं माना जा सकता। दोनों सिद्धान्तों का उद्‌भव भिन्न – भिन्न कालों व परिस्थितियों में हुआ है। दोनों को एक साथ मिलना सर्वथा अनुपयुक्त है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्लेटो न तो फासीवादी थे और न ही फासीवाद के अग्रदूत। उन्हें फासिस्ट कहना केवल अनैतिहासिक ही नहीं, बल्कि असत्य व अनुचित भी है।

1.12 निष्कर्ष–

न केवल यूनान के इतिहास में बल्कि सम्पूर्ण पश्चिमी जगत के राजनीतिक इतिहास में प्लेटो का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। प्लेटो के विचारों में कुछ दोष होते हुए भी इस तथ्य को नहीं नकारा जा सकता कि प्लेटो ने राजनीति को केवल राजनीतिज्ञों के हाथों की कठपुतली नहीं माना। वह राजनीति तथा शासन को एक कला मानते हुए उसे श्रेष्ठ तथा नैतिक आदर्शों से युक्त, शिक्षित व्यक्ति को सौंपना चाहता था। प्लेटो के सम्पति तथा परिवार के साम्यवाद का सिद्धान्त भी यद्यपि अव्यवहारिक है परन्तु इसके पीछे छिपे हुए उद्‌देश्य को अगर देखा जाए तो एक भ्रष्टाचार मुक्त शासन की स्थापना की जा सकती है। वस्तुतः प्लेटो एक अमर दार्शनिक है और मानवता उसकी चिर ऋणी रहेगी। मैक्सी के शब्दों में, ''प्लेटो आदर्शवादियों, कल्पना वालों, क्रान्तिकारियों और रोमांचकारी राजनीतिक दर्शन का जनक है। वे सभी जो पुरातन के स्थान पर नवीन दुनिया के अध्ययनकर्त्ता है, प्लेटो के अनुयायी हैं।

1.13 शब्दावली (Keywords)

अभिराम – आकर्षक व्यक्तित्व

परिपाटी – परपंरागत अनुसरण की जाने वाली धारणाए

सर्वज्ञाता – प्रत्येक विषय का मर्मज्ञ या जानकार

त्रिवर्गिक– तीन वर्गों का

1.14 स्व–मूल्यांकन (Self Assessment)

लघु उत्तरीय प्रश्न(Short Answer Type Question)

(1) प्लेटो पर सुकरात का सैंद्धान्तिक प्रभाव था। समीक्षा करें।

(2) प्लेटो की साम्यवादी विचारधारा के स्रोत क्या थे? वर्णन करें।

(3) प्लेटो के समय प्रचलित न्याय के सिद्धान्त की व्याख्या करें।

दीर्घ उत्तरात्मक प्रश्न(Long Answer Type Question)

(1) प्लेटो के शिक्षा के सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन करें।

(2) क्या प्लेटो का साम्यवाद का सिद्धान्त व्यवहारिक है? व्याख्या करें।

(3) प्लेटो के आदर्श राज्य की विशेषताओं का वर्णन करें।

(4) प्लेटो के न्याय के सिद्धान्त की समीक्षा करें।

1.15 सन्दर्भ सूची–

1. प्रभुदत्त शर्मा, राजनीतिक विचारों का इतिहास (प्लेटो से मार्क्स), कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 1967.
2. बी.एल.फाड़िया, पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास (प्लेटो से मार्क्स), साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2018.
3. जे.पी.सूद, पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का इतिहास (भाग–प्राचीन व मध्यकालीन), जे.नाथ एण्ड कंपनी, मेरठ, 2008.
4. सेबाइन, ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल थ्योरी, न्यूयार्क, 1973
5. पुखराज जैन, राजनीतिक विज्ञान के सिद्धान्त, साहित्य भवन, आगरा, 1988.
6. रघुवीर सिंह, मध्यकालीन विश्व का इतिहास, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. ब्रायन आर. नेल्सन, वेस्टर्न पॉलिटिकल थॉट, वेवलैंड प्रकाशन, 1996.
8. डी. बॉशर व पी. कैली, पॉलिटिकल थिंकरसः फ्रॉम सॉकरेटिज टू द प्रेजेंट, ऑक्सफोर्ड, 2009.
9. जे.कॉलमैन, ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल थॉटः फ्रॉम एंशियट ग्रीस टू अर्ली प्रिस्टियनीटी, ऑक्सफोर्ड, 2000.
10. सी.बी.मैकफर्सन, द पॉलिटिकल थ्योरी ऑफ पसैसिव इंडिवियुलिज्मः हॉब्स टू लॉक, 1962.
11. ली. स्ट्रॉस, हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल फिलॉस्फी, शिकागो यूनिवर्सिटी प्रैस, 1987.

ईकाई – 2

प्रस्तावना (Introduction)

इससे पूर्व की ईकाई में प्लेटो के राजनीतिक दर्शन को समझने का प्रयास किया गया था। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर प्लेटों ने शिक्षा, न्याय, शासक संपति तथा परिवार के साम्यवाद आदि जैसे सिद्धान्त दिए। परन्तु प्लेटो अपनी जीवनकाल में ही इनमें से किसी भी सिद्धान्त को व्यवहारिक रूप से लागू न कर पाने के कारण व्यथित रहा। इस ईकाई में हम गुरू–शिष्य परंपरा की कड़ी में एक और विचारक (अरस्तू) को पढेगें। उनके सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों का अध्ययन करने के साथ यह भी जानने का प्रयास करेगें कि किस प्रकार अरस्तू सर्वप्रथम तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग करके शासन का व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक अध्ययन करता है।

उद्देश्य (Objective)

1. राज्य की उत्पत्ति व स्वरूप को जानना।
2. संविधान तथा शासन प्रणालियों के वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित वर्गीकरण को समझना।
3. शासन में स्थिरता व अस्थिरता लाने वाले व्यवहारिक कारकों का पता लगना।

अध्याय – 2

अरस्तू (Aristotle)

2.1 प्रस्तावना (Introduction).

यूनानी राजदर्श के इतिहास में सुकरात और प्लेटो के बाद अरस्तू का ही नाम प्रसिद्ध है। इन तीनों दार्शनिक ने न केवल यूनान की गरिमा बढ़ाई बल्कि मानव ज्ञान के विकास में भी महान् योगदान दिया। अरस्तू प्लेटो के सबसे प्रिय शिष्य थे और राजनीतिक दर्शन में अपने गुरू से प्रेरित थे; किन्तु दोनों के राजनीतिक विचारों में विशेषकर अध्ययन पद्धति में मौलिक अन्तर मिलता है। जहाँ प्लेटो एक आदर्शवादी तथा क्रान्तिकारी विचारक थे, अरस्तू अपने चिन्तन में एक यथार्थवादी और यथास्थिति के समर्थक थे। राजनीतिशास्त्र के अध्ययन में जहाँ प्लेटो ने चिन्तन की निगमन प्रणाली अपनाई, वहीं अरस्तू ने आगमन पद्धति का प्रयोग किया। प्लेटो के दर्शन में जहाँ आदर्श और कवित्व का पुट है, अरस्तू के दर्शन में यथार्थवादिता और वैज्ञानिकता का समावेश है। प्लेटो की तरह अरस्तू का दर्शन भी बहुमुखी है। राजनीतिशास्त्र के अतिरिक्त नीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, प्रकृतिविज्ञान जैसे विषयों का भी उनको महान् ज्ञाता माना जाता है। मैक्सी ने उसे प्रथम राजनीतिक (First Political Scientist)वैज्ञानिक की संज्ञा दी है। उसे तर्कशास्त्र का भी जनक कहा जाता है। फोस्टर ने उसकी प्रतिभा की व्याख्या करते हुए कहा है कि 'मानव इतिहास में बौद्धिक उपलब्धियों की विशालता तथा उसके प्रभाव की गहनता की सीमा में संभवतः उसका कोई दूसरा समकक्ष नहीं।'' प्लेटो भी उसकी इसी प्रतिभा के कारण उसे अकादमी का मस्तिष्क कहता था। राजनीतिक विज्ञान को एक स्वतंत्र विज्ञान की गरिमा प्रदान करने का कार्य अरस्तू के द्वारा ही किया गया। उसने नीतिशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र में भी अंतर किया। उसने राजनीतिशास्त्र को उच्चकोटि का शास्त्र माना क्योंकि यह राज्य जैसी सर्वोच्च संस्था का अध्ययन करता है। इसी कारण डनिंग ने कहा है, 'पश्चिमी जगत में राजनीति विज्ञान अरस्तू से ही प्रारंभ होता है।''

2.2 उद्देश्य (Objectives)–

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होगें–

- अरस्तू के जीवन इतिहास तथा उसके समकालीन राजनीतिक व सामाजिक परिस्थितियों को समझने में।
- अरस्तू द्वारा ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में दिए गए योगदान को समझने में
- अरस्तू राजनीतिक विज्ञान के जनक हैं। इसका विश्लेषण करने में।

2.3 जीवन परिचय (Life History)

अरस्तू का जन्म एथेन्स से 200 मील उत्तर में स्थित यूनानी उपनिवेश स्तागिरा में 384 ई० में हुआ था। अरस्तू के पिता निकोमाकस एक राजवैद्य थे और उनकी माता फैस्टिस एक गृहिणी थी। उसका बचपन मेसीडोनिया की राजधानी पेल्ला में बीता जहाँ उसके पिता राजवैद्य थे। उसकी बाल्यावस्था में ही उसके सिर से माँ – बाप का साया उठ गया। अरस्तू की शारीरिक बनावट एक कुरूप की तरह थी। अरस्तू ने बचपन से ही चिकित्सा विज्ञान में रूचि लेनी शुरू कर दी और उसने इस अनुभव का अपनी रचनाओं में फायदा उठाया। अरस्तू के जीवन काल को तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

अपने जीवन के प्रथम काल में उसने अठारह वर्ष की आयु में प्लेटो का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। इस समय एथेन्स में प्लेटो की अकादमी की ख्याति जोरों पर थी। अरस्तू एक प्रतिभाशाली छात्र था और प्लेटो का सबसे प्रिय शिष्य बन गया। अरस्तु को नई – नई पुस्तकें एकत्रित करने का शौक था। प्लेटो ने अरस्तू के घर को पाठक का घर कहा। वह प्लेटो का प्रिय शिष्य होने के बावजूद भी स्वतन्त्र चिन्तन में विश्वास रखता था, इसलिए उसने अपने गुरू प्लेटो के कुछ आदर्शों का विरोध भी किया। अरस्तू ने स्वयं कहा कि प्लेटो के साथ ही ज्ञान का अन्त नहीं होगा। लेकिन उसने अपने गुरू की मृत्यु तक अकादमी नहीं छोड़ी और उसकी मृत्यु पर उसे एक महान् चिन्तक बताया।

अपने जीवन के दूसरे काल में प्लेटो की मृत्यु (347 ई० पू०) के बाद वह अकादमी में प्रधान पद प्राप्त करने में असफल रहने पर एथेन्स छोड़कर अपने मित्र जेनोक्रेटिज के साथ एस्सास नामक नगर में चला गया। वहाँ पर उसने सम्राट हरमियास के दरबार में राजवैद्य का पद स्वीकार कर लिया। कालान्तर में उसने सम्राट की सहायता से एक अकादमी की स्थापना की। अरस्तू ने सम्राट हरमियास की भानजी और दत्तकपुत्री से विवाह भी किया। 432 ई० पू० में सम्राट की मृत्यु के बाद वह एस्सास छोड़कर स्तागिरा चला गया और वहाँ पर उसने हर्पलिस नामक सुन्दरी से गुप्त विवाह कर लिया। 342 ई० पू० में ही वह मेसीडोनिया के राज फिलिप द्वारा आमन्त्रित किए जाने पर सिकन्दर महान् को पढ़ाने हेतु मेसीडोनिया चला गया। 344 ई० पू० जब सिकन्दर विश्व विजय अभियान पर निकला तो वह वापिस एथेन्स चला गया। अपने जीवन के तीसरे काल में मेसीडोनिया के राजा फिलिप की मृत्यु के बाद वह एथेन्स में 12 वर्ष तक रहा और उसमें 'लाइसियम' नामक अकादमी की स्थापना की। 323 ई० पू० सिकन्दर की मृत्यु होने पर एथेन्सवासियों ने मेसीडोनिया के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। अरस्तू मेसिडोनिया समर्थक होने के कारण देशद्रोह का आरोप लगने पर अपने प्राण बचाने हेतु यूबोइया टापू के कैल्सिस नामक नगर में चला गया। यहीं पर इस महान् दार्शनिक की 322 ई० पू० में जीवन ज्योति बुझ गई।

महत्त्वपूर्ण रचनाएँ (Important Works)

अरस्तू की महानता उसके जीवन से नहीं, अपितु उसकी रचनाओं से स्पष्ट होती है। उसने गणित को छोड़कर मानव – जीवन और प्राकृतिक विज्ञान के हर क्षेत्र को छुआ है। उसने दर्शन, साहित्य, यन्त्र – विज्ञान, भौतिकशास्त्र, शरीर विद्वान, खगोल विद्या, शासन कला, आचारशास्त्र, लेखन कला, भाषण कला, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि विषयों पर लेख लिखे हैं। उसके गम्भीर और प्रभावशाली लेखन कार्य को देखकर यह कहा जाता है कि सबसे महान् दार्शनिक चिन्तक है। मैक्सी ने उसे 'सर्वज्ञ गुरू' और दाँते ने उसे 'ज्ञाताओं का गुरू' की संज्ञा दी है। कैटलिन ने उसे सामान्य बुद्धि और स्वर्ण मार्ग का सर्वोच्च धर्मपूत कहा है। उसके लेखन कार्य की महानता को देखकर फोस्टर ने कहा है –

"अरस्तु की महानता उसकी रचनाओं में है, न कि उसके जीवन में।" उस की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ इस कथन को स्पष्ट करत हैं कि वह अपने समय के यूनान ज्ञान – विज्ञान का विश्वकोष था।

अरस्तू ने लगभग 400 ग्रन्थों की रचना की। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने उसके समस्त ग्रन्थों को 12 खण्ड़ो में प्रकाशित किया है, जिसमें पृष्ठों की संख्या 3500 है। उसकी सर्वश्रेष्ठ कृति 'पॉलिटिक्स' है। उसकी रचनाओं को सामान्य रूप से तार्किक वैज्ञानिक, सौन्दर्यशास्त्रीय एवं दार्शनिक चार वर्गों में बाँटा जा सकता है। 'कैटेगरीज'(Categories), टॉपिक्स' (Topics), 'प्रायर एनालीटिक्स' (Prior Analytics), 'पोस्टेरियर एनालीटिक्स' (Posterior Analytics), 'प्रोपोजीशन्स' (Propositions), 'सोफिस्टिकल रेफुटेशन' (Sophistical Refutation), आदि रचनाएँ तार्किक रचनाएँ है। उसने भौतिकशास्त्र, जीव – विज्ञान, ऋतुविज्ञान आदि वैज्ञानिक विषयों पर भी लिखा। 'मैटरोलॉजी' (Meterology) तथा 'हिस्ट्री ऑफ एनीमल' (History of Animals), आदि रचनाएँ वैज्ञानिक कोटि की है। 'रेटोरिक' (Rhetoric), और 'पोएटिक्स' (Poetics) रचनाएँ सौन्दर्यशास्त्र के अन्तर्गत आती है। 'मेटाफिजिक्स' (Metaphysics), 'निकोमाकियन एथिक्स' (Nicomachean Ethics) एवं 'पालिटिकस' (Politics), 'दॉ कॉन्स्टीट्यूशन ऑफ एथेन्स' (The Constitution of Athens) दर्शनशास्त्र की रचनाएँ है। 'यूडेमस' (Eudemus), 'काइलो' (Caelo) तथा 'डी अनिमा' (De Anima) अरस्तू की अन्य प्रसिद्ध रचनाएँ है।

2.4 अध्ययन की पद्धति (Method of Study)

अरस्तू राजनीति दर्शन के इतिहास में ऐसा प्रथम चिन्तक है जिसने एक परिपक्व विद्वान की तरह क्रमवद्ध ढंग से साहित्य का सर्जन किया। इसी कारण उसे प्रथम राजनीतिक वैज्ञानिक होने का श्रेय प्राप्त हुआ। अरस्तू की रचनाएँ कल्पना की उड़ान न होकर वास्तविकता से सम्बन्ध रखती हैं और उनमें प्रौढ़ावस्था का अनुभव है। मैक्सी के अनुसार – "अरस्तू ने प्राय वैज्ञानिक पद्धति (Scientific Method) का अनुसरण किया है।" इसी प्रकार बार्कर ने भी लिखा है – "अरस्तू ने एक वैज्ञानिक की तरह लिखा है, उसके ग्रन्थ क्रमद्ध,

समीक्षात्मक एवं सतर्क हैं। उसमें कल्पना की उड़ान नहीं यथार्थ का पुट है।" अरस्तू ने एक वैज्ञानिक की तरह पारिवारिक पृष्ठभूमि के कारण बचपन से विशेष घटनाओं और तथ्यों के निरीक्षण के आधार पर प्राप्त अनुभवों का पूरा लाभ उठाया और सामान्य सिद्धान्त कायम करने में सफल रहा। उसने अपने चिन्तन में जीव–विज्ञान और वैज्ञानिक पद्धति में जो अभिरूचि दिखाई, वह उसके पारिवारिक वातावरण की ही देन है। अतः उसको वैज्ञानिक अनुभव विरासत के रूप में प्राप्त हुआ था जिस पर उसने अपने लेखन कार्य आधारित किया। अरस्तू की अध्ययन पद्धति की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :–

अरस्तू ने सर्वप्रथम राजनीतिशास्त्र का अध्ययन करते समय आगमनात्मक पद्धति (Inductive Method) का ही प्रयोग किया। यह पद्धति विशेष से सामान्य की ओर बढ़ती है। इसमें घटनाओं का सामान्यीकरण किया जाता है। अरस्तू ने भी घटनाओं का सामान्यीकरण किया है। बार्कर ने अरस्तू की आगमनात्मक पद्धति के बारे में लिखा है – "इस अध्ययन पद्धति का सार था निरीक्षण करना तथा सम्बनिधत आँकड़े एकत्रित करना और इसका उद्देश्य था, प्रत्येक विचार्य विषय का कोई सामान्य सिद्धान्त खोज निकालना।" अरस्तू ने इस पद्धति का प्रयोग तथ्यों के निरीक्षण, संग्रह, सामायोजन, तुलनात्मक अध्ययन तथा उसके आधार पर निष्कर्ष निकालने में किया है। अतः अरस्तू दृश्यमान जगत् के वास्तविक पदार्थों को अपने विचार का आधार बताते हुए स्थूल सूक्ष्म की ओर बढ़ता है।

अरस्तू की पद्धति विश्लेष्णात्मक (Analytical) भी है। इस पद्धति के अन्तर्गत किसी विषय या वस्तु के निर्माणकारी अंगों को अलग करके उनका अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए अरस्तू ने राज्य के स्वभाव का अध्ययन करने से पहले उसके निर्माणकारी तत्त्वों – परिवारों और गाँवों का अध्ययन किया है। जीवन का अध्ययन करने के लिए अरस्तू ने जीवन को तीन भागों – पौष्टिक (Nutrative), संवेदनशील (Sensitive), और बौद्धिक (Rational) में बाँटकर सामान्य सिद्धान्त की खोज की है। इसी प्रकार अरस्तू ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'पालिटिक्स' के तीसरे अध्याय में नागरिकों को निर्माणकारी तत्त्व मानकर राज्य का अध्ययन किया है। अपनी इसी पद्धति के आधार पर अरस्तू ने विभिन्न शासन प्रणालियों में क्रान्ति के

कारणों का अध्ययन किया है। इस प्रकार विश्लेषण अरस्तू की अध्ययन पद्धति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

अरस्तू ने अपने समय के विविध विषयों के बारे में जानने के लिए ऐतिहासिक घटनाओं का भी सहारा लिया है। उसने यूनानी समाज में प्रचलित 158 देशों की राजव्यवस्थाओं के ऐतिहासिक और तत्कालीन कार्य – कारण का अध्ययन किया है। अरस्तू के इन विचारों के कारण उसे ऐतिहासिक विधि (Historical Method) का जनक भी कहा जाता है।

अरस्तू ने तत्कालीन यूनानी समाज में प्रचलित 158 देशों की शासन पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन है। इस कारण अरस्तू को तुलनात्मक पद्धति (Comparative Method) का जनक कहा जाता है। इस पद्धति के अन्तर्गत उसने प्रत्येक किस्म के संविधान के गुणों व दुर्बलतओं का अध्ययन करके तुलनात्मक निष्कर्ष निकाले हैं।

अतः निष्कर्ष तौर पर यह कहा जा सकता है कि अरस्तू ने अनुभवमूलक तथ्यों पर आधारित वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया है। उसकी पद्धति आगमनात्मक, ऐतिहासिक तथा विश्लेषणात्मक है। वह तथ्यों का अध्ययन करके ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचा है। उसने इतिहास और घटनाओं का व्यापक विश्लेषण किया है। उसने विभिन्न देशों के संविधानों का तुलनात्मक अध्ययन करके तुलनात्मक पद्धति को जन्म दिया हैं उसने राजनीतिशास्त्र को एक स्वतन्त्र और सम्पूर्ण विज्ञान का रूप प्रदान किया है। उसने राजनीतिशास्त्र को नीतिशास्त्र से अलग करके एक सर्वोच्च विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इसलिए अरस्तू को यथार्थवादियों , वैज्ञानिकों, व्यवहारवादियों एवं उपयोगितावादियों का जनक माना जाता है।

2.5 अरस्तू पर प्रभाव (Influence on Aristotle)

प्रत्येक राजनीतिक चिन्तक अपने काल की परिस्थितियों की उपज होता है। वह अपने समय की परिस्थितियों, वातावरण तथा प्रचलित विचारों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। अरस्तू भी इसका अपवाद नहीं था। उस पर निम्न तथ्यों का प्रभाव पड़ा :–

1. **प्लेटो के विचार (Plato's Ideas) :** अरस्तू ने अपना अधिकांश समय प्लेटो के पास ही व्यतीत किया। प्लेटो की संगति ने ही अरस्तू के दर्शन का राजनीतिक और नैतिक निर्माण किया था। डनिंग व फॉस्टर जैसे लेखक अरस्तू के दर्शन पर प्लेटो का अधिक प्रभाव मानते हैं। स्वयं प्लेटो अरस्तू को अपनी 'अकादमी का मस्तिष्क' कहा करता था। अरस्तू प्लेटो का 20 वर्ष तक शिष्य रहा। फॉस्टर के अनुसार – "अरस्तु प्लेटो के शिष्यों में महान् था।" अरस्तू प्लेटो के विचारों से इतने अभिभूत हुए जितने कि उनके अतिरिक्त कोई अन्य नहीं हुआ अर्थात् अरस्तू के विचार दर्शन को जितना प्लेटो ने प्रभावित किया, उतना किसी ने नहीं। अरस्तू पर प्लेटो का प्रभाव निम्नलिखित है :–

   (i) राज्य का सद्‌गुण व्यक्ति के सद्‌गुण से अभिन्न है।

   (ii) राज्य एक स्वाभाविक, नैतिक एवं आध्यात्मिक सत्ता है जो व्यक्ति को नैतिक रूप से बलवान बनाती है।

   (iii) मनुष्य स्वाभाव से ही एक सामाजिक प्राणी है।

   (iv) राजनीतिक समस्या नैतिक समस्या है क्योंकि राज्य का उद्देश्य व्यक्ति का नैतिक विकास करना है।

   (v) एक मिश्रित संविधान वाला राज्य अव्यावहारिक नहीं होता है।

   (vi) अरस्तू ने अपने विचारों में अनिवार्य शिक्षा के सिद्धान्त को मान्यता दी है।

   (vii) प्लेटो की तरह अरस्तू भी प्रजातन्त्र का विरोध करता है।

   (viii) प्लेटो के समय अरस्तू व्यक्ति धर्म को सर्वोच्च मानता है।

   (ix) छोटे आकार का नगर राज्य ही जीवन के लिए अच्छा होता है।

   (x) राज्य के कार्यों को क्रियान्वित करना कुछ एक नागरिकों का एकाधिकार होना चाहिए।

   (xi) 'लॉज' में प्लेटो की तरह अरस्तू भी कानून की सम्प्रभूता (Sovereignty of Law) में विश्वास करता है। वह शासकों को विधि का संरक्षक मानता है।

यद्यपि अरस्तू ने प्लेटो से बहुत कुछ सीखा, लेकिन उसका अन्धाधुंध अनुसरण नहीं किया। वे आवश्यकता पड़ने पर प्लेटो की आलोचना भी करते थे। प्लेटो के दर्शन और अरस्तू के दर्शन में कुछ विभिन्नताएँ भी हैं, लेकिन उनका ज्यादा महत्त्व नहीं है। अतः अरस्तू पर प्लेटो का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है जिसके बारे में मैक्सी ने कहा है – "दोनों में नैतिक जीवन के प्रति आस्था है। न्याय की व्यवस्था तथा बुद्धिमता के प्रति अगाध अनुराग है। शिक्षा द्वारा मनुष्य को सुधारने में अमिट विश्वास है, दोनों उत्तम जीवन की प्राप्ति को अपना लक्ष्य मानते है, राज्य को मनुष्य के विकास के लिए आवश्यक मानते है और समाज का निर्माण न्याय, तर्क एवं बुद्धि के आधार पर करने के लिए उत्सुक है।" स्पष्टतया अरस्तू ने अपने दर्शन के मूल तत्त्व प्लेटो से ही लिए हैं। इससे सिद्ध होता है कि अरस्तू प्लेटो का सबसे अधिक निष्ठावान शिष्य था प्रो० रास का विचार है – "प्लेटो की दार्शनिक और अरस्तू की वैज्ञानिक धारणा की विभिन्नता को छोड़कर अरस्तू की विचारधारा का कोई ऐसा पन्ना नहीं है, जिस पर प्लेटो का प्रभाव न पड़ा हो। जब वह प्लेटो के सिद्धान्त की आलोचना भी कर रहा होता है तब भी यह प्रभाव दिखाई देता है।" अतः अरस्तू द्वारा प्लेटो की आलोचना भी एक रचनात्मक कार्यक्रम था। उससे भी अरस्तू ने कुछ न कुछ अवश्य ग्रहण किया। इस प्रकार वे प्लेटो के ऋणी बन गए।

2. **यूनानी सभ्यता का प्रभाव (Influence of Greek Civilization)** : अरस्तू यूनानी धारणाओं से अच्छी तरह परिचित थे। उसने अपने दर्शन में निम्नलिखित धाराणाओं को शामिल किया:

   (i) यूनानी जाति अन्य सभी जातियों में श्रेष्ठ व सभ्य है।

   (ii) दास – प्रथा प्रकृति के अनुकूल है।

   (iii) नगर–राज्य ही सर्वश्रेष्ठ सामाजिक व राजनीतिक संगठन है।

   (iv) समाज व्यक्ति से पहले है तथा समाज हित में व्यक्ति का हित त्यागा जा सकता है।

   (v) नागरिकता एक स्वतन्त्र मानव की सबसे बडी विशेषता है।

   (vi) प्रकृति विकास की दिशा में चल रही है।

3. **पिता का प्रभाव (Influence of His Father) :** अरस्तू का पिता एक राजवैद्य था। अरस्तू की भी इस पेशे के प्रति रूचि जागृत होना उसके पिता के पेशे का ही प्रभाव है। उसने अपना वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपने पिता से ग्रहण किया है। उसने जीव विज्ञान सम्बन्धी बातें अपने पिता से सीखी जो उसके ग्रन्थों में स्पष्ट दिखाई देती है। राज्य की बार – बार किसी प्राणी से तुलना करना उसके इस प्रभाव को स्पष्ट करता है। बार्कर के अनुसार – "चूँकि चिकित्सक का पेशा अरस्तू के परिवार में पीढ़ियों से चला आ रहा था। अतएव अपने चिन्तन में अरस्तू ने जीव विज्ञान और वैज्ञानिक पद्धति में जो दिलचस्पी दिखाई है, उसका कारण उस पर पारिवारिक वातावरण का ही प्रभाव है।"
4. **पारिवारिक जीवन (Family Life) :** अरस्तू का दाम्पत्य जवीन अत्यधिक सुखी था। उसने इसी अनुभव के कारण परिवार की संस्था का समर्थन तथा प्लेटो के पत्नियों के साम्यवाद का विरोध किया है। अरस्तू सम्पत्ति को व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक मानते हैं। उसने अपने सफल वैवाहिक जीवन के कारण अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। उसके राज्य, व्यक्ति, दास– प्रथा, सम्पत्ति, परिवार आदि पर विचार उसके पारिवारिक वातावरण से प्राप्त विचारधारा के ही परिणाम है।
5. **राजदरबारों का वातावरण (Conditions of Royal Courts) :** चूँकि अरस्तू का पिता राजवैद्य था, जिसके कारण बचपन में ही उसे राजदरबारों में जाने का मौका मिलने लगा। वह स्वयं भी हरमियास तथा मैसिडोनिया के राजा फिलिप के राज दरबार में उच्च पदों पर रहा। उसने राजा फिलिप के दरबार में रहने के कारण अपनी पुस्तक 'पोलिटिक्स' में राजतन्त्र तथा निरंकुशातन्त्र पर टीका – टिप्पणी की है। उसने संवैधानिक राजतन्त्र का समर्थन राजदरबारों के वातावरण से प्रभावित होकर ही किया है।
6. **तत्कालीन परिस्थितियाँ (Contemporary Conditions) :** कोई भी विचारक तत्कालीन सामाजिक व राजनीतिक वातावरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। अरस्तू पर भी तत्कालीन परिस्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ा। उस समय यूनान की राजनीति में बड़ी उथल–पुथल हो रही थी। नगर–राज्यों के जीवन में हास का युग था इस काल में स्पार्टा का पतन हुआ था। इन परिस्थितियों ने अरस्तू को सोचने के लिए बाध्य किया

कि यूनानी नगर राज्यों के पतन के क्या कारण थे। अरस्तू ने इसका कारण यूनानियों में एकता का अभाव बताया। समकालीन परिस्थितियों में राजनीतिक चिन्तन को आदर्श नगर – राज्य थे। यद्यपि अरस्तू ने मेसोडोनिया के साम्राज्यवाद के दर्शन कर लिए थे, लेकिन फिर भी वह यूनानियों के हृदय से नगर – राज्यों का अथाह प्रेम व लगाव की भावना को नहीं निकाल सका। उसने नगर –राज्य को ही अपने अनुशीलन का केन्द्र बनाया। इस प्रकार तत्कालीन राजनीतिक व सामाजिक वातावरण ने भी अरस्तू के मानस – पटल पर गहरा प्रभाव डाला।

अतः हम कह सकते हैं कि अरस्तू का चिन्तन किसी एक तत्त्व से प्रभावित न होकर अनेक तत्त्वों से प्रभावित हुआ। उस पर सबसे अधिक प्रभाव अपने गुरू प्लेटो व पारिवारिक पृष्ठभूमि का पड़ा। इसने अतिरिक्त यूनानी सभ्यता, राजदरबारों के वातावरण व तत्कालीन परिस्थितियों ने भी उसे प्रभावित किया। अतः अनेक तत्त्वों ने उसके मौलिक चिन्तन पर प्रभाव डाला है।

2.6 राज्य की उत्पत्ति व प्रकृति का सिद्धान्त (Theory of Origin and Nature of State)

अपने ग्रन्थ 'पोलिटिक्स' में अरस्तू ने राज्य की उत्पत्ति, स्वरूप तथा लक्ष्य के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा करते हुए कहा है कि 'मनुष्य एक सामाजिक तथा राजनीतिक प्राणी है' (Man is a Social and Political Animal) । अरस्तू के अनुसार मनुष्य का अस्तित्व और विकास राज्य में ही सम्भव है। तत्कालीन यूनान के सोफिस्टों का मानना था कि राज्य मनुष्य निर्मित कृत्रिम संस्था है, परन्तु अरस्तू सोफिस्टों के इस विचार का खण्डन करते हुए राज्य को एक ऐसी स्वाभाविक संस्था मानता है जो एक ऐतिहासिक विकास का परिणाम है। अरस्तू राज्य को एक सावयिक संगठन मानता है और व्यक्ति को उसकी एक इकाई मानता है जिसको राज्य से अलग नहीं किया जा सकता। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि अरस्तू ने व्यक्ति को राज्य में मिला दिया है।

राज्य की उत्पत्ति (Origin of State)

अरस्तू ने राज्य की उत्पत्ति के बारे में प्रचलित तत्कालीन समझौता सिद्धान्त तथा दैवीय सिद्धान्त का खण्डन करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि राज्य एक ऐसे ऐतिहासिक विकास का परिणाम है, जिसकी शुरूआत परिवार से होती है। अरस्तू के अनुसार मनुष्य की दो मूलभूत आवश्यकताएँ होती है। अरस्तू के अनुसार मनुष्य की दो मूलभूत आवश्यकताएँ होती है – भौतिक आवश्यकता तथा प्रजनन की आवश्यकता। भौतिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए वह दास के सम्पर्क में आता है तथा प्रजनन की आवश्यकता के कारण स्वामी और स्त्री परस्पर एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं। इस प्रकार स्वामी, स्त्री और दास से पहला सामाजिक संगठन कुटुम्ब का निर्माण होता है। कुटुम्ब से ग्राम तथा ग्राम से राज्य की उत्पत्ति होती है। अरस्तू ने अपने राज्य की उत्पत्ति के सिद्धान्त को कुछ मूलभूत मान्यताओं पर खड़ा किया है। उसके मुख्य मूल वैचारिक आधार निम्नलिखित है :–

सर्वप्रथम अरस्तू का मानना है कि मनुष्य के दो प्राथमिक एवं स्वाभाविक सहजबोध (Natural Instincts) हैं जिनके कारण वह दूसरों के साथ संगति करने पर बाध्य होता है। ये मूल प्रवृत्तियाँ या सहजबोध हैं – आत्मरक्षा (Self - preservation) तथा यौन – सन्तुष्टि (Reproductive Instinct)। आत्म – रक्षा की प्रवृति के कारण स्वामी और सेवक का तथा यौन – सन्तुष्टि या प्रजनन की प्रवृति के कारण स्वामी और स्त्री (स्त्री–पुरूष) का मिलन होता है। इन दो मूल प्रवृतियों के कारण परिवार का जन्म होता है। परिवार व्यक्ति की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। अपनी सामाजिक आवश्यकता की प्रवृति एवं अच्छे जीवन की आकांक्षा से प्रेरित होकर मनुष्य मात्र का निर्माण करता है। परन्तु गाँव भी मनुष्य की सारी आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर सकता। इसलिए अपने जीवन की पूर्णता के लिए वह राज्य का निर्माण करता है। राज्य में व्यक्ति को जीवन, समाज तथा नैतिकता तीनों वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं। राज्य में ही व्यक्ति की उच्चतम आध्यात्मिक क्षमता का विकास होता है। अतः अरस्तू के अनुसार – "राज्य का अस्तित्व केवल जीवन के लिए नहीं, बल्कि उत्तम जीवन के लिए है।" इस प्रकार राज्य ही व्यक्ति को सच्चे अर्थ में पूर्ण मनुष्य बनाता है।

अरस्तू की दूसरी मान्यता यह है कि किसी वस्तु का अन्तिम रूप ही उसका सही रूप होता है। यह उसका अनोखा सोद्देश्यवादी (Teleological) तर्क है। अरस्तू का मानना है कि सभी वस्तुएँ अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अग्रसर होने में दृढ़ संकल्प है। सभी वस्तुएँ अपने अन्त को प्राप्त करने पर ही सच्चे स्वरूप को प्राप्त करती हैं। राज्य मनुष्य का सच्चा स्वरूप है। मनुष्य पूर्ण पशु नहीं है। वह अपने स्वभाव के आधार पर पशुओं से अलग है। उसका सच्चा स्वरूप युक्तिपरक (Rational Logical) है। फोस्टर ने कहा है – "अरस्तू के अनुसार राज्य केवल इस अर्थ में स्वाभाविक नहीं है कि वह मनुष्य की पाशविक आवश्यकताओं को पूरा करता है, परन्तु इस अर्थ में भी स्वाभाविक है कि वह व्यक्ति के उच्चतर स्वभाव के विकास के लिए आवश्यक प्रकृति तथा वातावरण प्रदान करता है।" राज्य के अन्दर ही व्यक्ति अपना सम्पूर्ण विकास कर सकता है। बार्कर का कहना है – "राज्य के बिना और राज्य से भिन्न व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है।" इसका अर्थ यह है कि मनुष्य प्रकृति से ही राजनीतिक प्राणी है। अतः राज्य ही मानव का स्वाभाविक ध्येय है। इस तर्क के आधार पर अरस्तू सिद्ध करता है कि राज्य बिना व्यक्ति या तो पशु होगा या देवता। अतः व्यक्ति का सही और पूर्ण रूप राज्य ही है।

राज्य को स्वाभाविक संस्था सिद्ध करने के लिए अरस्तू का तीसरा तर्क यह है कि राज्य एक आंगिक संस्था है और उसका विकास और वृद्धि लगातार हो रही है। राज्य एक पूर्ण वस्तु है जिसके व्यक्ति अंग है। अरस्तू के अनुसार – "राज्य एक स्वाभाविक संस्था है, वह एक ऐसी आंगिक इकाई है, जिसमें प्राणी के सभी गुण मौजूद हैं।"

उपर्युक्त तीनों तर्कों के आधार पर अरस्तू यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि राज्य एक स्वाभाविक संस्था है। मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है और राज्य एक स्वाभाविक संस्था है – ये दोनों कथन एक – दूसरे में निहित है। राज्य मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बने मानव समुदायों के निरन्तर विकास का अन्तिम परिणाम हे। मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है, जो स्वभाव से ही राजकीय जीवन के लिए बना है। अरस्तू की ये दो बातें कि

मनुष्य एक राजनीतिक पशु है तथा राज्य एक स्वाभाविक संस्था है, अरस्तू की राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में महत्त्वपूर्ण देन हैं।

राज्य का विकास (Development of State)

राज्य के विकास – क्रम को निम्न आधारों पर समझा जा सकता है :–

अरस्तू का मानना है कि मनुष्य एक सामाजिक और राजनीतिक प्राणी हैं, अतः वह एकाकी जीवन व्यतीत नहीं कर सकता । वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों पर निर्भर रहता है। सामाजिकता का गुण अन्य जीवधारियों में भी पाया जाता है, किन्तु मनुष्य की सामाजिकता का गुण अन्य से अधिक है। मनुष्य की सामाजिक प्रवृत्ति केवल उसकी दो मूलभूत आवश्यकताओं – भौतिक व प्रजनन को पूरा नहीं करती, बल्कि उसकी बौद्धिक एवं नैतिक आवश्यकताओं को भी पूरा करती है। इस सामाजिकता के गुण के कारण राज्य की उत्पत्ति की शुरूआत होती है।

अरस्तू के अनुसार राजनीतिक संस्थाओं के विकास क्रम में पहली संस्था परिवार या कुटुम्ब है। इसमें पति – पत्नी एवं संतान के अतिरिक्त दास भी शामिल है। अन्य सभी जीवधारियों की तरह स्त्री व पुरूष भी नस्लवृद्धि को प्राकृतिक भावना से ग्रस्त होते हैं। इस भावना तथा अन्य भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परिवार नामक संस्था का जन्म होता है। अपनी उत्पत्ति व कार्य की दृष्टि से परिवार एक प्राकृतिक संस्था है। अरस्तू ने परिवार में दास की गणना प्राकृतिक नियमों के अनुकूल मानी है। अतः मनुष्य भौतिक व प्रजनन की प्रवृतियों के कारण परिवार का उदय होता है।

जब परिवारों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती है तो इसके साथ – साथ उनकी आवश्यकताओं में भी वृद्धि होती है। कालांतर में मूल परिवार से ही अनेक परिवार बन जाते हैं और वे लगातार एक ही स्थान पर बसते जाते हैं। वे परस्पर आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सहयोग करते हैं और ग्राम नामक संगठन का उदय होता है। अरस्तू के अनुसार – "जब अनेक परिवार एक – साथ रहते हैं तथा उनके साथ – साथ रहने का उद्देश्य रोजाना

की आवश्यकताओ की पूर्ति करने मात्र से कुछ अधिक होता है, तब ग्राम अस्तित्व में आता है। ग्राम में सबसे प्राकृतिक रूप एक ऐसे उपनिवेश (Colony) के रूप में रहा होगा जिसे रक्त सम्बन्ध के परिवारों ने बसाया होगा।" सम्भवतः इन रक्त सम्बन्ध वाले परिवारों का सबसे वृद्ध पुरूष राजा की तरह कार्य करता रहा होगा। ग्राम के स्तर पर मनुष्य अपनी निम्नतम आवश्यकताओं के साथ ही अपनी अनेक मनोरंजन, धार्मिक – उत्सव तथा विकसित आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी करने लगता है। इससे राज्य के जन्म की पृष्ठभूमि तैयार होती है।

कालांतर में मनुष्य ने यह अनुभव किया कि उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति मात्र ग्राम से सम्भव नहीं अपितु विभिन्न ग्रामों के पारस्परिक सहयोग से सम्भव है। तब ही राज्य का जन्म होता हे। अरस्तू के अनुसार – "जब अनेक ग्राम मिलकर पर्याप्त आकार वाले एक ऐसे पूर्ण समुदाय का रूप धारण कर लेते हैं जो लगभग पर्याप्त आत्म–निर्भर हो, जीवन की कठोर आवश्यकताओं से राज्य अस्तित्व में आता है। वस्तुतः ग्राम की तुलना में राज्य व्यक्ति व समुदाय की शान्ति – व्यवस्था, अर्थ, सुरक्षा एवं न्याय सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति अच्छे ढंग से पूरी करता है और उनके अधिकतम बौद्धिक व नैतिक विकास में भी मदद करता है। अरस्तू की नजर में व्यक्ति की वास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति ही आत्म–निर्भर जीवन है और यह मात्रा राज्य में ही सम्भव है। अतः अरस्तू राज्य की उत्पत्ति को मानव – स्वभाव का परिणाम मानता है। मनुष्य की अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सर्वप्रथम परिवार की उत्पत्ति होती है, फिर ग्राम की और अन्त में राज्य की।

प्रकृति एवं विशेषताएँ (Nature and Characteristics)

1. **राज्य प्राकृतिक है (State is Natural) :** अरस्तू ने सोफिस्ट विचारधारा का खण्डन करते हुए राज्य को एक स्वाभाविक या प्राकृतिक संस्था माना है। अरस्तू मनुष्य को सामाजिक – राजनीतिक प्राणी मानता है। राज्य व्यक्ति की दो मूलभूत आवश्यकताओं – यौन –संतुष्टि व आत्मरक्षण से जन्म लेता है। इन दो प्रवृतियों के कारण राज्य का जन्म होता है। मनुष्य यौन–संतुष्टि या प्रजनन की प्रवृत्ति के कारण स्त्री के सम्पर्क में आता

है तथा आत्मरक्षण या भौतिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए दास का सहारा लेता है। इससे स्त्री, पुरूष व दास से मिलकर समाज बन जाता है। इसे परिवार कहा जाता है। जब परिवार का आकार बड़ा हो जाता है तो ग्राम तथा ग्राम से राज्य का उदय होता है। अरस्तू राज्य को स्वाभाविक सिद्ध करने के लिए सोद्देश्यता का सिद्धान्त पेश करता है। उसका कहना है कि सभी वस्तुएँ अपने अन्तिम तथ्य को प्राप्त करने के लिए अग्रसर होती है। सेब का फल सेब के बीज का अन्तिम रूप है। इसी पूर्णता को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति से राज्य का जन्म होता है। इसलिए राज्य व्यक्ति का पूर्ण रूप है। किसी वस्तु का अन्त ही उसका लक्ष्य है। अरस्तू का यह भी तर्क है कि प्रकृति सदा सर्वोत्तम को पाना चाहती है। राज्य ही व्यक्ति का सर्वोत्तम लक्ष्य है। यह सर्वोत्तम लक्ष्य ही मनुष्य की शारीरिक, मानसिक व नैतिक पूर्णता को प्राप्त करता है। राज्य में ही व्यक्ति रूप अंगीकर होकर पूर्णता को प्राप्त करता है। अतः राज्य एक स्वाभाविक संस्था है और व्यक्ति उसकी एक ईकाई है।

2. **राज्य सर्वोच्च समुदाय है (State is the Supreme Association) :** अरस्तू राज्य को सर्वोच्च समुदाय मानता है। अरस्तू के अनुसार व्यक्ति के सभी उद्देश्य राज्य के ध्येय में निहित है। राज्य सबसे ऊपर है। राज्य विभिन्न प्रकार के समुदायों के ऊपर समुदाय हैं क्योंकि इसमें सामाजिक विकास का चरम रूप निहित है, जो व्यक्ति की बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता हे। राज्य इसलिए सर्वोच्च है कि उसका लक्ष्य की सर्वोच्च है और वह है अपने नागरिकों के जीवन को अच्छा बनाना। अन्य सामाजिक संस्थाएँ व्यक्ति को आंशिक आवश्यकताओं को पूरा करती है जबकि राज्य व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाता है। अरस्तू के अनुसार –"प्रत्येक सहयोग का ध्येय कोई न कोई भलाई करना है। राज्य अथवा राजनीतिक समुदाय जो सबसे ऊँचा है और जिसमें बाकि सब समाये हुए हैं, अन्य किसी भी सहयोग से बढ़कर भलाई अर्थात् सर्वोच्च भलाई को अपना ध्यये बनाए हुए है।" अरस्तू के अनुसार राज्य दो प्रकार से सर्वोच्च समुदाय होता है – (१) राज्य सामाजिक विकास की पराकष्ठा है। (२) मनुष्य राज्य में ही अपनी सर्वोच्च नैतिक पूर्णता का अनुभव करता है। राज्य व्यक्ति के अच्छे जीवन के लिए

विद्यमान है। उसका उद्देश्य व्यक्ति को सद्‌गुणी बनाना है। राज्य से बढ़कर कोइ अन्य समुदाय नहीं हो सकता क्योंकि यह परिवार, परिवार से ग्राम तथा ग्राम से विकसित व्यवस्था है। अतः राज्य का उद्देश्य परम शुभ और सम्पूर्ण विकास को प्राप्त करना है। इसलिए राज्य एक सर्वोच्च समुदाय है।

3. **राज्य व्यक्ति से पहले है (State is Prior to the Individual) :** यदि उपर्युक्त कथन तार्किक दृष्टि से देखा जाए तो ठीक है, अन्यथा नहीं। यह कथन उलझन पैदा करता है। साधारणतया सभी जानते हैं कि व्यक्ति से परिवार, परिवार से ग्राम, ग्राम से राज्य का जन्म हुआ है। इस आस्था में राज्य व्यक्ति से पहले कैसे हो सकता है। लेकिन अरस्तू का यह कथन तार्किक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सही है अरस्तू राज्य को एक समय मानता है। यदि समय को नष्ट कर दिया जाए तो इकाई का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। अरस्तू राज्य को एक जीवित प्राणी मानता है। इसके विभिन्न अंग होते है। जिनमें विभिन्न अंग होते है जिनमें से व्यक्ति भी प्रमुख है। अतः व्यक्ति राज्य की महत्त्वपूर्ण ईकाई है। यदि व्यक्ति रूपी अंग को राज्यरूपी समग्र से अलग कर दिया जाए तो वह राज्य की अनुपस्थिति में या तो पशु रहेगा या देवता। व्यक्ति अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति भी राज्य में ही करता है। राज्य ही व्यक्ति को पूर्णता के स्तर पर पहुँचता है। अरस्तू का मानना है कि किसी वस्तु का अन्त ही उसका सच्चा रूप है। इस दृष्टि से भी राज्य व्यक्ति से पहले आता है। फोस्टर का कहना है कि – "राज्य का स्थान प्रकृतिवश परिवार और व्यक्ति से पहले है। क्योंकि अवयवी (समग्र) अनिवार्यतः अवयव (अंग) से पहले आता है। राज्य प्रकृति की रचना है और वह व्यक्ति से पहले आया है – इसका प्रमाण है कि जब व्यक्ति को राज्य से पृथक कर दिया जाए तो वह आत्म–निर्भर नहीं रह जाता। अतः उसकी स्थिति अवयवी की तुलना जैसी होती है।" इस प्रकार फोस्टर ने अरस्तू के कथन की पुष्टि की है कि समय की दृष्टि से परिवार पहले है, परन्तु प्रकृति की दृष्टि से राज्य पहले है। इस प्रकार राज्य ने केवल व्यक्ति से पहले आता है, बल्कि अन्य सभी समुदायों से भी पहले आता है। यह व्यक्ति की अन्तिम

परिणति है। अपने अन्तिम रूप में यह व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास है। अपने चरम लक्ष्य के कारण यह व्यक्ति से पहले है। अतः राज्य व्यक्ति से पहले है।?

4. **राज्य प्रकृति से सावयवी है (State is Organic in Nature)** : अरस्तू राज्य को सावयवी जीवधारी मानता है। प्रत्येक सावयवी जीव का विकास स्वाभाविक रूप से होता है। उसके कार्य उसके सभी अंगों द्वारा किए जाते हैं। इस प्रकार सावयवी सिद्धान्त के अनुसार सम्पूर्ण (राज्य) के विभिन्न अंग (व्यक्ति) होते है।। प्रत्येक अंग का अलग – अलग कार्य होता है और प्रत्येक अंग अपने अस्तित्व एवं जीवन के लिए सावयवी पर निर्भर है। इस दृष्टि से राज्य एक सावयवी है जो विभिन्न व्यक्तियों, ग्रामों तथा परिवारों से मिलकर बना है। इस प्रकार विभिन्न व्यक्ति अंग के रूप में राज्य पर ही आश्रित है। यदि शरीर (राज्य) का कोई अंग अनुपात से घट जाता है तो समस्त शरीर (राज्य) निर्बल हो जाता है। जिस प्रकार शरीर के सभी अंगो का महत्त्व उनकी जैविक एकता से है, उसी प्रकार व्यक्ति का महत्त्व भी राज्य की संजीवनी शक्ति के कारण हे। राज्य के विभिन्न घटक अपने अस्तित्व के लिए राज्य पर ही निर्भर है। राज्य के अभाव में उनका विनाश उसी प्रकार सम्भव है जिस प्रकारा राज्य विभिन्न अंगों वाला जीव है। राज्य में निवास करने वाले व्यक्ति, परिवार, गाँव, संस्थाएँ राज्य रूपी जीवन के विभिन्न अंग है। तात्पर्य यह है कि अरस्तू के राज्य विषयक दर्शन में जो बात एक सावयवी जीवधारी के साथ लागू होती है, यह बात विभिन्न अंगो वाले राज्य के साथ भी लागू होती है।

5. **राज्य आत्म – निर्भर संस्था है (State is a Self-Sufficient) :** अरस्तू की नजर में राज्य की प्रमुख विशेषता उसका आत्मनिर्भरता का गुण हैं इससे हमारा तात्पर्य मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति से नहीं होना चाहिए। अरस्तू ने आत्मनिर्भरता शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया है। वह उन समस्त परिस्थितियों और वातावरण को शामिल करता है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास में योगदान देते हैं। राज्य में ही मनुष्य का शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक विकास होता है। राज्य में ही व्यक्ति सुखी एवं सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। मनुष्य का मनुष्यत्व अपने विशेष गुणों का विकास

करने में है और यह केवल राज्य के आत्म–निर्भरता के गुण में है। अरस्तू का कहना है – "राज्य की उत्पत्ति जीवन की आवश्यकता के कारण हुई, किन्तु उसकी सत्ता अच्छे जीवन की संप्राप्ति के लिए बनी हुई है।" इस प्रकार व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास राज्य में ही सम्भव है। राज्य परिवार व ग्राम स्तर से गुजरकर पूर्णता की प्राप्ति है। इस प्रकार राज्य सामाजिक विकास की पूर्णता है। राज्य में ही व्यक्ति के समस्त अभाव समाप्त होकर व्यक्ति के जीवन को सुखमय व सम्मानजनक बनाते हैं। मनुष्य की इन्द्रियपरक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ – साथ उसकी बौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति राज्य में ही सम्भव है। अतः राज्य एक आत्मनिर्भर संस्था है।

6. **विविधता में एकता (Unity in Diversity) :** अरस्तू ने प्लेटो के विपरित विभिन्नता में ही एकता का समर्थन किया है। प्लेटो के अनुसार राज्यों में अवयवी एकता होनी चाहिए अर्थात् जिस पकार पैर में काँटा चुभने पर उसकी अनुभूति सारे शरीर की होती है, उसी प्रकार एकता की अनुभूति सारे व्यक्तियों व राज्य में होनी चाहिए। परन्तु अरस्तू का मत प्लेटो के विपरीत है। अरस्तू का कहना है कि राज्य कुछ बातों का नियन्त्रण व नियमन करे तथा कुछ बातों के लिए वह उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करे। इस प्रकार अरस्तू ने विभिन्नता में एकता का समर्थन किया है। वह एकत्व को ही राज्य का आदर्श स्वरूप नहीं मानता। वह राज्य का स्वरूप बहुत्व में मानता है। उसके अनुसार राज्य विभिन्न प्रकार के तत्त्वों से मिलकर बना है। यदि उसकी भिन्नता का अन्त करके एकता स्थापित की जाएगी तो राज्य का प्राणान्त हो जाएगा। अरस्तू राज्य को एक समुदाय मानता है जिसकी रचना विभिन्न सदस्यों से हुई है। राज्य की सर्वोच्च समुदाय की धारणा तभी कायम रह सकती है, जब विभिन्नता में एकता का सिद्धान्त अपनाया जाए। यदि राज्य की पूर्ण एकता स्थापित करने का प्रयास किया जाएगा तो राज्य विभिन्नताओं का राज्य न होकर चरम सत्तावादी बन जाएगा। राज्य द्वारा विभिन्न व्यक्तियों की आवश्यकता की पूर्ति की दृष्टि से भी राज्य में विभिन्नता का होना आवश्यक है। इस प्रकार अरस्तू ने राज्य को सम्पूर्ण परिवार का रूप देने का प्रयास किया है। वह राज्य राज्यरूपी सावयव में विभिन्न अंगों के रूप में विभिन्न समुदायों के बीच एकता का

समर्थन करता है। उसका कहना है – "राज्य तो स्वभाव से ही बहु – आयामी होता है। एकता की ओर अधिकाधिक बढ़ना तो राज्य का विनाश करना होगा।"

7. **नगर–राज्य (City State) :** अरस्तू के लिए नगर–राज्य सर्वश्रेष्ठ राजनीतिक संगठन है। उसने राजा फिलिप द्वारा यूनान के नगर राज्यों का अन्त करके शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना करते हुए देखा था। उसे साम्राज्यवाद से घृणा थी। उसने अपने आदर्श राज्य के चित्रण में नगर – राज्य को ही सर्वश्रेष्ठ मानकर उसका समर्थन किया है। अरस्तू का यह नगर – राज्य समस्त विज्ञान, कला, गुणों और पूर्णता में एक साँझेदारी है। अतः अरस्तू का राज्य नगर – राज्य है।

8. **विवेक से उत्पत्ति (Product of Reason)** : अरस्तू के अनुसार व्यक्ति तर्कशील प्राणी है। वह अच्छे – बुरे में भेद करने में सक्षम है, इसलिए वह नैतिक प्राणी के रूप में जीवन व्यतित करने के लिए सामुदायिक जीवन जीता है। इससे क्रमिक विकास द्वारा राज्य का जन्म होता है। वह यूनानी जाति को विवेक का प्रतिबिम्ब मानकर उसे सर्वश्रेष्ठ जाति मानता है। वह अन्य जातियों को असभ्य मानकर उनसे घृणा करता है। उसका नगर –राज्य यूनानी लोगों की विवेकशीलता से उत्पन्न संस्था है। इस प्रकार अरस्तू राज्य की उत्पत्ति के सामाजिक समझौता सिद्धान्त व दैवीय सिद्धान्तों का खण्डन करते हुए राज्य की उत्पत्ति को मानवीय विवेक का परिणाम मानता है।

9. **क्रमिक विकास (Gradual Evolution)** : अरस्तू के अनुसार राज्य का क्रमिक विकास हुआ है जो मानवीय विवेक का प्रतिफल है। व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति न हो पाने की स्थिति में परिवार, परिवार से ग्राम की रचना हुई। मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होने पर व्यक्ति की अन्य आवश्यकताओं ने जन्म लिया और ग्राम से राज्य की उत्पत्ति हुई जिससे व्यक्ति की बौद्धिक विकास की ओर क्रमिक विकास का सफर है। राज्य का विकास सावयवी जीवधारी की तरह हुआ है। व्यक्ति, परिवार और ग्राम इस सावयवी जीवधारी का अंग है। यह सब एक – दुसरे से सम्बन्धित है। इन अंगों का पूर्ण क्रमिक विकास होने पर ही राज्य के दर्शन होते हैं।

राज्य के कार्य और लक्ष्य (Functions and Ends of State)

अरस्तू राज्य को एक सर्वोच्च समुदाय मानता है जिसमें व्यक्ति का हित निहित है। राज्य का लक्ष्य सर्वोच्च हित को पूरा कर सर्वोत्तम जीवन बिताना है। राज्य की उत्पत्ति जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होती है औश्र श्रेष्ठ जीवन से अरस्तू का तात्पर्य व्यक्ति के बौद्धिक और नैतिक विकास से है। अरस्तू के राज्य का लक्ष्य केवल भौतिक न होकर व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास करना भी है। उसका दृष्टिकोण व्यक्तिवादियों से भिन्न है। अरस्तू का राज्य के कार्यों व लक्ष्य सम्बन्धी दृष्टिकोण सकारात्मक व रचनात्मक है। अरस्तू के राज्य के कार्य व लक्ष्यों को निम्नप्रकार से समझा जा सकता है :–

1. **नागरिकों का कल्याण (Welfare of Citizens) :** अरस्तू के अनुसार राज्य व्यक्ति के कल्याण का साधन है। राज्य का लक्ष्य मनुष्य की शक्तियों के अधिकतम विकास हेतु उन्हें जीवन – संचालन की कुछ स्वतन्त्रता प्रदान करना होना चाहिए।
2. **सर्वोत्तम गुणों का विकास (Development of Best Qualities) :** अरस्तू का मानना है कि राज्य अपने नागरिकों में उत्तम गुण विकसित करता है। वह नागरिकों को सद्‌गुणी बनाता है। वह नागरिकों को चरित्रवान बनाता है।
3. **बौद्धिक और नैतिक आवश्यकताओं की संतुष्टि (Satisfaction of Intellectual and Moral Needs) :** अरस्तू के अनुसार व्यक्ति राज्य में ही रहकर अपने को पशु – स्तर से ऊपर उठाकर सही मनुष्यत्व को प्राप्त कर सकता है। राज्य ही व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं के साथ – साथ व्यक्ति की नैतिक और बौद्धिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति करता है।
4. **अवकाशपूर्ण जीवन (Comfortable Life) :** अरस्तू के अनुसार राज्य का उद्देश्य नागरिकों को 'अवकाश' प्राप्ति के अवसर प्रदान करना होना चाहिए। 'अवकाश' शब्द से अरस्तू का तात्पर्य निष्क्रियता या अकर्मण्यता से नहीं है। अरस्तू के दर्शन में अवकाश शब्द से ऐसे कार्यों का बोध होता है जिससे सद्‌गुणों का विकास होता है, जैसे शासन

करना, विज्ञान और दर्शन का ज्ञान प्राप्त करना, सार्वजनिक सेवा करना, सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना करना आदि।

5. **अच्छाई को प्रोत्साहन (Encourage Goodness) :** अरस्तू के अनुसार राज्य को अच्छाई को प्रोत्साहन देना चाहिए। नागरिकों का नेक बनाना राज्य का कार्य है और न्यायनिष्ठा की स्थापना उसका लक्ष्य। अरस्तू के अनुसार राज्य का अस्तित्व श्रेष्ठ जीवन के लिए है अर्थात् अच्छे जीवन के लिए राज्य विद्यमान है।

आलोचनाएँ (Criticism)

अरस्तू की राज्य की अवधारणा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपलब्धि होते हुए भी अनेक आलोचनाओं का शिकार हुई। उसकी आलोचना के निम्न आधार है :–

1. **राज्य की अवधारणा काल्पनिक व अव्यावहारिक है (Conception of State is Utopian) :** अरस्तू ने अपने दर्शन में जिस राज्य का चित्रण किया है, वह एक वास्तविक राज्य नहीं, बल्कि आदर्श राज्य है। यह आदर्श व्यावहारिक नहीं हो सकता। अतः अरस्तू की राज्य की अवधारणा काल्पनिक व अव्यावहारिक है।
2. **परिवार प्रथम सामाजिक संगठन नहीं है (Family is not the First Social Organization) :** अरस्तू ने परिवार को राज्य की उत्पत्ति में सबसे पहली इकाई माना है। किन्तु आलोचकों का कहना है कि समाज की सबसे पहले इकाई समूह थी और एक लम्बी सामाजिक प्रक्रिया से ही परिवार की स्थापना हुई।
3. **राजनीतिक तत्त्व की उपेक्षा (Neglect of Political Factor) :** अरस्तू ने राज्य की उत्पत्ति के बारे में समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण अपनाया है। वह राज्य को परिवार तथा ग्राम जैसी सामाजिक संस्थाओं से विकसित मानता है। उसने राज्य की उत्पत्ति में सहायक राजनीतिक चेतना की उपेक्षा की है।
4. **राज्य व्यक्ति से पहले नहीं (State is not Prior to Man) :** इस उक्ति के आधार पर व्यक्ति राज्य का साधन बन जाता है। इससे राज्य के महत्त्व और अधिकारों में अनावश्यक वृद्धि होती है। आलोचकों का मानना है कि जब राज्य का जन्म व्यक्ति

को अच्छा बनाने के लिए ही हुआ है तो राज्य को साध्य कैसे माना जा सकता है। इस प्रकार राज्य व्यक्ति के बाद अस्तित्व में आया है, पहले नहीं।

5. **आधुनिक दृष्टि से आलोचना (Criticism from Modern Point of View) :** अरस्तू नगर – राज्य को सर्वोत्तम संगठन मानता है। उसने राज्य को स्वयं में पूर्ण तथा आत्मनिर्भर संस्था बताया है वह राज्य की सर्वोच्चता की बात भी करता है। यह सब बातें आधुनिक युग में मान्य नहीं हो सकती। अरस्तू ने जिस नगर राज्य की अवधारणा को प्रस्तूत किया है, वह तत्कालीन यूनान की राजनीतिक – सामाजिक संस्कृति के ही अनुरूप हो सकती है। आधुनिक युग में अरस्तू की कोई भी धारणा जो जातिय द्वेष पैदा करने वाली हो, मान्य नहीं हो सकती। अरस्तू ने यूनानी जाति को सभ्य बताकर शेष विश्व की जातियों के प्रति बर्बरता का दृष्टिकोण आधुनिक दृष्टि से अमानवीय व अप्रजातान्त्रिक है।
6. **राज्य एक सावयव नहीं है (State is not an Organ)** : अरस्तू ने राज्य को एक सावयव तथा व्यक्ति को उसका अंग बताया है। किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। व्यक्ति की चेतना राज्य से अलग एवं स्वतन्त्र है। व्यक्ति को राज्यरूपी शरीर का अंग मानना बिलकुल अनुचित है।
7. **राज्य द्वारा नैतिकता का विकास अनुचित :** आलोचकों का मानना है कि यदि राज्य स्वंय प्रत्यक्ष रूप से नैतिकता की भावना का विकास करेगा, तो नैतिकता की भावना सामाप्त हो जाएगी। नैतिकता एक ऐसी वस्तु है जो बाहर से लादी नहीं जा सकती। यह तो मनुष्य की इच्छा व आत्मा का परिणाम है। यह एक आन्तरिक वस्तु है, बाह्य नहीं ।

यद्यपि अरस्तू की राज्य की अवधारणा की अनेक आलोचनाएँ हुई हैं, लेकिन यह निर्विवाद सत्य है कि अरस्तू ही एक ऐसा प्रथम चिन्तक है जिसने राजनीतिक – दर्शन में राज्य की उत्पत्ति के विकासवादी सिद्धान्त का बीजारोपण किया है। उसने राज्य को मानव – प्रकृति पर आवास्ति करके एक महान् और शाश्वत सत्य का रहस्योद्घाटन किया है। उसने एक ओर तत्कालीन यूनान में सोफिस्ट विचारधारा द्वारा राज्य के बारे में पैदा की गई भ्रान्तियों

का अन्त किया और दूसरी आरे राज्य की आदर्शवादी धारणा का भी खण्डन किया। यदि उसके चिन्तन में कोई दोष है तो उसका कारण उसके चिन्तन का यूनानी नैतिक मान्यताओं से प्रभावित होना है। फिर भी उसने अपने दर्शन को यथासम्भव वैज्ञानिक एवं यथार्थवादी बनाए राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में अमूल्य योगदान दिया है।

2.7 दासता का सिद्धान्त (Theory of Slavery)

अरस्तू के अनुसार दास – प्रथा नगर – राज्यों के सम्पूर्ण विकास के अति आवश्यक है। यूनानी जगत् में यह प्रथा होमर के समय से ही प्रचलित थी। ग्रीक सभ्यता के विकास में दासों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। दास को तत्कालीन यूनानी समाज का एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। दास की तत्कालीन यूनानी समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता था जो कुलीनवर्ग के लिए जी – तोड़ परिश्रम करता था। इस वर्ग में दरिद्र व्यक्ति या युद्ध बन्दी सैनिक शामिल होते थे। दासों की विशाल सेना को राष्ट्रीय सम्पत्ति माना जाता था। यूनान में यह प्रथा रोमन साम्राज्य की तरह अमानवीय नहीं थी, एक सामाजिक बुराई अवश्य थी। इस अमानवीय प्रथा के विरूद्ध सोफिस्ट विद्वानों ने सर्वप्रथम युनान में आवाज उठाई। सोफिस्टों ने कहा कि "मनुष्य स्वतन्त्र पैदा हुआ है।" (Man is born free)। सभी मानव समान होते हैं और इसलिए समाज से दास प्रथा का बहिष्कार किया जाना चाहिए। लेकिन अरस्तू जैसे विद्वानों ने सोफिसट विचाराकें का विरोध करते हुए इसे ग्रीक सभ्यता की उन्नती के लिए अति आवश्यक बताया। अरस्तू ने यह अनुभव किया कि दास – प्रथा के बिना नगर – राज्यों का सम्पूर्ण आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन ही नष्ट हो जाएगा, इसलिए उसने इसका बौद्धिक और व्यावहारिक स्तर पर औचित्य सिद्ध करने का प्रयास किया। उसने इसे स्वाभाविक, उपयोगी व समयानुकूल बताकर उचित ठहराया। यदि वह ऐसा नहीं करता तो यूनानी सभ्यता का आधार – स्तम्भ समाप्त हो जाता।

दास कौन है ? (Who is a Slave ?)

अरस्तू ने अपनी पुस्तक 'पोलिटिक्स' में दासता सम्बन्धी विचार प्रकट करते हुए दास को पारिवारिक सम्पत्ति का एक हिस्सा माना है। अरस्तू के अनुसार राज्य गृहस्थियों के संयोग से बनता है। अतः दास – प्रथा को समझने के लिए गृहस्थी के प्रबन्ध को समझना चाहिए। अरस्तू के अनुसार गृहस्थी की व्यवस्था के लिए दो उपकरण आवश्यक होते हैं – सजीव (Animate) (ii) निर्जीव (Inanimate)। घोड़ा – कुत्ता तथा अन्य पशु व दास सजीव उपकरण हैं तथा अचल सम्पत्ति निर्जीव उपकरण है। इस तरह परिवार की सम्पत्ति का अनिवार्य अंग होने के नाते दासता अनिवार्य है।

दास कौन है, इस सम्बन्ध में अरस्तू का कहना है कि – "जो व्यक्ति प्रकृति से अपना नहीं अपितु दूसरे का है, लेकिन फिर भी आदमी है, वह प्रकृति से दास है।" अरस्तू का मानना है कि – "दास अपनी प्रकृति से एक सम्पत्ति है और एक सम्पत्ति के रूप में होने के कारण दास का स्वयं पर अपना कोई अधिकार भी नहीं होता है। उनका तर्क है कि कोई भी सम्पत्ति स्वयं की स्वामी नहीं होती, अपितु प्रत्येक सम्पत्ति को सदैव ही किसी स्वामी की आवश्यकता होती है। वस्तुतः स्वामी के अभाव में सम्पत्ति से अलग अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। किन्तु इससे भिन्न स्थिति स्वामी की होती है। स्वामी की सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार होता है। वस्तुतः सम्पत्ति का अस्तित्व ही स्वामी के लिए होता है और एक सम्पत्ति के रूप में दास का अस्तित्व भी मात्र स्वामी के लिए होता है।" अरस्तू के अनुसार – "स्वामी अपने दास का स्वामी तो होता है, पर वह उसी का नहीं होता। इसके विपरित दास ने केवल अपने स्वामी का दास होता है बल्कि पूरा का पूरा उसी का होता है। यहीं से पता चलता है कि दास का स्वरूप क्या है। जो प्रकृति से ही अपना नहीं बल्कि किसी और का है, वह प्रकृति से दास है और जो मनुष्य होते हुए भी किसी और का है, वह भी सम्पत्ति है। अतः सम्पत्ति को कार्य सम्पादन का उपकरण कह सकते हैं जिसका अपने स्वामी से अलग अस्तित्व हो सकता है।"

अरस्तू ने दास को एक सजीव सम्पत्ति मानते हुए उसे पशुओं से श्रेष्ठ बताया है। दास स्वामी के विवेक व दर्शन की थोड़ी सी झलक पा लेने की समझदारी रखता है। इसलिए दास के साथ सौम्यता का प्रहार किया जाना चाहिए। अरस्तू लिखता है – "जो दूसरे का गुण है, जिसके पास विवेक नहीं परन्तु विवेक को समझने में हिस्सा लेता है, वह प्रकृतिवश दास है।" इस आधार पर वह पशुओं से अच्छा है कि पशु अपनी मूल प्रवृत्तियों के अनुसार कार्य करते हैं, जबकि दास विवेक को समझ सकता है और अपने स्वामी की इच्छानुसार कार्य करता है। इस प्रकार अरस्तू की दासता सम्बन्धी परिभाषा में तीन मुख्य बाते हैं :– (i) जो व्यक्ति अपनी प्रकृति से अपना नहीं, बल्कि किसी दूसरे का है, फिर भी मनुष्य है, दास है। (ii) वह मनुष्य होते भी सम्पत्ति की एक वस्तु है और दूसरे के अधीन रहता है, दास है। (iii) वह सम्पत्ति की वस्तु, जो कार्य का उपकरण है और जिसे सम्पत्ति के स्वामी से पृथक् किया जा सकता है, दास है।

दासता के पक्ष में अरस्तू के विचार (Aristotle's Defence of Slavery)

अरस्तू ने दास – प्रथा का समर्थन निम्न आधारों पर किया है :–

1. **दासता स्वाभाविक है (Slavery is Natural)** : अरस्तू ने सोफिस्टों का खण्डन करते हुए दासता को स्वाभाविक माना है। सोफिस्टों का मानना था कि सभी मनुष्य समान व स्वतन्त्र हैं। अरस्तू का कहा कि दास प्रकृति की देन है। कुछ व्यक्ति प्रकृति से ही दास होते हैं। अरस्तू का कहना है कि कुछ व्यक्ति शासन करने के लिए पैदा होते हैं, जबकि कुछ शासित होने के लिए। प्रकृति जिन व्यक्तियों को विवेक देती है वे शासक होते हैं और जिनको केवल शारीरिक शक्ति देती है और जिनमें दूसरों के विवेक को समझने का गुण होता है, वे शासित होते हैं। अरस्तू प्रकृति के नियम के अनुसर मानता है कि श्रेष्ठ सदा निकृष्ट पर शासन करता है। प्रथम श्रेणी के श्रेष्ठ व्यक्ति स्वामी होते हैं और निकृष्ट व्यक्ति दास होते हैं। यह प्रकृति का नियम है कि – "श्रेष्ठतर निम्नतर पर शासन करे।" स्वामी दासों से श्रेष्ठ होते हैं, इसलिए उनका दासों पर नियन्त्रण स्थापित होना चाहिए। मनुष्यों की बुद्धि, गुण, योग्यता व

मानसिक शक्तियों में अन्तर होता है। प्रकृति ने सभी को समान नहीं बनाया है। संसार में प्रत्येक व्यक्ति या वस्तु का अपना कार्य है क्योंकि प्रकृति ने प्रत्येक व्यक्ति या वस्तु को ऐसे गुण प्रदान किए हैं जो उस कार्य को पूरा कर सके। दास शारीरिक श्रम करने तथा अपने स्वामी की दासता करने के योग्य है। दासता प्रकृति के नियमों पर आधारित होने के कारण स्वाभाविक है।

2. **दासता स्वामी के लिए लाभदायक है (Slavery is Useful of the Master)** : अरस्तू का मानना है कि स्वामी का कार्यक्षेत्र नगर – राज्य की राजनीति है। नगर के राजकार्यों में भाग लेकर स्वामी अपना नैतिक उत्थान करता है। इस कार्य के लिए स्वामी को अवकाश चाहिए। यह अवकाश तभी सम्भव है, जब दास उसके लिए घर के कार्यों को करे। यहाँ अवकाश से अरस्तू का तात्पर्य अकर्मण्यता से न होकर एक विशेष प्रकार की क्रियाशीलता से है। अरस्तू के अनुसार अवकाश का अर्थ उन कार्यों से है जिनको सम्पादित कर मनुष्य अपने सद्‌गुणों का विकास कर सकता है। इस अवकाश का प्रयोग स्वामी नागरिक जीवन का भागीदार बनकर अपने बौद्धिक और नेतिक जीवन के विकास के लिए करता है। आर्थिक और भौतिक आवश्यकतओं की पूर्ति के लिए किए गए कार्य अवकाश में शामिल नहीं है। इसके अन्तूर्गत शासन करना, सार्वजनिक सेवउ करना, धार्मिक कार्यों में भाग लेना, नागरिकों के साथ सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करना आदि कार्य शामिल है। अरस्तू के अनुसार इन कार्यों के लिए व्यक्ति के पास फुर्सत का होना आवश्यक है। इन कार्यों को करने से ही व्यक्ति नागरिक बनता है। अरस्तू ने नागरिकता के लिए अवकाश को अनिवार्य माना है और आवश्यक के लिए दास को। अरस्तू का मानना है कि यदि दास नहीं होंगे तो स्वामियों को सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने के लिए अवकाश नहीं मिलेगा और वे श्रेष्ठ गुणों का विकास भी नहीं कर सकेंगे। अतः दासता स्वामी के लिए अति आवश्यक है।

3. **दासता दास के लिए लाभदायक है (Slavery is Useful for the Slave) :** दास – प्रथा स्वामियों की तरह दासों के स्वयं के लिए भी लाभकारी है। दासों में तृष्णा अधिक होने के कारण नैतिक गुणों का अभाव रहता है। इसके विपरीत स्वामी बौद्धिक स्तर पर श्रेष्ठ होते हैं। दास बुद्धि व कौशल से हीन होने के कारण स्वभावानुसार सद्‌गुण प्राप्त करने में सक्षम नहीं होते हैं। दास अपने स्वामी के साथ रहते हुए उन सभी गुणों को सीख सकता है जो प्रकृति ने उसे नहीं दिए हैं। जिस प्रकार घर में रहकर पशु भी अनुशासित रहना सीख जात है तो दास के लिए यह काम मुश्किल नहीं हैं क्योंकि दास में मालिक के विवेक की एक झलक पाने की योग्यता होती है। अरस्तू ने कहा है कि जिस प्रकार शरीर आत्मा के नियन्त्रण में रह कर, नारी पुरूष की नियन्त्रण में रहकर, पशु मनुष्य के नियन्त्रण में रहकर भलाई का गुण सीख लेता है, उसी प्रकार स्वामी की देख – रेख में ही दास का कल्याण सम्भव है। इस प्रकार दासता लाभकारी वह न्यायसंगत दोनों है।
4. **दासता समाज के लिए उपयोगी है (Slavery is Useful for the Society) :** दासता के कारण स्वामी को समाज कल्याण के कार्यों के लिए कुछ अवकाश प्राप्त हो जाता है। नाटकों और धार्मिक कार्यों में भाग लेना, सार्वजनिक सेवा कार्य करना, नागरिकों के साथ सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करना आदि कार्यों के लिए दास की आवश्यकता है। यदि स्वामी के पास समय नहीं होगा तो वह सामाजिक कार्यों में भाग नहीं ले सकेगा और उसका समाज उपयोगी कार्यों में योगदान का स्वप्न पूरा नहीं होगा। इस प्रकार दास–प्रथा से कुछ श्रेष्ठ व्यक्तियों को घरेलू धन्धों से मुक्ति मिल जाती है और वे निश्चिन्त होकर अपना सारा समय समाज हित के कार्यों में लगा सकते हैं। अतः दास–प्रथा समाज के लिए भी उपयोगी है।
5. **दासता नैतिक है (Slavery is Moral) :** अरस्तू ने अपने सिद्धान्त में दासता को नैतिक रूप दिया है। वह दासता को आत्मिक मानता है क्योंकि आत्मा शरीर के ऊपर प्रशासन कर इस आत्मिक उद्देश्य को पूरा करती है। शरीर का इस प्रकार आत्मिक विकास होती है। अरस्तू इसी प्रकार यह मानते हैं कि स्वामी के निर्देशन में रहकर

उसके कार्यों को रकते रहने से ही दासकी नैतिकता का विकास होता है। दूसरी ओर स्वामी को भी घरेलू कार्यों से निश्चिन्तता प्राप्त हो जाने पर वह भी अपनी आत्मिक उन्नति कर सकता है। इस प्रकार दासता नैतिक उन्नति का उपाय है।

6. **दास शरीर की बनावट से ही स्वतन्त्र लोगों से भिन्न होता है (Slave Differes from Freeman Even in his Bodily Constitution) :** अरस्तू के अनुसार दास को शरीर की बनावट से ही पहचाना जा सकता है। वह तो शारीरिक श्रम के लिए ही होता है। उसके शरीर और स्वतन्त्र व्यक्ति के शरीर में प्रायः वैसा ही अन्तर होता है जैसा देवता की मूर्ति और मनुष्य के शरीर में और जब शरीर में ही इतना अन्तर होता है तो आत्मा में भी अन्तर होता ही होगा। यद्यपि आत्मा का अन्तर स्पष्ट तौर पर दिखाई नहीं देता जितना शरीर का अन्तर दिखाई देता है। प्रकृति दास के शरीर को स्वामी के सेवा कार्यों के लिए बलवान बनाती है, जबकि स्वामी के शरीर को सरल व सीधा बनाती है। इस प्रकार असाधारण शरीर वाले को दास मान लेना न्यायपूर्ण ही है।
7. **दास अपने स्वामी का ही अंग है :** अरस्तू के विचारों में दास का शरीर अपने स्वामी से अलग अवश्य है, लेकिन फिर भी वह उसका अंग है। इसलिए दास की परवाह व रक्षा भी स्वामी को उसी प्रकार करनी चाहिए, जिस प्रकार वह अपने शरीर के अंगों की जो उसके शरीर के अभिन्न अंग हैं। दोनों के हितों में बहुत अधिक एकात और सामंजस्य है। इसलिए दोनों की स्थिति बिलकुल प्राकृतिक ओर आंगिक है। अरस्तू के अनुसार – "एक दास से सत्ता की स्थिति में मित्रता का सम्बन्ध तो नहीं हो सकता क्योंकि स्वामी और दास में मित्रता का कोई तुक नहीं है, पर दास भी मानव है यदि ऐसा मान लिया जाए तो उससे मित्रता सम्भव है।" अरस्तू के अनुसार दास स्वामी का एक ऐसा सजीव अंग है जो स्वामीरूपी शरीर से पृथक् रहता है, फिर भी दास का अस्तित्व स्वामी पर निर्भर है। अतः दास अपने स्वामी का ही अंग है।

दासता के प्रकार (Kinds of Slavery)

अरस्तू ने दासता के दो प्रकार बताएँ है :— (i) प्राकृतिक दासता (Natural Slavery) (ii) वैधानिक दासता (Legal Slavery) जो व्यक्ति जन्म से ही मन्दबुद्धि, अकुशल एवं अयोग्य होते हैं वे प्राकृति या स्वाभाविक दास होते हैं। ये व्यक्ति प्रकृति द्वारा ही शासित होने के लिए बनाए जाते हैं। प्रकृति की स्वाभाविक व्यवस्था दासता है। प्रकृति में सर्वत्र असमानता है; उत्कृष्ट स्वभावतः निकृष्ट पर शासन करता है, अपने स्वभाव के अनुकूल सबका अपना विशिष्ट कार्य होता है, अतः दासता प्राकृतिक होती है। इस प्रकार की दासता को अरस्तू सबसे अधिक महत्त्व देता है।

इसके अतिरिक्त युद्धबन्दी भी दास बनाए जा सकते हैं। यह दासता वैधानिक दासता कहलाती है। प्राचीन काल में युद्धबन्दियों को दास बनाने की कुप्रथा प्रचलित थी। इस दासता का आधार शक्ति होती है। यह युद्ध का प्रतिफलन है। युद्ध में हार जाने पर किसी भी व्यक्ति को दास बनाया जा सकता है। परन्तु अरस्तू के अनुसार यूनानियों को युद्ध में हार जाने पर भी दास भी नहीं बनाया जा सकता। अरस्तू का मानना है कि युद्ध में जीतने वाला शक्तिशाली तो हो सकता है, लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि वह न्यायी भी हो। युद्ध का कारण भी अन्यायपूर्ण हो सकता है। इसलिए यूनानी लोगों को बन्दी बनाकर दास नहीं बनाया जा सकता क्योंकि वे सर्वश्रेष्ठ जाति के लोग हैं। इस प्रकार अरस्तु ने यूनानियों के लिए कानूनी दासता को अनुचित व निकृष्ट माना है। यह बर्बर जातियों के लिए ही उचित एव ंन्यायसंगत है।

उपर्युक्त दासता के दोनों प्रकारों में अन्तर बताते हुए आर०के०मिश्रा ने कहा है — "स्वाभाविक दासता का आधार मानसिक और आध्यात्मिक गुण है, जबकि वैधानिक दासता का आधार श्रेष्ठ शक्ति या विजय है। प्राकृतिक दासता स्वाभाविक है, कानूनी दासता परम्परागत है। कानूनी दासता का आधार शक्ति है, प्राकृतिक दासता का आधार गुण है। कानूनी दासता युद्ध का प्रतिफल है, प्राकृतिक दासता मानव–स्वभाव का। प्राकृतिक दासता

आन्तरिक है, कानूनी दासत बाह्य है। इस प्रकार दोनों दासताओं में दिन – रात का अन्तर है।

दास – प्रथा में सुधार के लिए सूत्र

अरस्तू ने दास – प्रथा का समर्थन जरूर किया है, परन्तु वह दासों के प्रति किसी भी आमनवीय व्यवहार की निन्दा करता है। बार्कर के अनुसार – "अरस्तू ने अपनी वसीयत में लिखा था कि किसी भी दास को बेचा न जाए, उन्हें मुक्त कर दिया जाए।" उसने दासों के प्रति कुछ मानवीय व्यवहार के शत्रु बताएँ हैं ताकि उन्हें समाज की अविरल धारा से जोड़ा रखा जाए। अरस्तू ने दासों के प्रति किए जाने वाले मानवीय व्यवहार के लिए निम्नलिखित सूत्र बताता है :–

1. स्वामी का कर्त्तव्य है कि वह दास की भौतिक एवं शारीरिक सुविधाओं का ध्यान रखे।
2. अपनी मृत्यु के संयम स्वामी को अपने दासों को मुक्त कर देना चाहिए।
3. दासों को उनकी कार्यक्षमता के अनुसार कार्य देना चाहिए।
4. स्वामी को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि दासों की संख्या सीमित रहे।
5. दासों के प्रति अमानवीय व्यवहार करने वाले स्वामी को राज्य द्वारा दण्डित किया जाना चाहिए।
6. यूनानी नागरिकों को दास नहीं बनाना चाहिए।
7. दासता वंशानुगत नहीं होती। यदि दास का पुत्र बुद्धिमान व योग्य है तो उसे दासता से मुक्त कर देना चाहिए।
8. स्वामी को दास को अपने शरीर का अंग समझकर अच्छा व्यवहार करना चाहिए।
9. स्वामी को वचनबद्ध होना चाहिए कि यदि दास अच्छे कार्य करता है तो उसे मुक्त कर दिया जाएगा।

आलोचना (Criticism)

अरस्तू के दासता सम्बन्धी विचार अप्राकृतिक व अनुचित से लगते हैं। दास–प्रथा को आवश्यक मानना, वर्तमान मौलिक अधिकारों के प्रतिकूल लगता है। आलोचकों ने अरस्तू के सम्पूर्ण दर्शन में उसके दासता विषयक विचारों को ही त्यागने योग्य बताया है। आलोचकों के अनुसार अरस्तू के दासता सम्बन्धी विचार अविश्वसनीय, अप्राकृतिक, अमानवीय, संकीर्ण एवं क्रूर हैं। ये विचार न तो तर्कसंगत हैं, न वैज्ञानिक, न परोपकारी और नही कल्याणकारी। वह एक दार्शनिक की तरह विचारन करके एक यूनानी की तरह व्यवहार करता हे। उसने जातीय श्रेष्ठता में विश्वास व्यक्ति करते हुए किसी भी यूनानी को दास बनाने के विचार का विरोध किया है। उसके दासता विषयक विचारों की आलोचना के निम्न आधार हैं :–

1. **दास–प्रथा अप्राकृतिक है (Slavery is not Natural) :** दास–प्रथा किसी भी तरह प्राकृतिक नहीं है। मनुष्य में विभिन्नता तथा कुशाग्र बुद्धि के आधार पर अन्तर होते हुए भी एक प्राकृतिक समानता होती है जिसकी आलोचना करना मानव व्यक्तित्व का अपमान है। अरस्तू ने अपनी पुस्तक 'Politics' में दास–प्रथा का वर्णन किया है। इस वर्णन को देखकर मैक्सी कहता है – "इस पुस्तक को भी अवैध घोषित कर दिया जाना चाहिए।" अतः दास–प्रथा प्राकृतिक नहीं मानी जा सकती।
2. **विरोधाभास (Contradiction) :** अरस्तू के दासता सम्बन्धी विचार विरोधाभासों से भरपूर हैं। एक ओर तो अरस्तू दास को विकेकशून्य मानते हैं और दूसरी ओर कहते हैं कि दास सीमित रूप में स्वामी के विवेक को समझ सकता है, इसलिए वह पशुओं से श्रेष्ठ है। एक तरफ तो वह दासता को प्राकृतिक मानता है, तो दूसरी तरफ वह दासता से मुक्ति की बात कहता है। वह यह बताने में असफल रहता है कि जब प्रकृति ने मुनष्य को दास बना दिया है तो उसकी मुक्ति कैसे सम्भव है। अरस्तू का दास को एक साथ पशु और स्वामी के साथ मित्र और हिस्सेदार बनाना युक्तिसंगत नहीं है। श्रेष्ठता और निकृष्टता में साँझेदारी असम्भव है। अतः अरस्तू का सिद्धान्त अनेक विरोधाभासों से भरा हुआ है।

3. **समाज में संघर्ष और अशान्ति की सम्भावना :** आलोचकों का मानना है कि समाज का बुद्धिमानों और बुद्धिहीनों के आधार पर स्वामी और दास, शासक व शासित में विभाजन खतरनाक सिद्ध होगा। इससे समाज में असन्तोष, अशान्ति और अराजकता को बढ़ावा मिलेगा।
4. **अरस्तू का दासता का सिद्धान्त उसके सोद्देश्यता के सिद्धान्त का विरोधी है (Aristotle's Theory of Slavery is Against His Theory ofTeleology) :** अरस्तू का दासता का सिद्धान्त उसके सोद्देश्यता के सिद्धान्त से मेल नहीं खाता, इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक मनुष्य को जीवन का लक्ष्य श्रेष्ठ जीवन की प्राप्ति है। अच्छाई को प्राप्त करने की क्षमता मानव स्वभाव में छिपी हुई है। दासता की बेड़ियों में जकड़ा जाने पर व्यक्ति अपनी अन्तर्निहित क्षमता का विकास नहीं कर पाता, इसलिए दासता अप्राकृतिक है। प्रकृति और सोद्देश्यता एक दूसरे की सहयोगी है, विरोधी नहीं। अरस्तू ने लोगों को दास बनाकर यह सिद्ध कर दिया है कि लोगों के जीवन का लक्ष्य श्रेष्ठ जीवन की प्राप्ति न होकर, पशुतुल्य जीवन व्यतीत करना है। अतः अरस्तू अपने ही सोद्देश्यता के सिद्धान्त के विरूद्ध काम करता है। इसलिए उसका दासता का सिद्धान्त अतार्किक और असंगत है।
5. **अवैज्ञानिक (Unscientific) :** अरस्तू इस बात को मानता है कि कुछ व्यक्ति जन्म से ही मुर्ख व मूढ़ होते हैं, परन्तु इस वैज्ञानिक तथ्य को भूल जाता है कि अच्छे वातावरण, उचित दशाओं तथा उचित शिक्षा या अन्य साधनों को प्राप्त करने पर वे बुद्धिमानी हो जाते हैं। ऐसा कोई भी सिद्धान्त जो मनुष्य को पशुतुल्य मानता हो, वैज्ञानिक कभी नहीं हो सकता।
6. **यह नैतिकता के सभी सिद्धान्तों के विरूद्ध है (Against Total Moral Values) :** एक मनुष्य के द्वारा दूसरे मनुष्य को दास बनाया जाना एक जघन्य व घृणास्पद विचार है। अरस्तू ने इस विचार का प्रतिपादन करके घोर अनैतिकता का पक्ष लिया है। समाज में ऐसा कोई भी कार्य जो सामाजिक मानदण्डों के विरूद्ध हो, नैतिक नहीं हो सकता। यह मानवता की दृष्टि से घोर अपराध है जो नैतिकता की बलि दे देता है।

7. **समुचित अवकाश सभी को मिलना चाहिए (Everyone Needs Liesure) :** अरस्तू ने दास – प्रथा के समर्थन में यह भी तर्क प्रस्तुत किया है कि श्रेष्ठ व्यक्तियों को अपने सार्वजनिक जीवन के लिए अवकाश की आवश्यकता होती है। परन्तु ऐसा अवकाश सभी वर्गों को प्राप्त होना चाहिए ताकि सभी वर्गों में व्यक्ति अपना बौद्धिक विकास करने, राजनीतिक वह सामाजिक क्रियाकलापों में भाग लेने तथा कला व साहित्य का आनन्द उठाने का अवसर प्राप्त कर सकें। केवल किसी वर्ग विशेष को यह अधिकार देना सामाजिक विषमता को जन्म देता है।
8. **अनुचित एवं अन्यायपूर्ण (Unjust) :** मानव – जाति को शासक और शासित में बाँटना अनुचित है। प्रो० रास ने कहा है – "मानव जाति को कुल्हाड़े के साथ दो भागों में काट डालना अनुचित है। इससे भी अधिक अनुचित यह है कि अरस्तू दास को 'पशु' और 'कार्य' को उपकरण मानता है।" अरस्तू के विचार का पक्ष यह है कि वह मानव को पशु का दर्जा दे देता है। यह अनुचित ही नहीं, अन्यायपूर्ण भी है। दास को स्वामी की इच्छापूर्ति का साधन मानना घोर अन्याय है।
9. **दास पारिवारिक सम्पत्ति नहीं (Slave is not a Family Property) :** दास को सजीव सम्पत्ति मानना मानवीय दृष्टि से अनुचित है। दास की पशु से तुलना करना और मानवीय अपनाध है। अतः दास परिवार की सम्पत्ति नहीं हो सकता।
10. **शारीरिक श्रम की उपेक्षा (Neglects Physical Works) :** अरस्तू ने दासता के विवेचन में शरीर के काम करने वाले सभी श्रमिकों को दास की संज्ञा दी है। परन्तु यह दृष्टिकोण असन्तोषजनक है। शरीर से काम करने वाले यूनानी नागरिकों में भी होंगे जब अरस्तू यूनानी नागरिकों को दास नहीं बनाना चाहता। अरस्तू द्वारा शारीरिक कार्य करने वाले सभी लोगों को दास बनाना शारीरिक श्रम की उपेक्षा करता है, जो अनुचित है। मैकलवेन ने ठीक ही कहा है – "अरस्तू श्रम करने वाले को दण्डित करता है।"

11. **मानव – समूह का विभाजन सम्भव नहीं (The Separation of Human Groups is not Possible) :** मानव जाति को कुल्हाड़ी से दो भागों – स्वामी और दास में बाँटना न तो सराहनीय है, न ही वांछनीय । यदि श्रेष्ठता व निकृष्टता के आधार पर स्वामी और दास का निर्णय किया जाए तो मानव जाति विभिन्न श्रेणियों में बँट जाएगी। प्रत्येक मनुष्य का एक दास होगा और दूसरे का स्वामी। इस प्रकार की स्थिति भयंकर होगी। अतः मानव–समूह का विभाजन तर्कहीन है।

12. **प्रजातन्त्रीय श्रेष्ठता के सिद्धान्त पर आधारित (Based on the Principle of Social Supremacy) :** अरस्तू ने स्पष्ट कहा है कि यूनानियों को दास नहीं बनाया जा सकता। इसमें जातीय श्रेष्ठता की गन्ध आती है। थियोडोर गोम्पर्ज का कहना है – "दासता के बचाव के नाम पर यहाँ जातिगत अहंकार की पुष्टि की गई है।" जिसके नाम पर जर्मनी में हिटलर ने तथा इटली में मुसोलिनी ने अपने राजनीतिक विरोधियों पर अमानवीय अत्याचार किये थे। अरस्तू का यह मानना कि बर्बर लोग ही दास बनाए जा सकते हैं, पक्षपात है। यह उसके जातीय अहंकार और संकीर्ण राष्ट्रवाद का परिचायक है।

13. **यह सामाजिक एकता के लिए घातक है (It is Harmful for Social Unity) :** जिस समाज में दास – प्रथा होगी, उसमें आंगिक एकता कभी नहीं होगी जोकि एक आदर्श सामाजिक जीवन का आधार है। इसके बार में राष्ट्रपति इब्राहिम लिंकन का कथन है – "जिस प्रकार अपने ही विरूद्ध विभक्त एक घर जीवित नहीं रह सकता, उसी प्रकार वह राष्ट्र भी जीवित नहीं रह सकता जो आधा स्वतन्त्र हो ओर आधा गुलाम।" अतः दास–प्रथा सामाजिक एकता के मार्ग में एक भयंकर बाधा है।

14. **अलोकतान्त्रिक सिद्धान्त (Undemocratic Theory) :** अरस्तू का दासता का सिद्धान्त आधुनिक लोकतन्त्र को दो आधारों – समानता और स्वतन्त्रता के विपरीत है। जिस समाज में श्रम का महत्त्व नहीं, उस समाज में न्याय की आशा नहीं की जा सकती। एक तरफ तो अरस्तू ने स्वामी को अधिकारों से पूर्ण कर दिया है और दूसरी तरफ

दासों के सभी अधिकार छीन लिए हैं। अरस्तू का दासता का सिद्धान्त आधुनिक लोकतन्त्र के सभी सिद्धान्तों के विपरीत है।

15. **अमनोवैज्ञानिक सिद्धान्त (Unpsychological Theory) :** अरस्तू ने दास के व्यक्तित्व को स्वामी के व्यक्तित्व में लीन कर दिया है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी कुछ अनुभूतियाँ व इच्छाएँ होती हैं। दास की भावनाओं की अनदेखी करना गलत है। अतः यह सिद्धान्त अमनोवैज्ञानिक है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि अरस्तू का दसता का विचार न तो तर्कसंगत है, न व्यावहारिक और न कल्याणकारी। आज के प्रजातन्त्र के युग में दास–प्रथा को किसी भी स्थिति में स्वीकार नहीं किया जा सकता। यद्यपि अरस्तू न दासता का उदारवादी पक्ष का समर्थन किया है लेकिन उसके दासता के सिद्धान्त को किसी भी दृष्टि से संगतपूर्ण व वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता। परन्तु फिर भी यह निर्विवाद सत्य स्वीकारना ही पड़ेगा कि अरस्तू एक सच्चे यूनानी थे जिन्होनें नगर–राज्य को मजबूत बनाने की दृष्टि से दास–प्रथा को उचित बताया। दास–प्रथा नगर– राज्यों की आवश्यकता थी। अतः अरस्तू ने भी युग के वातावरण से प्रभावित होकर इस प्रथा का पक्ष लिया ताकि यूनानी समाज में स्थायित्व का गुण पैदा हो और जातीय श्रेष्ठता कायम रह सके। अरस्तू का दास–प्रथा का सिद्धान्त तत्कालीन यूनानी दर्शन के इतिहास में अमूल्य देन है।

2.8 नागरिकता का सिद्धान्त (Theory of Citizenship)

अरस्तू के नागरिकता सम्बन्धी विचार उसके ग्रन्थ 'पॉलिटिक्स' की तीसरी पुस्तक में वर्णित हैं। उसके अनुसार राज्य (Polis) नागरिकों (Polita) का एक समुदाय (Kainonia) है। वह कहता है कि राज्य स्वतन्त्र मनुष्यों का एक समुदाय है। अतएव राज्य को समझने क लिए नागरिकता की व्याख्या करना आवश्यक हो जाता है। इसकी व्याख्या से प्रश्न उठता है कि नागरिक कौन है तथा नागरिकता किसी कहते हैं? अपने इन प्रश्नों का उत्तर अरस्तू ने विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग करके दिया है। अरस्तू ने नागरिकता की परिभाषा

नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाकर दी है। वह स्पष्ट करता है कि नागरिक कौन नहीं है ? इस बारे में उसने कुछ तर्क दिए हैं।

नागरिक कौन नहीं है ? (Who is not a Citizen)

अरस्तू ने निम्नलिखित व्यक्तियों को नागरिक नहीं माना है : –

1. राज्य में निवास करने मात्र से ही नागरिकता नहीं मिलती। स्त्री, दास और विदेशी नागरिक नहीं हैं।
2. अल्पायु के कारण बच्चे तथा नागरिकता के कर्त्तव्य से मुक्त वृद्ध नागरिक नहीं हो सकते।
3. राज्य से निष्कासित व्यक्ति तथा मताधिकार से वंचित व्यक्ति भी नागरिक नहीं हो सकते।
4. अभियोग चलाने और अभियुक्त बनाने का अधिकार रखने वाला कोई भी व्यक्ति नागरिक नहीं होता क्योंकि संधि द्वारा यह अधिकार तो विदेशी भी प्राप्त कर सकता है।

2. **नागरिकता की प्रकृति संविधान की प्रकृति पर निर्भर है (Nature of Citizenship Depends of the Nature of Constitution)** : अरस्तू की नागरिकता की परिभाषा लोकतन्त्र के लिए तो सही हो सकता है, अन्य राज्यों के लिए नहीं। राजतन्त्र, निरंकुशतन्त्र, कुलीनतन्त्र, अल्पतन्त्र आदि व्यवस्थाओं के सन्दर्भ में अरस्तू द्वारा नागरिकता को दी गई परिभाषा मान्य नहीं हो सकती। प्रत्येक संविधान आवश्यकतानुसार ही नागरिकता को परिभाषित करता है।

3. **नगरिकता के लिए योग्यताएँ (Qualifications for Citizenship)** : अरस्तू के अनुसार – (i) नागरिकता के लिए शासन करने की योग्यता के साथ ही शासन करने का गुण भी होना चाहिए। (ii) जिन व्यक्तियों की राज्य के कार्यों में रूचि हो, उन्हें ही नागरिक बनाया जाना चाहिए। (iii) नागरिकता के लिए व्यक्ति के पास निजी सम्पत्ति व अवकाश का होना अनिवार्य है। (iv) नागरिक बनने के लिए व्यक्ति में बौद्धिक और

नैतिक योग्यताएँ भी होनी चाहिए। उपर्युक्त योग्यताएँ प्राप्त व्यक्ति ही नागरिक बन सकता है।

4. **नागरिकता के लिए अयोग्यताएँ (Disqualifications for Citizenship)** : अरस्तू के अनुसार दास, विदेश में जन्मे व्यक्ति, श्रमिक, कारीगर, शिल्पी, विदेशी, नागरिक कार्यों की अयोग्यता प्राप्त व्यक्ति, राज्य से निष्कासित, मताधिकार से वंचित, वृद्धों, स्त्रियों, बच्चों को नागरिकता प्रदान नहीं की जा सकती, क्योंकि वे या तो बौद्धिक शक्ति से हीन होते हैं या उनके पास अवकाश नहीं होता।

5. **अवकाश का महत्त्व :** अरस्तू के अनुसार उन्हीं व्यक्तियों को नागरिकता प्राप्त हो सकती है जिनके पास अवकाश होता है। अरस्तू अवकाश का अर्थ छुट्टी या आराम से न लेकर एक प्रकार की सक्रियता से लेता है। अरस्तू के अनुसार शासन करना, सार्वजनिक क्रियाओं में भाग लेना, समाज सेवा के कार्य करना, विज्ञान और दर्शन का ज्ञान प्राप्त करना आदि कार्य अवकाश के अन्तर्गत आते हैं। जो व्यक्ति इन कार्यों में भाग लेता है, वह नागरिक बन सकता है, अन्यथा नहीं। इस प्रकार अरस्तू अवकाश प्राप्त व्यक्तियों को ही नागरिकता प्रदान करता है।

प्लेटो तथा अरस्तू के नागरिकता सम्बन्धी विचारों में अन्तर

(Differnce between the Views of Plato and Aristotle on Citizenship)

प्लेटो के विचारों में अन्तर निम्नलिखित है :–

1. अरस्तू नागरिकता के लिए शासन में सक्रिय सहभागिता को अनिवार्य मानता है, जबकि प्लेटो के लिए ऐसा अनिवार्य नहीं है।
2. प्लेटो ने नागरिकता की न तो सुव्यवस्थित परिभाष दी और न ही योग्यताएँ निर्धारित की। अरस्तू इस बारे विस्तृत रूप में लिखता है।
3. प्लेटो के राज्य में दासों और नागरिकों में कोई अन्तर नहीं है, परन्तु अरस्तू दासों व श्रमिकों को नागरिकता से वंचित करता है।

4. प्लेटो इस प्रश्न पर चुप है कि स्त्रियों का नागरिकता देनी चाहिए या नहीं, अरस्तू स्त्रियों को नागरिकता से वंचित करता है।

उपर्युक्त अन्तरों के बाद भी प्लेटो और अरस्तू नागरिकता के बारे में एक ही स्थान पर आकर विश्राम करते हैं। दोनों ने नागरिकता को उच्च वर्गों तक ही सीमित कर दिया है। दोनों सीमित नागरिकता के पक्षधर है।

नागरिकता सम्बन्धी आधुनिक एवं अरस्तू का दृष्टिकोण

(Views of Aristotle on Citizenship Campared with Modren Approach to Citizenship)

आधुनिक युग की सरकारों को नागरिकता के बारे में बहुत ही उदारवादी दृष्टिकोण अपनाकर चलना पड़ता है। यदि अरस्तू की तरह विधानपालिका और न्यायपालिका में व्यक्ति की सहभागिता को नागरिकता का आधार बनाया जाए तो अधिकांश जनता नागरिकता से वंचित रह जाएगी। आज नागरिकता का निर्धारण करने का मूल आधार व्यक्ति का वह अधिकार है जिसके होने पर व्यक्ति अपने प्रतिनिधियों के चुनाव कार्य में भाग ले सकता है, स्वयं प्रतिनिधि बन सकता है तथा राजकीय सेवा का अवसर प्राप्त कर सकता है। आज नागरिकता अभिजात वर्ग तक ही सीमित न होकर समाज के प्रत्येक वर्ग तक फैली हुई है। अरस्तू की तरह नागरिकता को सीमित करना प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों के विरूद्ध जाता है। इसलिए अरस्तू के नगर राज्य में खोई गई नागरिकता आधुनिक राज्यों में आसानी से प्राप्त हो गई है। इस प्रकार अरस्तू की नागरिकता सीमित है, जबकि आधुनिक युग में नागरिकता सार्वभौमिक है।

आलोचना (Criticisms)

अरस्तू के नागरिकता सम्बन्धी विचारों की निम्न आधारों पर आलोचना की गई है :

1. **आधुनिक प्रजातन्त्र पर लागू नहीं (Not fit for Modern Democracy)** : अरस्तू द्वारा दी गई परिभाषा आधुनिक प्रजातन्त्र पर सही नहीं बैठती। आधुनिक युग लोकतन्त्र का

युग है। आधुनिक लोकतन्त्र में सभी नागरिक न तो विधि – निर्माण में भाग ले सकते है, न ही न्याय के प्रशासन में।

2. **सैद्धान्तिक अन्तर्विरोध (Theoretical Contradiction)** : अरस्तू के अनुसार राज्य का उद्देश्य सार्वजनिक हित में वृद्धि करना है। इससे यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राज्य की जनसंख्या के सभी वर्गों को शासन क्रियाओं में भाग लेने का अवसर मिलना चाहिए अर्थात् सभी को नागरिकता का अधिकार मिलना चाहिए। परन्तु अरस्तू ने सीमित नागरिकता की व्यवस्था करके जनसंख्या के एक बड़े भाग को सार्वजनिक हित की वृद्धि करने करने से रोक दिया है।

3. **कठोर सिद्धान्त (Rigid Theory)** : अरस्तू की नागरिकता सम्बन्धी अवधारणा अपनी प्रकृति से एक कठोर सिद्धान्त है। उसने इस प्रकार की कोई व्यवस्था स्वीकार नहीं की है कि यदि कोई अनागरिक उचित व आवश्यक योग्यताएँ प्राप्त कर ले तो उसे नागरिक बना दिया जाएगा। राज्य में ऐसे श्रमिक, जो बाद में आवश्यक योग्यता (शिक्षा व सम्पत्ति) प्राप्त कर लें , वे भी नागरिक बनने का दावा नहीं कर सकते।

4. **संकुचित परिभाषा (Narrow Definition)** : अरस्तू की नागरिकता की परिभाषा अत्यन्त संकीर्ण है। यदि शासन क्रियाओं में भाग लेने मात्र से ही नागरिकता मिले तो राजतन्त्र और कुलीनतन्त्र में यह संख्या बहुत कम होगी।

5. **श्रमिकों को राजनीतिक अधिकारों से वंचित करना (Labourers are dprived of Political Rights)** : अरस्तू ने श्रमिकों और दासों को नागरिकता से वंचित रखा है। एक ओर तो वह नागरिकता की समानता की बात करता है, दूसरी तरफ श्रमिक वर्ग को इस अधिकार से वंचित करता है।

6. **धन व सत्ता का प्रयोग (Combination of Wealth and Power)** : अरस्तू के अनुसार निजी सम्पत्ति धारक ही नागरिक बनने के योग्य हैं। वह धनी वर्ग के हाथों में सत्ता सौंपता है। जब धन व सत्ता का गठबन्धन हो जाएगा तो सार्वजनिक हित की वृद्धि के नाम पर वर्गीय हितों की रक्षा ही होगी। इससे विशाल गरीब तबका नागरिकता के अधिकार से वंचित रह जाता है। अतः ऐसे राज्य का पतन निश्चित है।

7. **राज्य की एकता व स्थिरता को भय (Danger to the Unity and Stability of State)** : अरस्तू राज्य को नागरिक व अनागरिक दो वर्गों में बाँट देता है। एक धनी – वर्ग है तो दूसरा निर्धन व असन्तुष्ट वर्ग है। दोनों के हित परस्पर विरोधी होते हैं। इससे दोनों वर्गों में ईर्ष्या व द्वेष की भावना बढ़ता है जो राज्य की एकता व स्थिरता के लिए घातक है।

8. **अस्पष्ट विवरण (Vague)** : अरस्तू ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि राज्य के उपनिवेश में बसने वाले व्यक्तियों को उस नगर – राज्य का नागरिक बनने का अधिकार प्राप्त होगा या नहीं। व्यावहारिक दृष्टि से यह सिद्धान्त दोषपूर्ण है।

9. **सीमित नागरिकता (Limited Citizenship)** : अरस्तू ने अपनी नागरिकता की अवधारणा में बच्चे, बूढ़े, स्त्रियों, श्रमिक, विदेशी, मताधिकार से वंचित आदि को शामिल करके केवल शासन क्रियाओं में भाग लेने वाले अवकाश प्राप्त उच्च–वर्ग के लोगों का ही शामिल किया है। अतः यह व्यवस्था कुलीनतन्त्र की पोषक है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि अरस्तू का नागरिकता का सिद्धान्त अधिक संकीर्ण, रूढ़िवादी, अभिजाततन्त्रीय, अप्रजातांत्रिक, अमानवीय और कुछ हद तक घृणित भी है। आज के प्रजातन्त्र के युग में सीमित नागरिकता की धारणा कभी भी स्वीकार्य नहीं हो सकती। फॉस्टर ने कहा है कि – "नागरिकता के सम्बन्ध में अरस्तू की बजाय प्लेटो अधिक प्रगतिशील है।" अरस्तू ने बहुसंख्यक वर्ग को अल्पसंख्यक वर्ग (धनी वर्ग) का साधन मात्र बना दिया है। अरस्तू ने ऐसा करके अमानवीय दृष्टिकोण का ही परिचय दिया है। फिर भी, अरस्तू ने नागरिकता के गुणात्मक पक्ष पर जोर देकर एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

2.9 क्रान्ति का सिद्धान्त (Theory of Revolution)

अरस्तू के समय में ही यूनान में क्रान्तियों द्वारा राजनीतिक सत्ता में परिवर्तन होने लगे थे। इससे यूनान में राजनीतिक अराजकता व अस्थिरता का वातावरण पैदा हो गया था। अरस्तू के लिए राजनीतिक स्थिरता के उपाय व अस्थिरता के कारण खोजना आवश्यक हो गया था। अरस्तू ने इन राजनीतिक परिवर्तनों को क्रान्तिया विद्रोह का नाम दिया है। अरस्तू ने

अपनी पुस्तक 'पॉलिटिक्स' के पाँचवे भाग में क्रान्ति के कारणों व उन्हें रोकने के साधनों की चर्चा की है। अरस्तू ने 158 देशाों के संविधानों का अध्ययन करके क्रान्ति के कारण व उपायों का वर्णन किया है। अतः अरस्तूत का क्रान्ति की समस्या का अध्ययन काल्पनिक न होकर व्यावहारिक है। अरस्तू ने अल्पतन्त्रवादियों, प्रजातन्त्रवादियों, कुलिनतन्त्रवादियों, राजतन्त्रों व निरंकुश शासकों को क्रान्ति रोकने के उपदेश दिए हैं। सेबाइन ने लिखा है – "क्रान्तियों से सम्बन्धित 'पॉलिटिक्स'के ये पृष्ठ अरस्तू की राजनीतिक अन्तर्दृष्टि तथा यूनानी शासन–प्रणालियों के बारे में उसके अधिकारपूर्ण ज्ञान को प्रकट करते है।" इसी प्रकार अरस्तू के अध्ययन की श्रेष्ठता स्वीकार करते हुए गैटेल कहता है – "पॉलिटिक्स राजनीतिक दर्शन का क्रमबद्ध अध्ययन नहीं है, अपितु शासन की कला पर लिख गया ग्रन्थ है। इसमे अरस्तू ने यूनानी नगर राज्यों में प्रचलित बुराइयों तथा उनकी राजनीतिक प्रणालियों के दोषों का विश्लेषण किया है, और ऐसे व्यावहारिक सुझाव दिए हैं जिनके द्वारा भविष्य में आने वाले भयोत्पादक संकटों से सर्वोत्तम ढंग से बचा जा सकता है।"

अरस्तू के अनुसार क्रान्ति का अर्थ (Aristotle's Meaning of Revolution)

अरस्तू का क्रान्ति से अभिप्राय आधुनिक अर्थ से अलग है। आधुनिक युग में क्रान्ति से तात्पर्य उन सभी सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिवर्तनों से है जिनसे समाज की काया पलट जाती है और समाज को विकास की नई दिशा मिलती है। फ्रांसीसी क्रान्ति, रूसी क्रान्ति, चीन की क्रान्ति विश्व प्रसिद्ध क्रान्तियाँ है। इन्होनें वहाँ की शासन – व्यवस्था को पूरी तरह बदल दिया था।

अरस्तू के अनुसार जनता द्वारा राज्य के किसी भाग या सम्पूर्ण भाग में विद्रोह का नाम क्रान्ति नहीं है। अरस्तू के अनुसार – "क्रान्ति का अर्थ संविधान में छोटा या बड़ा परिवर्तन है।" अरस्तू क्रान्ति का दोहरा अर्थ स्वीकार करता है। अरस्तू सर्वप्रथम छोटे – मोटे हर परिवर्तन को क्रान्ति का नाम देते हैं। जैसे राजतन्त्र से कुलीनतन्त्र, लोकतन्त्र कम लोकतन्त्र, लोकतन्त्र द्वारा अल्पतन्त्र को हटा देना, अल्पतन्त्र द्वारा लोकतन्त्र को हटा देना, ये सभी घटनाएँ चाहे बड़ी हों या छोटी क्रान्ति के अन्तर्गत आती हैं। ये घटनाएँ संविधान के बदलने पर आधारित होती है। किन्तु कई बार शासन बदल गया है, लेकिन संविधान में

कोई परिवर्तन नहीं होता। इसे अरस्तू क्रान्ति के दूसरे अर्थ में प्रयुक्त करता है। अरस्तू कहता है कि यदि संविधान को बदले बिना शासन दूसरे के हाथ में चला जाए तो समझो क्रान्ति हो गई हैं उदाहरण के लिए एक निरंकुश शासक के स्थान पर दूसरे निरंकुश शासक का आ जाना क्रान्ति है। इस प्रकार अरस्तू हर छोटे बड़े परिवर्तन को क्रान्ति मानते हैं।

क्रान्ति के प्रकार (Kinds of Revolution)

अरस्तू ने क्रान्ति के निम्नलिखित प्रकार बताए हैं :

1. **पूर्ण और आंशिक क्रान्ति (Complete and Partial Revolution)** : जब क्रान्ति द्वारा संविधान को सम्पूर्ण रूप में बदल दिया जाए तथा राज्य के सम्पूर्ण सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक ढाँचे में परिवर्तन आ जाए तो ऐसी क्रान्ति पूर्ण क्रान्ति होती है। यदि यह परिवर्तन संविधान के एक भाग हो तो उसे आंशिक क्रान्ति कहा जाता है। अरस्तू ने 'पालिटिक्स' के पाँचवे अध्याय में लिखा है कि – "पूर्ण क्रान्ति वह है जब उससे शासन – व्यवस्था में पूर्ण परिवर्तन होता हो, जैसे निरंकुशतन्त्र, जनतन्त्र में बदल जाए। आंशिक क्रान्ति तब होती है, जब शासन के किसी विभाग में उग्र परिवर्तन हो जाए।"
2. **व्यक्तिगत और अव्यक्तिगत क्रान्ति (Personal and Impersonal Revolution)** : अरस्तू के अनुसार जब संविधान में परिवर्तन किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति को पदच्युत करने से होता है तो उसे वैयक्तिक क्रान्ति कहा जाता है। जब संविधान में परिवर्तन का उद्देश्य गैर – व्यक्तिगत होता है तो उसे व्यक्तिगत क्रान्ति की संज्ञा दी जाती है।
3. **रक्तपूर्ण और रक्तहीन क्रान्ति (Bloody and Bloodless Revolution)** : अरस्तू के अनुसार राज्य में शासन या संविधान में विद्रोह, खून – खराबा या रक्तपात द्वारा परिवर्तन लाया जाए तो उसे रक्तपूर्ण या हिंसक क्रान्ति कहा जाता है। जब संविधान में परिवर्तन संवैधानिक व शान्तिपूर्वक तरीके से किया जाए तो उसे रक्तहीन या अहिंसक क्रान्ति कहा जाता है।

4. **जनतन्त्रीय और धनतन्त्रीय क्रान्ति (Democratice and Oligarchic Revolution)** : जब राज्य के निर्धन व्यक्ति राजा या धनी व्यक्तियों के विरूद्ध विद्रोह करके राज्य में जनतन्त्र की स्थापना करते हैं तो उसे जनतन्त्रीय क्रान्ति कहा जाता है। जब राज्य के धनी व्यक्ति जनतन्त्रीय शासन के विरूद्ध विद्रोह करके अपने शासन की स्थापन करते हैं तो उसे धनतन्त्रीय क्रान्ति कहा जाता है।
5. **किसी वर्ग विशेष के विरूद्ध क्रान्ति (Revolution Against a Particular Class)** : यदि क्रान्ति का उद्देश्य किसी वर्ग विशेष को सत्ता से हटाकर संवैधानिक परिवर्तन करता है तो ऐसी क्रान्ति वर्ग विशेष के विरूद्ध क्रान्ति कहलाती है।
6. **बौद्धिक क्रान्ति (Intellectual Revolution)** : जब किसी राज्य में कुछ नेता लोग अपने जोशीले व्याख्यानों व भाषणों से जनता की भावना उभार कर क्रान्ति ला दे ंतो ऐसी क्रान्ति बौद्धिक क्रान्ति कहलाती है।

क्रान्तियों के उद्देश्य (Aims of Revolution)

अरस्तू के अनुसार कोई भी क्रान्ति निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए की जाती है :–

1. प्रचलित संविधाान के सथान पर अन्य संविधान की स्थापना; जैसे पुराने राजा के स्थान पर नए राजा की नियुक्ति करना।
2. प्रचलित संविधान में ही शासक–वर्ग के व्यक्तियों को बदल देना; जैसे पुराने राजा के स्थान पर नए राजा की नियुक्ति करना।
3. प्रचलित संविधान में गुणात्मक परिवर्तन करना; जैसे लोकतन्त्र को उदारवादी लोकतन्त्र बनाना,
4. प्रचलित संविधान के रहते हुए ही किसी नए पद की स्थापना करना या पुराने पद को समाप्त करना।

क्रान्ति के कारण (Causes of Revoloution)

अरस्तू ने क्रान्ति के तीन कारण बताए हैं :–

(क) सामान्य कारण (General Causes)

(ख) विशिष्ट कारण (Particular Causes)

(ग) विशिष्ट शासन प्रणालियों में क्रान्तियों के विशिष्टीकरण (Causes of Revolution in Differenct Kinds of State)

(क) सामान्य कारण (General Causes)

1. **सामाजिक असमानता** : अरस्तू के अनुसार क्रान्ति का मुख्य कारण समानता और न्याय की इच्छा है। जब सामाजिक असमानता पैदा होती है तो साथ में ही क्रान्ति या विद्रोह की ज्वाला भी सुलगने लगती है। अरस्तू के अनुसार – "विद्रोह या क्रान्ति का कारण सदैव असमानता में पाया जाता है।" अरस्तू का मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के समान – बनना चाहता है। आम व्यक्ति भी विशेष अधिकारी, शक्तियों और अवसरों को प्राप्त करना चाहता है। बहुसंख्यक वर्ग सम्पन्न अल्पसंख्यक वर्ग से घृणा करने लगता है। ऐसे में क्रान्ति का वातावरण अल्पसंख्यक वर्ग से घृणा करने लगता है। ऐसे में क्रान्ति का वातावरण तैयार हो जाता है। उस राज्य में क्रान्तियाँ बार – बार होती हैं जिसमें असमानता की मात्रा ज्यादा होती है।
2. अरस्तू के अनुसार लाभ तथा सम्मान के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी क्रान्ति या विद्रोह होता है। कई बार असम्मान या हानि से बचने के लिए भी विद्रोह होता है।
3. कई बार धृष्टता या भय की भावना भी क्रान्ति को जन्म देती है।
4. राज्य के किसी अंग का असमानुपाती विस्तार भी क्रान्ति को जन्म देता है।
5. कई बार व्यक्ति अपनी श्रेष्ठता की भावना के कारण भी क्रान्ति या विद्रोह करते हैं।

(ख) क्रान्ति के विशिष्टीकरण (Particular Causes)

अरस्तू ने सामान्य कारणों की व्याख्या करने के बाद क्रान्ति के विशेष कारणों का वर्णन किया है। ये कारण निम्नलिखित हो सकते हैं :–

1. **शासकों की धृष्टता (Insolence on the Part of Authority)** : जब शासक जनता के हितों की अनदेखी करके संविधान का उल्लंघन करते हैं तो ऐसी स्थिति में राज्य का अस्तित्व व जनता का जीवन दोनों खतरे में पड़ जाते है; जिसके परिणामस्वरूप जनता ऐसे धूर्त शासक के विरूद्ध विद्रोह कर बैठती है।
2. **लाभ एवं सम्मान की इच्छा (Desire of Gain and Honour)** : प्रत्येक व्यक्ति लाभ व सम्मान चाहता है। जिस राज्य में आयोग्य व्यक्ति लाभान्वित एवं सम्मानित किए जाते हैं, तो स्वाभाविक है कि लाभ व सम्मान की योग्यता व इच्छा रखने वाला व्यक्ति विद्रोह कर बैठता है।
3. **किसी रूप में श्रेष्ठता का अस्तित्व (Feeling of Superiority)**: जब कुछ लोग धन या यश के कारण स्वयं को श्रेष्ठ समझने लगते हैं तो वे जनता का विश्वास खो देते हैं और विद्रोह का शिकार होते हैं।
4. **भय की भावना (Feeling of Fear)** : अरस्तू के अनुसार भय भी क्रान्ति को जन्म देता है। अपराधी व्यक्ति भय के कारण दण्ड से बचने के लिए क्रान्ति करते हैं या ऐसे व्यक्ति जिन्हें अन्याय की आशंका हो वे भी विद्रोह करते हैं। इस तरह अविश्वास से भय और भय से क्रान्ति का जन्म होता है।
5. **घृणा (Contempt)** : धनिकतन्त्र में जब धनिक शासक वर्ग अधिकार वंचित गरीब जनता को तिरस्कारपूर्ण ढंग से देखता है तो दरिद्र वर्ग उससे नाराज होकर उसके विरूद्ध विद्रोह कर देता है। जनतन्त्र में भी धनी व्यक्ति राज्य में व्याप्त अव्यवस्था और अराजकता के कारण निर्धन वर्ग से घृणा करने लगते हैं तो क्रान्ति का सूत्रपात होता है।
6. **राज्य के किसी अंग का असमानुपाती विस्तार (Disproportionate Increase of a Part of the State)** : यह विस्तार प्रादेशिक, सामाजिक, आर्थिक या अन्य किसी भी प्रकार का

हो सकता है। राज्य का असमानुपाती विस्तार राज्य के लिए उसी प्रकार घातक है, जिस प्रकार शरीर के लिए किसी अंग में अनावश्यक वृद्धि।

7. **शासक की असावधानी (Wilful Neglect of Rulers)** : कई बार शासक अयोग्य व्यक्तियों को उच्च पदों पर नियुक्त कर देता है जो संविधान के प्रति जागरूक नहीं होते। ऐसे व्यक्ति भी अवसर मिलने पर विद्रोह कर देते हैं।

8. **विदेशियों का बाहुल्य (Large Inflow of Foreigners)** : कई बार जरूरत से ज्यादा विदेशी राज्य में आ जाएं तो वहाँपरस्पर विरोधी संस्कृतियों की टकराहट भी विद्रोह को जन्म देती है। जैसे भारत में पुर्तगालियों व अंग्रेजों के हितों का टकराव भी इसका कारण था।

9. **अल्प परिवर्तनों की अपेक्षा (Neglect of Minor Changes)** : शासन में समयानुसार छोटे – मोटे परिवर्तन शासक के लिए अपरिहार्य होते हैं। यदि शासक वर्ग इनकी उपेक्षा करता है तो वह विद्रोह को जन्म दे सकता है। जैसे अम्ब्रेसिया में पहले ऑफिस के लिए निम्नतम योग्यता निर्धारित की गई; किन्तु बाद में इसे हटा दिया या कुछ परिवर्तन किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि अम्ब्रेसिया की जनता ने क्रान्ति कर दी।

10. **जातीय विभिन्न (Racial Differences)** : यदि किसी राज्य में आवश्यकता से अधिक जातियों के लोग रहते हों तो उससे द्वेष, कलह और फूट के कारण राज्य में विद्रोह के आसार हो जाते हैं।

11. **भौगोलिक स्थिति (Geographical Situation)** : यदि राज्य नदियों, घाटियों और पर्वतों से विभिन्न टुकड़ों में बँटा हो तो उससे जनता का आपसी सम्पर्क टूट जाता है। राज्य का कोई भी हिस्सा किसी समस्या को लेकर क्रान्ति कर सकता है।

12. **मध्यमवर्ग की अनुपस्थिति (Absence of Middle Class)** : अरस्तू ने मध्यम वर्ग को राज्य की सुरक्षा व शान्ति के लिए आवश्यक माना है। जिस राज्य में यह वर्ग नहीं होता वहाँ पर अमीर और गरीब के बीच का अन्तर संघर्ष को जन्म देता है और विद्रोह का आधार बनता है।

13. **राजवंशीय झगड़े (Dynastic Quarrels)** : शासकों के आन्तरिक मतदभेद और कलह कभी – कभी सारे राज्य को हानि पहुँचाते हैं। अरस्तू ने इसके लिए सिराक्यूज का उदाहरण दिया है।

14. **शक्ति का दुरूपयोग (Misuse of Power)** : जब शासक अत्याचारी होकर जनता व अपने राजनीतिक विरोधियों पर दमनचक्र चलाता है तो उनमें आक्रोश की भावन पैदा होती है। राजशक्ति के प्रति इस आक्रोश से क्रान्ति का बिगुल बज उठता है।

15. **निर्वाचन सम्बन्धी विवाद (Election Intrigues)** : अरस्तू के अनुसार जब चुनाव प्रक्रिया में धाँधली होती है तो लोकमत का सम्मान नहीं किया जाता तो सत्तारूढ़ पक्ष के खिलाफ जनता पर विपक्ष मिलकर विद्रोह कर देते हैं।

16. **प्रणय–सम्बन्धी झगड़ा (Quarrel Realted to Marriage)** : अरस्तू के अनुसार प्रणय विवाद भी क्रान्ति का कारण बन सकता है। सिरक्यूज के संविधान में परिवर्तन का मूल कारण यही था।

(ग) विशिष्ट शासन प्रणालियों में क्रान्ति के विशिष्ट कारण

(I) प्रजातन्त्र में क्रान्ति (Revolution in Democracy)

अरस्तू ने प्रजातन्त्र में क्रान्ति के निम्न कारण बताए हैं :–

1. प्रजातन्त्र में क्रान्ति का मूल आधार जनांदोलन है। जब जनांदोलक व्यक्तिगत रूप से धनिक वर्ग पर अत्याचार करता है तो संघर्ष की स्थिति पैदा होती है।
2. जब धनिकों पर ज्यादा करों का भार डाल दिया जाता है तो तब भी क्रान्ति के आसार होते हैं।
3. जब जनांदोलक सेनापति हो, तब भी क्रान्ति का आसार बनता है। एथेन्स व मेगरा की प्रजातन्त्रीय सरकारें इसी प्रकार के आंदोलक के कारण तानाशाही में बदल गई थी।
4. प्रजातन्त्र को अधिक उदारवादी बनाने के लिए भी क्रान्ति की जाती है। यूनान के नगर–राज्यों में ऐसी क्रान्तियाँ भी हुई थी।

(II) धनिकतन्त्र में क्रान्ति (Revolution in Oligarchy)

धनिकतन्त्र में क्रान्ति के निम्न कारण बताए हैं :–

1. जब जनता का अधिक शोषण होता है तो लोकनायक द्वारा क्रान्ति कर दी जाती है। यदि क्रान्ति सफल होती है तो जनता का शासन स्थापित हो जाता है।
2. व्यक्तिगत प्रतिस्पर्धा भी क्रान्ति का कारण बनती है। यह स्पर्धा धनी शासक वर्ग में ही पाई जाती है।
3. जब धनी व्यक्ति फिजूलखर्ची करते हैं तो उससे भी क्रान्ति के आसार बनते हैं।
4. जब धनिकतन्त्र में शासन सत्ता सीमित रहती है तो शासन के अधिकार से वंचित व्यक्ति विद्रोह कर सकते हैं।

(III) कुलीनतन्त्र में क्रान्ति (Revolution in Aristocracy)

कुलीनतन्त्र में क्रान्ति के निम्न कारण बताए हैं :–

1. जब शासन की बागडोर कुछ व्यक्तियों के हाथ में आ जाए तो क्रान्ति होती है। शासन से वंचित व्यक्ति विद्रोह करते हैं।
2. जब महान् पुरूषों का अनादर किया जाता है तो क्रान्ति होती है।
3. जब युद्ध के कारण अमीर – गरीब का अन्तर बढ़ जाता है तो क्रान्ति होती है।
4. जब कोई महत्त्वकांक्षी व्यक्ति सम्पूण शासन को अपने हाथ में लेना चाहता हो तो क्रान्ति होती है।
5. जब न्याय प्रणाली विकृत होती है तो क्रान्ति होती है।

(IV) राजतन्त्र में क्रान्ति (Revolution in Monarchy)

राजतन्त्र में क्रान्ति के निम्न कारण बताए हैं :–

1. जब राजा जनहित में कार्य न करे और जनता पर अन्याय करे तो क्रान्ति होती है।
2. जब साहसी व न्यायी व्यक्ति का अपमान किया जाता है तो क्रान्ति होती है।
3. तिरस्कार की भावना भी क्रान्ति को जन्म देती है।
4. षड्यन्त्र का भय भी क्रान्ति को जन्म देता है।
5. जब राजवंश के सदस्यों में आपसी झगड़ा हो जाए तो क्रान्ति होती है।

6. जब राजा तानाशाह बन जाता है तो क्रान्ति होती है।

(V) निरंकुशतन्त्र में क्रान्ति (Revolution in Tyranny)

1. शासक परिवार के आपसी झगड़े भी क्रान्ति को जन्म देते हैं।
2. घृणा और तिरस्कार की भावना भी क्रान्ति को भड़काती है।
3. शासक के व्यक्तिगत स्वार्थ भी क्रान्ति को जन्म देते हैं।
4. योग्य व्यक्ति का अपमान भी क्रान्ति को जन्म देते हैं।

इस प्रकार अरस्तू ने विस्तारपूर्वक क्रान्ति के विभिन्न कारणों पर प्रकाश डाला है। साथ में ही उसने क्रान्ति को रोकने के उपाय भी बताए हैं।

रोकने के उपाय (Remedies)

अरस्तू ने उन सभी कारणों को जानने का प्रयास किया है जो संविधान को नष्ट करते हैं। अरस्तू ने क्रान्तियों को रोकने के लिए जो उपाय बातए हैं, वस्तुतः उनके अतिरिक्त अन्य कोई उपचार नहीं हो सकता। मैक्सी ने लिखा है– "क्रान्तियों के विषैले तत्त्वों को रोकने के लिए आधुनिक राजनीतिक विज्ञान कहीं और विश्वसनीय उपाधारों को नहीं बता सकता।" अरस्तू ने क्रान्तियों को रोकने के उपायों को दो भागों में बाँटा है –

(क) सामान्य उपाय

(ख) विशेष शासन पद्धतियों के लिए उपाय।

(क) सामान्य उपाय (General Remedies)

अरस्तू ने क्रान्ति को रोकने के सामान्य उपाय निम्न प्रकार से बताये है :–

1. **संविधान के अनुरूप शिक्षा (Education according to Constitution)** : संविधान को स्थायी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि बच्चों तथा नागरिकों को संविधान के अनुरूप शिक्षा दी जाए। अरस्तू का कथन है कि यदि बच्चों को शिक्षण – संस्थाओं में ही संविधान का महत्त्व समझा दिया जाए तो वे संविधान की रक्षा तथा सफलता हेतु अपने को उत्सर्ग भी कर सकते हैं। वर्तमान समय में शासन प्रणालियों के अनुरूप ही शिक्षा की व्यवस्था है। उदाहरण के लिए साम्यवादी देशों में साम्यवाद की शिक्षा

बच्चों को शिक्षण – संस्थाओं में दी जाती है। अतः राज्य में स्थायित्व लाने के लिए बच्चों व नागरिकों को संविधान के अनुरूप शिक्षा देना अति आवश्यक है।

2. **अच्छा शासन (Good Administration)** : जिस राज्य की शासन व्यवस्था दूषित होती है, वह शीघ्र ही पतन की ओर जाता है। प्रशासक तथा प्रशासनिक पदाधिकारी योग्य, ईमानदार, कर्मठ एवं न्यायी हो। घूसखोरी का नामोनिशान नहीं होना चाहिए। जिस राज्य में अच्छा शासन होता है, वहाँ क्रान्ति की सम्भावना नहीं होती।

3. **शुद्ध आचरण (Good Behaviour)** : जिस शासन व्यवस्था में शासकों का आचरण छल–कपट रहित होता है, वहाँ क्रान्ति के आसार नहीं होते। अतः शासक वर्ग को जनता को धोखे में नहीं डालना चाहिए।

4. **कानून का पालन (Obedience to Law)** : सरकार के सभी अंगों के कार्यों व शक्तियों का वर्णन संविधान में होता है। इसमें नागरिकों क अधिकारों व कर्त्तव्यों का भी वर्णन रहता है। प्रत्येक नागरिक व शासक का कर्त्तव्य है कि वह संविधान के कानून का पालन करे। कानून का पालन न करने से समाज व शासन में अराजकता फैल जाएगी। अतः कानून का पालन करने में ही राज्य व समाज की भलाई है। जहाँ पर कानून का शासन होता है, वहाँ पर सभी सुख व शान्ति से रहते हैं।

5. **राज्यभक्त नागरिक (Loyal Citizen)** : प्रत्येक राज्य में कुछ देशद्रोही होते हैं। वे संविधान व राज्य के प्रति निष्ठावान नहीं होते। स्थायी शासन प्रणाली के लिए राजभक्त नागरिकों को होना जरूरी है।

6. **आंतरिक फूट नहीं (No Internal Frictions)** : राज्य में नागरिकों का शासक वर्ग में आपसी दलबन्दी नहीं होनी चाहिए। राज्य में शान्ति बनाए रखने के लिए आपस में प्रेम एवं सद्भाव का होना आवश्यक है।

7. **सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध (Harmonious Relationship)** : राज्य में शांति बनाए रखने के लिए शासक व शासितों में आपसी सम्बन्ध मधुर होने चाहिए। योग्य व्यक्तियों का पूरा सम्मान मिलना चाहिए।

8. **शक्तियों का केन्द्रीकरण नहीं (No Concentration of Power)** : शक्ति शासक वर्ग को भ्रष्ट करती है। यदि सारी शक्ति एक ही व्यक्ति के हाथ आ जाए तो वह निरंकुश बन सकता है और अत्याचारी बन सकता है। अतः राज्य में शान्ति बनाए रखने के लिए शक्ति का समान वितरण किया जाए तथा किसी व्यक्ति या वर्ग को शक्तिशाली नहीं होने दिया जाए।

9. **न्याय (Justice)** : जिस राज्य में न्याय का अभाव होता है, वहाँ जनता विद्रोह करती है। जन विद्रोह से बचने के लिए न्याय–व्यवस्था मजबूत होनी जरूरी है। न्याय पर आधारित शासन ही स्थायी होता है।

10. **समानता (Equality)** : समाज में अमीर व गरीब का अन्तर अधिक नहीं होना चाहिए। राजनीतिक क्षेत्र में समानता का सिद्धान्त लागू करना चाहिए। विषमता ही क्रान्ति को जन्म देती है। अतः समाज में 'समानता का सिद्धान्त' का पालन करना चाहिए।

11. **सरकारी कोष का गबन नहीं (No Misuse of Public Money)** : शासक वर्ग को सरकारी धन का जनता की भलाई के लिए ही प्रयोग करना चाहिए। जिस शासन–व्यवस्था में सरकारी धन का प्रयोग स्वार्थ–सिद्धि के लिए किया जाता है, वहाँ अक्सर विद्रोह फैलने का डर रहता है।

12. **राजकीय सेवाएँ (Administrative Services)** : प्रशासन को चुस्त – दुरस्त रखने के लिए उच्च अधिकारियों की सेवा अवधि कम होनी चाहिए तथा निम्न अधिकारियों की सेवा अवधि अधिक होनी चाहिए। इससे वे स्वेच्छाचारी बनने का स्वप्न नहीं लेंगे और प्रशासन में स्थायित्व व निष्पक्षता पैदा होगी।

13. **सर्वोच्च पदों की योग्ताएँ (Qualifications for Higher Posts)** : अरस्तू के अनुसार सर्वोच्च पदों पर नियुक्त होने वाले पदाधिकारियों में संविधान के प्रति भक्ति, प्रशासनिक क्षमता तथा गुणी व न्याय की योग्यता होनी चाहिए। अधिकारियों का चयन पदानुरूप योग्यतानुसार किया जाना चाहिए।

(ख) विशिष्ट शासन प्रणालियों में क्रान्ति रोकने के उपाय

अरस्तू ने क्रान्ति को रोकने के सामान्य उपायों के वर्णन के बाद विशेष शासन प्रणालियों में क्रान्ति रोकने के कुछ उपाय दिए हैं जो निम्नलिखित हैं :–

(I) प्रजातन्त्र (Democracy)

अरस्तू ने प्रजातन्त्र में क्रान्ति रोकने के निम्न उपाए बताए हैं :–

1. शासन को जनता के स्वतन्त्रता के अधिकार पर किसी प्रकार का आघात नहीं पहुँचना चाहिए।
2. समानता के सिद्धान्त द्वारा सभी नागरिकों को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास करना चाहिए।
3. प्रजातन्त्र में बहुमत–शासन–व्यवस्था कायम रखी जाए।
4. धनिकों के प्रति कोई अन्याय नहीं होना चाहिए।
5. सेनाध्यक्ष शासन नहीं होना चाहिए।
6. जनांदोलक का अन्त किया जाए।
7. शासक को शक्ति व धन का पुजारी नहीं होना चाहिए।

यदि उपर्युक्त उपायों पर विचार किया जाए तो लोकतन्त्र सुरक्षित रह सकता है।

(II) धनिकतन्त्र (Oligarchy)

अरस्तू ने धनिकतन्त्र में क्रान्ति रोकने के निम्न उपाए बताए हैं :–

1. राज्य में बाह्य या आन्तरिक फूट या विवाद नहीं होना चाहिए।
2. गरीबों के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए।
3. शासन को धन कमाने का साधन नहीं समझना चाहिए।
4. सरकारी कोष का सदुपयोग किया जाना चाहिए।

(III) कुलीनतन्त्र (Aristocracy)

कुलीनतन्त्र में अरस्तू ने क्रान्ति रोकने के निम्न उपाए सुझाए हैं :–

1. शासक के जनता के साथ अच्छे सम्बन्ध होने चाहिए।
2. महान् पुरूषों को पूरा सम्मान मिलना चाहिए।

(IV) राजतन्त्र (Manarchy)

राजतन्त्र में क्रान्ति रोकने के लिए निम्नलिखित उपाए बताए गए हैं

1. राजा को संविधान के प्रति निष्ठावान होना चाहिए।
2. राजा को जनता के साथ सद्व्यवहार करना चाहिए।

(V) निरंकुशतन्त्र (Tyranny)

अरस्तू ने निरंकुश तन्त्र की सुरक्षा व स्थायित्व के लिए निम्नलिखित तरीके बताए हैं:–

1. शासक, शासक की तरह ही शासन करें उसे जनहित की भावना का ख्याल रखने का बहाना करना चाहिए। उसे एक राजा का स्वाँग रचना चाहिए।
2. उसका आचरण शुद्ध होना चाहिए।
3. उसे देवता का उपासक होना चाहिए।
4. उसे अपने जीवन की रक्षा का सदैव ध्यान रखना चाहिए।
5. उसे पक्षपातपूर्ण ढंग से जनता के साथ व्यवहार करना चाहिए।
6. उसे सार्वजनिक राजस्व का दुरूपयोग नहीं करना चाहिए।

आलोचनाएँ (Criticisms)

अरस्तू के क्रान्ति सम्बन्धी विचारें की कुछ आलोचनाएँ भी हुई है :–

1. वह एक तरफ को निरंकुश तन्त्र को सबसे निकृष्ट शासन–प्रणाली मानता है, लेकिन दूसरी तरफ इसे स्थायित्व प्रदान करने का उपाय बताता है जो अनावश्यक और अवांछनीय प्रतीत होता है।
2. अरस्तू क्रान्ति को एक बुराई की नजर से देखता है, अच्छाई की नजर से नहीं। आलोचकों के मत में क्रान्ति द्वारा सुधार व वांछनीय परिवर्तन लाये जा सकते हैं और किसी भी व्यवस्था को उचित दिशा में स्थायित्व प्रदान किया जा सकता है।
3. अरस्तू ने 'क्रान्ति' शब्द का प्रयोग केवल संविधान और शासन प्रणालियों में परिवर्तन के अर्थ में किया है। आलोचकों का मत है कि 'क्रान्ति' शब्द इतना व्यापक है कि इसका प्रयोग किसी भी क्षेत्र में किया जा सकता है।

4. अरस्तू ने अपने विचारों से निरंकुश शासक के हाथ में कुछ ऐसी खतरनाक, क्रूर और अमानुषिक युक्तियाँ दी है जिनसे जनता के सारे अधिकार, सारी मान–मर्यादा और सम्पत्ति लूटी जा सकती है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद भी इन विचारों का अपना विशेष महत्त्व है। अरस्तू ने क्रान्ति के कारणों व उसे रोकने के उपायों की वास्तविक, वैज्ञानिक और व्यावहारिक व्याख्या कर राजनीतिक दर्शन के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा है। अरस्तू द्वारा बताये गये क्रान्ति के कारण आधुनिक शासन–प्रणालियों के लिये भी मार्गदर्शक का कार्य करते हैं। यदि शासकों द्वारा अरस्तू बताये गए उपचारों का पालन किया जाए तो आधुनिक राजनीतिक व्यवस्थाओं में स्थायित्व का गुण पैदा किया जा सकता है। मैक्सी ने कहा है –"क्रान्ति को रोकने के जिन साधनों का प्रतिपादन अरस्तू ने किया है क्या आधुनिक राजनितिक – विज्ञान उनसे अधिक उपयोगी व कारगार साधन प्रस्तुत कर सकता है।" अतः यह अरस्तू की महत्त्वपूर्ण देन है।

2.10 सविधानों का वर्गीकरण (Classification of Constitution)

राज्य की अनिवार्य वस्तु संविधान है और जब संविधान बदल जाता है तो राज्य की पहचान भी बदल जाती है। संविधान किसी राज्य का रूप होता है, इसलिए वह राज्य से अभिन्न माना जा सकता है। इसका अर्थ यह निकलता है कि संविधान ही राज्य है। अरस्तू ने अपनी पुस्तक 'पॉलिटिक्स' की तीसरी पुस्तक के छठे से आठवें अध्याय तक संवीधान की व्याख्या की तथा विभिन्न संविधानों का उल्लेख करते हुए उनका वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। अरस्तू से पहले भी प्लेटो ने राज्यों के बारे में लिखा है। प्लेटो ने तीन अच्छे राज्यों – राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र तथा प्रजातन्त्र का वर्णन किया है और राज्य के तीन विकृत रूप – निरंकुशतन्त्र, अल्पतन्त्र तथा प्रभावसमूह तन्त्र का भी वर्णन किया है। अतः स्पष्ट है कि प्लेटो का वर्गीकरण ही अरस्तू के वर्गीकरण का आधार है। इसलिए अरस्तू के संविधानों के वर्गीकरण में मौलिकता का आभाव है। अरस्तू का संविधानों के वर्गीकरण विश्लेषणात्मक

दृष्टिकोण पर आधारित है। अरस्तू ने 158 देशों के संविधानों का अध्ययन करने के बाद ही संविधानों का वर्गीकरण किया हैं अरस्तू का यह वर्गीकरण शाश्वत महत्त्व रखता है।

संविधान क्या है ? (What is a Constitution)

अरस्तू 'संविधान' के लिए यूनानी शब्द 'पॉलिटिया' (Politeia) का प्रयोग किया है। इसका अंग्रेजी रूपान्तर है – कॉन्स्टीट्यूशन (Constitution)। अरस्तू 'Politeia' शब्द को राज्य का निर्धारक तत्त्व मानता है। अरस्तू कहता है कि किसी राज्य का स्वरूप निर्धारण उसकी दीवारों, परकोटों अथवा नदी – नालों द्वारा नहीं किया जाता। यह संविधान का स्वरूप है जो राज्य के स्वरूप की पहचान करता है। संविधान को परिभाषित करते हुए अरस्तू लिखता है कि – "संविधान सामान्यतः राज्य के पदों के संगठन की एक व्यवस्था है, विशेषतः ऐसे पद की जो सभी मुद्दों में सर्वोच्च है।" संविधान द्वारा राज्य के विभिन्न पदों का संगठन किया जाता है। अरस्तू राज्य और संविधान में कोई अन्तर नहीं करता है। अरस्तू के अनुसार संविधान में परिवर्तन आने से राज्य के पदों में परिवर्तन के साथ – साथ राज्य के सामाजिक, आर्थिक व नैतिक मूल्यों में भी परिवर्तन आ जाता है। इस प्रकार अरस्तू ने संविधान की व्याख्या दो तरह से की है – प्रथम, अरस्तू कहता है कि राज्य के विभिन्न मनुष्यों के जीवन – निर्वाह के विशेष नियमों का नाम ही संविधान है। इस प्रकार संविधान एक जीवन – पद्धति है। द्वितीय, 'पॉलिटिक्स' की चतुर्थ पुस्तक में अरस्तू ने संविधान को परिभाषित करते हुए इस विभिन्न पदों के संगठन की व्यवस्था मानता है। पहली परिभाषा में अरस्तु के संविधान के नैतिक रूप की और द्वितीय परिभाषा में राजनीतिक स्वरूप की ओर ध्यान देता है। संविधान केवल जीवन–निर्वाह की पद्धति ही नही, राज्य के प्रशासन की व्यवस्था का नाम है। संविधान द्वारा शासन के विभिन्न अंगों का वर्णन किया जाता हैं, उन अंगों का स्परूप निर्धारित किया जाता है तथा उनका परस्पर सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। अरस्तू द्वारा प्रस्तूत परिभाषाओं के विश्लेषण से निम्न बातें स्पष्ट होती हैं :–

1. संविधान ही सर्वोच्च सत्ता को निश्चित करता है।
2. संविधान ही राज्य तथा लोगों के लक्ष्य को निश्चित करता है।

3. संविधान ही राज्य का सार है, संविधान के आधार पर ही राज्य का निर्माण अथवा अन्त होता है।
4. संविधान ही राज्य के पदों तथा उनके स्वरूप को निश्चित करता है।
5. अरस्तू के संविधान सम्बन्धी विचार से राजनीतिक जीवन के तरीके, सामाजिक आचारशास्त्र एवं आर्थिक संगठन की आधारशिला का निश्चय हो जाता है।
6. संविधान द्वारा ही राज्य का आकार प्रकार या रूपरेखा निश्चित होती है। संविधान ही इस बात को निर्धारित करता है कि राज्य लोकतन्त्रात्मक होगा या राजतन्त्रतात्मक।

संविधान सम्बन्धी अरस्तू के विचारों से राज्य और संविधान में अन्तर दिखाई देता है। परन्तु अरस्तू ने ऐसा नहीं किया है। वह कहता है कि संविधान से राज्य का स्वरूप निर्धारत होता है। संविधान राज्य का प्रतिरूप है। संविधान में परिवर्तन का अर्थ – राज्य में परिवर्तन। अरस्तू संविधान के वर्गीकरण को ही राज्य का वर्गीकरण कहता है। इस प्रकार अरस्तू के विचारों ने अन्तर्विरोध दृष्टिगोचर होता है।

संविधानों का वर्गीकरण (Classification o Constitution)

अरस्तू ने संविधान का अर्थ स्पष्ट करने के बाद संविधानों का वर्गीकरण किया है। उसके वर्गीकरण के निम्न आधार है :–

1. **संख्यात्मक आधार (Numerical Basis)** : इसका अर्थ यह है कि कितने लोग शासन में भाग लेते हैं, अर्थात् कितने व्यक्ति प्रभूसत्ता का प्रयोग करते है। इसका सम्बन्ध शासकों की संख्या से है जिनके हाथों में सत्ता रहती है। अरस्तू के अनुसार ऐसे व्यक्तियों की संख्या क्रमशः एक, या कुछ या अनेक हो सकती है।
2. **नैतिक एवं गुणात्मक आधार (Moral andQuantitative Basis)** : इसका अर्थ है कि शासन सामान्य हित की पूर्ति के लिए किया जा रहा है या नहीं। इस आधार पर अरस्तू संविधान (राज्यों) को पुनः दो वर्गो में बाँटा हैं :–
   (i) स्वाभाविक रूप **(Normal Form)**
   (ii) विकृत रूप **(Perverted Form)**

अरस्तू के अनुसार जब शासक वर्ग सामान्य हित के लिए शासन करता है तो संविधान का रूप शुद्ध या स्वाभाविक होता है। संविधान का विकृत रूप तब होता है, जब शासक वर्ग सत्ता का प्रयोग स्वार्थ–सिद्धि में करता है। इस प्रकार संविधान (राज्य) के रूप का निर्धारक सामाजिक हित का विचार है।

संविधानों का वर्गीकरण

(तालिका)

शासकों की संख्या **(No of Rulers)**	**सामान्य रूप** **(Normal Form)**	**विकृत रूप** **(PervertedForm)**
एक (One)	राजतन्त्र (Monarchy)	निरंकुशतन्त्र (Tyranny)
कुछ (Few)	कुलीनतन्त्र (Aristocracy)	धनिकतन्त्र (Oligarchy)
अनेक (Many)	बहुतन्त्र (Polity)	प्रजातन्त्र (Democracy)

अरस्तू ने उपर्युक्त तालिका में संविधान के तीन शुद्ध तथा तीन विकृत रूप बताए हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है :–

1. **राजतन्त्र (Monarchy)** : अरस्तू के अनुसार एक व्यक्ति द्वारा सार्वजनिक हित में किया जाने वाला शासन राजतन्त्र कहलाता हे। यह शासन व्यवस्था सर्वोत्तम व्यवस्था है। यदि व्यावहारिक दृष्टि से सद्‌गुणी व्यक्ति मिल जाए तो उसे शासक बनाने में संकोच नहीं करना चाहिए। ऐसे व्यक्ति को सभी द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिए। परन्तु अरस्तू का मत है कि ऐसा आदर्श व्यक्ति मिलना कठिन होता है। यदि ऐसे शासक का उत्तराधिकारी भी सद्‌गुणी है तो राजतन्त्र विकृत हरेक निरंकुशतन्त्र में बदल जाता है। अरस्तू राजतन्त्र के 5 प्रकार बताता है –
   (i) स्पार्टा मॉडल के राजतन्त्र में शासक को केवल सैन्य कार्यों का संचालन करना पड़ता है।

(ii) बर्बर जातियों में पाए जाने वाले राजतन्त्र में राजा के अधिकार निरंकुशतन्त्र की तरह होते हैं। इनमें राजा कानून के अनुसार ही इच्छुक जनता पर शासन करता है।

(iii) तानाशाही अथवा निर्वाचित राजतन्त्र में शासक अत्याचारी एवं स्वेच्छाचारी राजा की तरह शासन करता है।

(iv) वीरयुग के राजतन्त्र में राजा के कार्य – युद्धों में सेना की अध्यक्षता करना, यज्ञों में पुरोहित का कार्य करना तथा अभियोगों में निर्णय करना होता है।

(v) सम्पूर्ण राजतन्त्र में राजा अपनी सन्तान की तरह सब विषयों का अधिकार प्रजा पर रखता है। यह राजतन्त्र सम्पूर्ण राजतन्त्र है।

संक्षेप में अरस्तू के राजतन्त्र की धारणा आदर्श राजतन्त्र की है। अरस्तू का शासक सद्‌गुणी व्यक्ति होता है जो जनहित में शासन करता है। यद्यपि वह निरपेक्ष (सम्पूर्ण) राजतन्त्र को सर्वश्रेष्ठ मानता है लेकिन यह भी स्वीकार करता है कि इस प्रकार का शासक सम्भव नहीं है।

2. **निरंकुशतन्त्र (Tyranny) :** इसका : यह राजतन्त्र का विकृत रूप है। इसमें शासक जनता के हितों की अनदेखी करके स्वार्थ – सिद्धि के लिए शासन करता है। अरस्तू ने निरंकुश शासक के तीन प्रकार बताए हैं : – (i) जिसमें राजा कानून का पालन करते हुए संयम से शासन करता है। (ii) जिसमें शासक धन प्राप्ति को अपना लक्ष्य बना लेते हैं। (iii) इस प्रकार के निरंकुश तन्त्र में शासक कानून की उपेक्षा करते हुए पूर्ण स्वेच्छाचारी होते है।

3. **कुलीनतन्त्र (Aristocracy) :** जिस राज्य में शासन सत्ता का प्रयोग कानून के अनुसार किया जाता है, कुलीनतन्त्र कहलाता है। जे०एल० मिरेस के अनुसार – "कुलीनतन्त्र से अरस्तू का अभिप्राय उस प्रकार के राज्य से है जिसमें जन्माधिकार ही कम या अधिक रूप में राजनीतिक सुविधाओं की अनिवार्य शर्त है।" अरस्तू की धारणा है कि कुलीनतन्त्र भी, राजतन्त्र की तरह बुद्धि, गुण तथा संस्कृति द्वारा संचालित कानूनप्रिय

प्रणाली है। कुलीनतन्त्र वंशागुत भी हो सकता है और आयु के अनुसार भी। अरस्तू ने आयु पर आधारित कुलीनतन्त्र को ही अपनाया है।

4. **अल्पतन्त्र या धनिकतन्त्र (Oligarchy) :** वह कुलीनतन्त्र का विकृत रूप है। इसमे शासक वर्ग स्वार्थ–सिद्धि के लिए शासन करता है। यह थोड़े से धनी व्यक्तियों का वर्ग होता है जिनका उद्देश्य राजसत्ता का प्रयोग धन इकट्ठा करना होता है। यह शासन की स्थायी व्यवस्था नहीं है। अरस्तू इससे घृणा करता है।

5. **सर्वजनतन्त्र या बहुतन्त्र (Polity) :** अरस्तू के अनुसार जब शासन का संचालन समाज की भलाई के लिए किया जाता है तो बहुतन्त्र होता है। सम्पूर्ण जनता अपनी इच्छा से 'शुभ' (Good) के ज्ञान के आधर पर कानून के अनुसार शासन करती है। इसमें किसी वर्ग विशेष का सम्पत्ति पर अधिकार नहीं होता। यह शोषण रहित प्रणाली है। अरस्तू का सर्वजनतन्त्रवाद, धनिकतन्त्र और भीड़तन्त्र के बीच का मार्ग है।

6. **लोकतन्त्र या भीड़तन्त्र (Democracy) :** संविधान का यह रूप संवैधानिक तन्त्र का विकृत रूप है। इसके अन्तर्गत राज्य की प्रभुसत्ता निर्धन–वर्ग के हाथ में होती है। इसे बहुमत का शासन भी कहा जाता है। निर्धन–वर्ग अशिक्षित व साधन सम्पन्न न होने के कारण धनी वर्ग से घृणा करता है। इसमें गरीब वर्ग स्वार्थ–सिद्धि के लिए शासन करता है। इसमें सामान्य हित की उपेक्षा की जाती है।

उपर्युक्त दो आधारों के अतिरिकत अरस्तू ने संविधान के वर्गीकरण को आर्थिक, गुणात्मक व कार्य – प्रणाली सम्बन्धी आधार भी बताए हैं। अल्पतन्त्र वहाँ होता है, जहाँ प्रभुसत्ता अमीरों के हाथ में हो और इसके विपरित प्रजातन्त्र में निर्धनों का शासन होता है। यह वर्गीकरण का आर्थिक आधार है। अरस्तू गुणात्मक आधार पर भी धनिकतन्त्र का मुख्य गुण धन, प्रजातन्त्र में धर्म–निरपेक्षता, समानता व स्वतन्त्रता तथा कुलीनतन्त्र में विद्धता को मुख्य गुण मानता है। अरस्तू कार्यप्रणाली के आधार पर भी वर्गीकरण करता है अरस्तू का कहना है कि धनिकतन्त्र में उच्च शासकीय पदों के लिए निर्वाचन में धनी व्यक्ति ही भाग ले सकते हैं जबकि शुद्ध जनतन्त्र में साधारण व्यक्ति भी भाग ले सकते हैं।

सरकार का चक्रीय सिद्धान्त (Cyclic Theory of Government)

अरस्तू ने संविधान के वर्गीकरण के साथ – साथ राजनीतिक परिवर्तनों का एक कालचक्र भी प्रस्तुत किया है। जिसे 'Cyclic Theory of Government' कहते हैं। अरस्तू की धारणा है कि जिस प्रकार ऋतुएँ स्वाभाविक रूप में बदलती हैं, उसी प्रकार शासनों में भी परिवर्तन का चक्र चलता रहता है। राजनीतिक परिवर्तन का यह चक्र राजतन्त्र से प्रारम्भ होता है और क्रमशः निरंकुशतन्त्र, कुलीनतन्त्र, धनिकवर्गतन्त्र, पॉलिटी और प्रजातन्त्र (भीड़तन्त्र) के बाद अन्त में फिर से राजतन्त्र के रूप में परिणत हो जाता है। यह परिवर्तन एक निश्चित क्रम में होता है। जिस प्रकार साइकिल का पहिया आगे की तरफ घूमता हुआ दूरी तय करता है, इसी प्रकार से शासन प्रणालियाँ भी आगे की ओर घूमते हुए दूरी तय करती हैं अर्थात् अपना रूप बदलती हैं। इसे निम्नलिखित रेखाचित्र से समझा जा सकता है :–

राजतन्त्र

लोकतन्त्र निरंकुशतन्त्र

सर्वजनतन्त्र कुलीनतन्त्र

धनिकतन्त्र

उपर्युक्त रेखाचित्र के अनुसार सर्वप्रथम राजतन्त्र की स्थापना होती है। उसके विकृत होने पर यह निरंकुशतन्त्र में बदल जाता है। निरंकुशतन्त्र के अत्याचारों से दुःखी जनता सामान्य हित में उसका अन्त करके कुलीनतन्त्र की स्थापना करते हैं। कालांतर में कुलीनतंत्र के विकृत होने पर धनिकतन्त्र की स्थापना होती है। मध्यवर्गीय नागरिक धनिकतन्त्र का अन्त करके सर्वजनतन्त्र की स्थापना करते हैं जो अपने विकृत रूप लोकतन्त्र या भीड़तन्त्र में बदल जाता है। इसके कुशासन का अन्त किसी ऐसे वीर है। इस तरह संविधानों में परिवर्तन का चक्रीय क्रम निरन्तर चलता रहता है।

आलोचना (Criticism)

अरस्तू के संविधानों के वर्गीकरण की सीले व बलंटशली जैसे विद्वानों ने आलोचना की है। डनिंग भी इसे अनिश्चित सिद्धान्तों पर आधारित मानता है। सीले इसे नगर – राज्यों का वर्गीकरण मानता है। बलंटशली इसे लौकिक राज्यों का वर्गीकरण मानता है। गार्नर इसे वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित नहीं मानता है। इसकी प्रमुख आलोचनाएँ निम्न प्रकार से हैं :–

1. **वर्गीकरण का अनिश्चित आधार (Vague Basis of Classification)** : अरस्तू के वर्गीकरण का कोई निश्चित आधार नहीं है। कभी आर्थिक तत्त्व (सम्पन्नता और विपन्नता), कभी गुण (स्वतन्त्रता, समानता और धन) और कभी व्यावसायिक (कार्यात्मक) तत्त्व ही प्रधान हैं। प्रो० डनिंग ने ठीक कहा है – "अरस्तू के लिए यह बताना कठिन है कि अमुक प्रकार का शासन अमुक प्रकार की सिद्धान्त पर आधारित है।"
2. **अरस्तू का चक्र अनैतिहासिक (Aristotle's Cycle is Unhistorical)** : अरस्तू के संविधान के वर्गीकरण का चक्रीय सिद्धान्त ऐतिहासिक विकास – क्रम पर आधारित नहीं है। व्यवहार में यह जरूरी नहीं कि राजतन्त्र में परिवर्तन हमें निरंकुशतन्त्र में तथा कुलीनतन्त्र अल्पतन्त्र में और अल्पतन्त्र संवैधानिक तन्त्र में तथा संवैधानिक तन्त्र प्रजातन्त्र में और प्रजातन्त्र पुनः राजतन्त्र में परिवर्तित हो जाए। अतः यह सिद्धान्त अनैतिहासिक है।
3. **मौलिकता का अभाव (Lack of Originality)** : अरस्तू ने पहले भी हेरीडोटस, सकुरात तथा प्लेटो ने संविधानों के वर्गीकरण पर लिखा है। प्लेटो ने अपने ग्रन्थ 'स्टेट्समैन' में जो वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, अरस्तू ने प्रायः उसी का अनुकरण किया है। अतः अरस्तू का वर्गीकरण मौलिक नहीं है।
4. **अवैज्ञानिक (Unscientific)** : गार्नर का मत है कि –"सरकार के वर्गीकरण के रूप में यह असंगत है, क्योंकि वह ऐसे किसी सिद्धान्त पर आधारित नहीं हैं, जिसके अनुसार सरकार के परस्पर आधारभूत विशेषताओं तथा संगठन के रूप में सम्बन्ध स्थापित किया जा सके।" वॉन महल का कथन है – "जिस सिद्धान्त पर यह आधारित है उसका स्वरूप राज्य के गठन से सम्बन्धित न होकर गणित से सम्बन्धित है तथा वह गुण

विषयक न होकर संस्था विषयक है।" शासकों की संख्या वर्गीकरण के लिए वैज्ञानिक आधार नहीं है। इस वर्गीकरण में अरस्तू ने आध्यात्मिक तत्त्व की उपेक्षा की है। परन्तु यह आलोचना उचित नहीं है, क्योंकि अरस्तू ने वर्गीकरण का दूसरा आधार नैतिकता को बनाया है। अरस्तू ने राज्यों के सामान्य तथा विकृत रूप का भी दर्शन किया है। बर्गेस ने ठीक ही कहा है – "अरस्तू का वर्गीकरण आध्यात्मिक है, संस्थात्मक नहीं।"

5. **अरस्तू का वर्गीकरण राज्यों का न होकर सरकारों का है (Aristotle's Classification is a Classification of Governments of States) :** प्रो० गार्नर ने कहा है – "अरस्तू ने राज्य तथा सरकार में कोई अन्तर नहीं किया। यह वर्गीकरण राज्यों का न होकर सरकारें का है।" यद्यपि उस समय राज्य और सरकार में कोई अन्तर नहीं था। यह भेद आधुनिक विचाराधारा का परिणाम है। बर्गेस का विचार है –"यदि हम राज्य तथा प्रभूसत्ता के स्थान पर शासन शब्द का प्रयोग कर लें तो अरस्तू का दिया गया वर्गीकरण उचित तथा प्रतिवादी प्रतीत होगा।"
6. **राज्य, संविधान तथा शासन में अन्तर नहीं (No Distinction Between State, Constitution and Government) :** अरस्तू ने राज्य व संविधान में कोई अन्तर नहीं किया है और अपने संविधानों के वर्गीकरण को ही राज्यों का वर्गीकरण बताया है। इससे स्पष्ट है कि अरस्तू राज्य, शासन व संविधान में कोई अन्तर नहीं किया है। यह अन्तर न करना आधुनिक दृष्टि से गलत है।
7. **मिश्रित सरकार के लिए कोई व्यवस्था नहीं (No place for mixed forms of Government) :** आधुनिक युग में सरकारों के मिश्रित रूप ज्यादा लोकप्रिय हो रहे हैं। भारत में संघात्मक लोकतन्त्रीय और संसदीय सरकारों का मिश्रणा है। इंग्लैण्ड में राजतन्त्र, प्रजातन्त्र और कुलीनतन्त्र का मिश्रण है। सरकार के ये मिश्रित रूप अरस्तू के वर्गीकरण में नहीं जाए जाते।
8. **प्रजातन्त्र सबसे बुरी सरकार नहीं (Democracy is not the wrost form of Government) :** अरस्तू ने लोकतन्त्र को भीड़तन्त्र कहते हुए सबसे बुरा बताया है। आधुनिक युग में प्रजातन्त्र ही सबसे प्रिय सरकार मानी जाती है। वह लोकतन्त्र को गरीब आदमियों की

सरकार कहता है। व्यावहारिक दृष्टि से अरस्तू का यह कथन सर्वथा गलत है। लोकतन्त्र में ही व्यक्ति को अपने नैतिक गुणों का विकास करने का सबसे अधिक अवसर मिलता है।

9. **आधुनिक राज्यों पर लागू नहीं (Not applicable to the Modern States) :** सीले के अनुसार – "अरस्तू का वर्गीकरण यूनान के नगर–राज्यों का वर्गीकरण है।" आधुनिक युग में राजतन्त्र तथा कुलीनतन्त्र जैसे शासन प्रणालियाँ मौजूद नहीं हैं। आधुनिक युग के संसदीय व अध्यक्षात्मक शासन को अरस्तू के वर्गीकरण के अन्तर्गत शामिल नहीं किया जा सकता। अतः यह आधुनिक दृष्टि से उपयोगी नहीं है।
10. रास के अनुसार अरस्तू ने व्यावसायिक आधार पर संविधान का वर्गीकरण करने का प्रयास तो किया लेकिन इसका स्पष्ट पूर्ण और विस्तृत विश्लेषण नहीं किया।
11. **राजतन्त्र का काल्पनिक चित्रण :** अरस्तू ने मेसोडिनिया के राजा फिलिप की शासन व्यवस्था से प्रभावित होकर कल्पना के आधार पर राजतन्त्र को ही सर्वश्रेष्ठ शासन घोषित किया है। अतः इसमें वास्तविकता का पुट नहीं है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद भी अरस्तू के इस योगदान को नकारा नहीं जा सकता कि राज्यों सम्बन्धी इतने विस्तृत व गहरे विश्लेषण का आज तक किसी भी विचारक ने अतिक्रमण नहीं किया है। अरस्तू ने ही सर्वप्रथम व्यवस्थित वर्गीकरण का प्रयास किया था। पोलिबियस, मैकियावेल्लि, बोंदा, मान्टेस्क्यू जैसे विचारकों ने अरस्तू से प्रेरणा ग्रहण की है। अरस्तू का वर्गीकरण का शाश्वत सत्य प्रस्तुत करता है। अरस्तू ने स्पष्ट किया है कि प्रत्येक शासन प्रणाली में उसके अन्त के बीज विद्यमान रहते हैं। जब स्थितियाँ बदल जाती हैं तो एक शासन प्रणाली की जगह दूसरी शासन प्रणाली ले लेती है। यह विचार शाश्वत महत्त्व का है। प्रो० रास की मान्यता है कि अरस्तू का वर्गीकरण आज भी सामान्यतः संविधानों के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए प्रयुक्त होता है। अरस्तू के वर्गीकरण के सिद्धान्त के आधार पर आज भी वैधानिक और निंरकुश संविधानों में अन्तर किया जाता है। अन्त में कहा जा सकता है कि अनेक त्रुटियों के बावजूद भी यह वर्गीकरण आधुनिक काल के लिए उपयोगी है।

2.11 सर्वोत्तम व्यावहारिक राज्य का सिद्धान्त : मिश्रित राज्य

(Theory of Best Practical State : Mixed State)

संविधानों का वर्गीकरण करने के बाद अरस्तू इस बात पर विचार करता है कि कौन – सा संविधान अधिकांश राज्यों के लिए अधिक मान्य हो सकता है और व्यावहारिक दृष्टि से अधिक उपयोगी हो सकता है। अरस्तू की नजर में ऐसा राज्य वही है जिसमें शासन सत्ता सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित हो। इसलिए वह प्लेटो के आदर्शवाद के विपरीत यर्थावादी धरातल पर उतर कर विचार करता है कि ऐसा राज्य काफी प्रयत्न से ढूँढा जा सकता है। ऐसा राज्य लोकतन्त्र तथा अल्पतन्त्र की तीव्रताओं को त्यागने से ही प्राप्त हो सकता है। इसलिए अरस्तू व्यावहारिक धरातल पर उतरकर समाज के लिए उपयोगी शासन प्रणाली का विकल्प तलाश करते हैं। यह उपयोगी व उत्तम शासन–प्रणाली मध्य मार्ग में ही प्राप्त हो सकती है। अरस्तू का मानना है कि अति के मार्ग की अपेक्षा मध्यमार्ग अधिक उपयोगी हो सकता है। अरस्तू ने मध्यम मार्ग को 'गोल्डन मीन' (Golden Dream) कहा है, जो परस्पर विरोधी तत्त्वों का औसत है। अरस्तू ने तो धनी वर्ग के शासन को श्रेष्ठ मानता है और न ही अति निर्धन एवं निर्बुद्धि लोगों के शासन को ही आदर्श मानता है। अरस्तू का विश्वास है कि मध्य वर्ग के लोग विवेकशील, व्यावहारिक, मैत्री–भाव वाले तथा स्वतन्त्र–प्रिय होते हैं। इन गुणों के आधार पर ही राज्य का स्थायित्व निर्भर करता है। अरस्तू की मूल धारणा यह है कि श्रेष्ठता मध्यमान में पाई जाती है, अतियों में नहीं। अरस्तू के विचारनुसार यह निष्कर्ष निकलता है कि वह राज्य जो मध्यम–वर्ग पर आधारित है, अवश्यम्भावी रूप से श्रेष्ठ होगा। अरस्तू का मानना है कि अमीर व्यक्ति अनुशासनहीन, अहंकारी व महत्त्वाकांक्षी होते है। दूसरी तरफ गरीब लोग हीनता की भावना से ग्रसित होते हैं। वे अपनीदास मनोवृत्ति के कारण विवेक का अनुसरण नहीं करते। निर्धनों में शासन करने की योग्यता नहीं होती। वे घृणा और द्वेष के पुजारी होते हैं। अतः न तो अत्यधिक अमीरों का शासन ही उचित है और नही अत्यधिक गरीबों का। इन दोनों वर्गों में परस्पर स्नेह न होने के कारण उनमें किसी तरह की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अरस्तू का विचार है कि इन दोनों वर्गों में परस्पर स्नेह न होने के कारण उनमें किसी तरह की

कल्पना भी नहीं की जा सकती। अरस्तू का विचार है कि इन दोनों वर्गों में एकता पैदा करने के लिए मध्यम–वर्ग का विकास करना जरूरी है। मध्यम वर्ग में सदैव मित्रता तथा समानता रहती है। अरस्तू इस मध्यम वर्ग के शासन को 'पॉलिटी' (Polity) का शासन कहता है। यद्यपि उत्कृष्टता की दृष्टि से पॉलिटी (सवैधानिक सरकार) का स्थान चौथा है फिर भी अरस्तू उसे 'सर्वोत्तम व्यावहारिक राज्य' मानता है। अरस्तू का कहना है कि – "राजनीतिक समाज का सर्वोत्तम रूप वह है जिसमें सत्ता मध्यम वर्ग में निहित हो।" ऐसा राज्य स्थायी, सुखी व समृद्ध राज्य होगा, जहाँ न तो कोई असमानता होगी और न ही कोई अराजकता तथा अशान्ति। इस प्रकार अरस्तू को 'पॉलिटी' के शासन में न तो धनी वर्ग व निर्धन वर्ग आपस में धन की कामना करते हैं और नही वे एक–दूसरे के विरूद्ध षड्यन्त्र करते हैं। अरस्तू स्वंय स्वीकार करता है कि अधिकांश राज्यों में या तो भीड़तन्त्र होता है या कुलीनतन्त्र। संयत प्रजातन्त्र (Polity) तो कम ही राज्यों में पाया जाता है। फिर भी राजनीतिक व मानवीय जगत् की वास्तविकताओं की दृष्टि से 'पॉलिटी' एक उत्तम व्यावहारिक शासन है।

मध्यवर्गीय शासन के पक्ष में तर्क (Arguments for Middle-Class Rule)

अरस्तू उस शासन–प्रणाली को सर्वोत्तम मानता है जिसमें मध्यम–वर्ग की प्रधानता हो अर्थात् एक मिश्रित राज्य हो। अरस्तू अपने मिश्रित राज्य के पक्ष में निम्न तर्क प्रस्तुत करता है :–

1. **धनी या निर्धन वर्ग का राज्य दूषित होता है :** अत्यधिक निर्धन तथा धनी व्यक्तियों की प्रवृत्ति धूर्ततापूर्ण कार्यों की ओर होती है। ये दोनों वर्ग आपराधिक प्रवृत्ति के होते हैं। इनमें विवेक का ज्ञान का अभाव होता है। अतः जिस राज्य में इनका बाहुल्य होता है। वह राज्य दूषित होता है।
2. **मिश्रित राज्य स्वतन्त्र होते हैं (Mixed State is an Independent State)** : धनी वर्ग अनुशासनहीन व अवज्ञाकारी होता है और निर्धन वर्ग हीनता की भावना के कारण दास मनोवृत्ति से ग्रसित रहते हैं जिसके वे अच्छे शासक नहीं बन सकते। अतः

जिस राज्य में केवल इन्हीं दो वर्गों की प्रधानता हो वह राज्य स्वतन्त्र मनुष्यों का राज्य बनने की बजाय केवल दासों और स्वामियों का ही राज्य होता है।

3. **मध्यमवर्ग धनी और निर्धन वर्गों का विश्वासपात्र होता है (Middle Class is Trustworthy) :** अरस्तू का विचार है कि धनी और निर्धन दोनों ही वर्ग मध्यम–वर्ग पर समान रूप से विश्वास करते हैं, लेकिन वे एक–दूसरे पर विश्वास नहीं करते। इस प्रकार धनी–निर्धन के झगड़ों से समाज का कभी भी भला नहीं हो सकता। अतः मध्यम–वर्ग ही धनी–गरीब के मतभेदों को समाप्त करने में अहम् भूमिका निभा सकता है।

4. **मिश्रित राज्य संघर्षमुक्त, स्थायी और सुरक्षित होते हैं (Mixed State is Free of Conflict; Stable and Safe) :** दासों और स्वामियों में विभाजित राज्यों में निर्धनों से सम्पन्न व्यक्तियों के प्रति द्वेष–भावना उत्पन्न होती है और धनी लोग गरीबी से घृणा करते हैं। ऐसे में राज्य में कलह और संघर्ष की भावना का विकास होता है जिससे उस राज्य की शान्ति और एकता की भावना नष्ट होती है। अतः मध्यम वर्ग वाला राज्य ही अधिक स्थिर व सुरक्षित रहता है।

5. **मिश्रित राज्य विधिकर राज्य है (Rule ofLaw) :** व्यावहारिक दृष्टि से अरस्तू किसी व्यक्ति या व्यक्तियों की सम्प्रभूत्ता में विश्वास नहीं रखता तथा विधि की सम्प्रभूत्ता और शासन समझता है। मिश्रित राज्य कानून पर आधारित राज्य होता है जिसे अरस्तू सर्वोत्तम मानता है।

6. **मिश्रित राज्य समानता पर आधारित होता है (Equality) :** राज्य का मुख्य लक्ष्य समाज में व्याप्त विषमताओं का अन्त करके समान्ता स्थापित करना है। जिस राज्य में मध्यम–वर्ग की प्रधानता रहती है, वहाँ विषमताओं का अन्त करके समानता पर आधारित समाज की स्थापना का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

7. **सामाजिक न्याय पर आधारित होता है (Social Justice) :** अरस्तू का मिश्रित राज्य कुलीनतन्त्र व भीड़तन्त्र दोनों के दोषों से मुक्त होता है। इसमें अमीर–गरीब का कोई भेद नहीं रहता। शासन स्वर्मिण मध्यमार्ग पर टिका होता है। इसलिए

सामाजिक अन्याय की गुंजाइश ही नहीं रहती। अतः मध्यमार्ग पर आधारित राज्य सामाजिक न्याय का संस्थापक होता है।

8. मध्यमवर्ग का शासन उत्तरदायी शासन होता है। इसमें जनता की भावनाओं का पूरा ख्याल रखा जाता है।

इन सब कारणों से अरस्तू मध्यमवर्ग पर आधारित शासन व्यवस्था को श्रेष्ठ मानता है। इसमें दोनों शासन प्रणालियों (भीड़तन्त्र व कुलीनतन्त्र) के दोषों से छुटकारा मिल जाता है। इसलिए व्यावहारिक दृष्टि से भी यह अधिक उपयोगी रहती है। अतः ऐसी शासन–व्यवस्था ही सुरक्षा, सुव्यवस्था और स्थिरता की दृष्टि से सबसे अधिक उपयुक्त होती है।

शासन प्रणालियों का श्रेष्ठता क्रम

अरस्तू के मतानुसार वही शासन व्यवस्था सबसे अच्छी है जिसमें सम्प्रभूता मध्यम वर्ग में निहित है। अरस्तू ने ऐसी शासन व्यवस्था को शुद्ध जनतन्त्र (Polity) का नाम दिया है। अरस्तू का निष्कर्ष व्यावहारिकता पर आधारित है, सैद्धान्तिकता पर नहीं। सैद्धान्तिक दृष्टि से तो अरस्तू राजतन्त्र को ही श्रेष्ठ मानता है। उत्कृष्टता की दृष्टि में 'पॉलिटी' का चौथा स्थान है। अरस्तू ने उत्कृष्टता के क्रम में सरकारों या शासन प्रणालियों का निम्न वर्गीकरण किया है :–

1. आदर्श राजतन्त्र (Ideal Royalty)
2. विशुद्ध कुलीनतन्त्र (Pure Aristocracy)
3. मिश्रित कुलीनतन्त्र (Mixed Aristocracy)
4. शुद्ध जनतन्त्र (Polity)
5. अधिकतम उदार जनतन्त्र (Most Moderate Democracy)
6. अधिकतम उदार धनिकतन्त्र (Most Moderate Oligarchy)
7. जनतन्त्र और धनिकतन्त्र के बीच दो प्रकार (Two Forms in between Democracy and Oligarchy)
8. अतिवादी जनतन्त्र (Exreme Democracy)

9. अतिवादी धनिकतन्त्र (Extreme Oligarchy)

10. निरंकुशतन्त्र (Tyranny)

इस श्रेष्ठता क्रम से स्पष्ट है कि प्राथमिकता की दृष्टि से शुद्ध जनतन्त्र चौथे स्थान पर है लेकिन व्यावहारिकता के आधार पर यह सबसे अच्छी व्यवस्था है क्योंकि इसमें संख्या और सद्‌गुण दोनों का अच्छा मिश्रण और सन्तुलन है। यह शासन पद्धति जनतन्त्र के अनुसार नागरिकों की संख्या को तथा कुलीनतन्त्र के अनुसार उनके विभिन्न सद्‌गुणों को उचित महत्त्व देती है। इसमें उग्र वर्गों का आधिपत्य समाप्त हो जाता है। यह शासन प्रणाली दोनों शासन के गुणों का समन्वित रूप है। इसमें संघर्ष और क्रान्ति की सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। यह स्थायी और सर्वोत्तम शासन प्रणाली है।

अरस्तू का मानना है कि राज्य के विभिन्न कार्यों को करने के लिए शासन व्यवस्था के तीन अंग होने चाहिए। ये तीन अंग –राजनीति का निर्धारण करने वाला अंग विधायी, उसे कार्यान्वित करने वाला अंग कार्यकारी तथा न्याय प्रदान करने वाला अंग न्यायिक होने चाहिए। विधायी कार्यों को सम्पन्न करने के लिए नागरिकों की एक लोकप्रिय सभा होनी चाहिए। कार्यकारी कार्यों को सम्पन्न करने क लिए प्रशासकों का एक वर्ग होना चाहिए जो विधायिका द्वारा निर्मित कानून के अनुसार शासन संचालन का कार्य करे तथा न्यायिक कार्य करने हेतु एक न्याय व्यवस्था होनी चाहिए। इन अंगों में पदाधिकारियों की नियुक्ति के बारे में अरस्तू का विचार है कि अतिवादी या भ्रष्ट जनतन्त्र के अनुसार सभी प्रकार के पदों पर नियुक्त किए जाने की प्रथा उचित नहीं है। इससे राज्य की दक्षता, स्थिरता और एकता नष्ट होती है। अतः विभिन्न शासकीय अंगों में नियुक्ति की वही प्रथा अच्छी समझी जाती है जहाँ पर विभिन्न पदों की नियुक्ति हेतु नागरिकों के लिए सम्पत्ति तथा अन्य प्रकार की योग्यताएँ निर्धारित की जाती हैं और उनकी पूर्ति करने वाले नागरिकों को उन पर नियुक्त किया जाता है।

आलेचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation)

प्रो० मैक्सी के अनुसार – "अरस्तू के मध्यवर्गीय शासन के सिद्धान्त की सैद्धान्तिक स्तर पर सत्यता विवादास्पद हो सकती है, क्योंकि मध्यर्वीय शासन सामान्यतः राज्य की नींव के लिए कोई उज्जवल आदर्श नहीं है।" इस आलोचना का कोई विशेष आधार नहीं है। इसलिए अरस्तू का मिश्रित राज्य का सिद्धान्त भीड़तन्त्र तथा कुलीनतन्त्र के वर्गगत् दोषों को दूर करने का सर्वोत्तम प्रयास है। यह सन्तुलित और स्थिर शासन–व्यवस्था का आधार है। अरस्तू ने तत्कालीन यूनानी राज्यों में व्याप्त बुराइयों को दूर करने के लिए इसका प्रतिपादन किया था। उस समय धनी वर्ग स्वार्थ – सिद्धि में लगा हुआ था। गरीब वर्ग भी शासन में भागीदार बनने पर सत्ता का प्रयोग अमीरों के विरूद्ध करता था। इस प्रकार समाज में संघर्ष की स्थिति थी। अरस्तू ने तत्कालीन यूनानी समाज को वर्ग – संघर्ष और अशान्ति से छुटकारा दिलाने के लिए मिश्रित राज्य के सिद्धान्त की योजना प्रस्तुत की थी। यद्यपि यह सिद्धान्त अपनी भी कुछ त्रुटियों का शिकार था लेकिन इसके बावजूद भी इस सिद्धान्त को तत्कालीन यूनान में ही नहीं, बल्कि आधुनिक युग में भी महत्त्व दिया गया है। यह मध्यम वर्ग को जनतन्त्र की रीढ़ बताकर मिश्रित राज्य को सर्वोत्तम व्यावहारिक राज्य का दर्जा देता हैं ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि मध्यवर्ग के लोगों का शासन अधिक स्थायी, टिकाऊ और सुशासित राजनीतिक समाज की स्थापना करने में अग्रणी रहा है। यदि हमें आधुनिक युग में लोकतन्त्र को सुरक्षित बनाना है तो हमें अरस्तू के सर्वोत्तम व्यावहारिक राज्य की नींव मजबूत बनाना होगा और राजनीतिक चिन्तन में अरस्तू के इस योगदान को महत्त्वपूर्ण रूप से स्वीकारना होगा।

2.12 आदर्श राज्य की अवधारणा (Conception of Ideal State)

अरस्तू वैसे तो वैधानिक जनतन्त्र (Polity) को ही अच्छा मानता है, लेकिन कुछ परिस्थितियों ऐसी होती है जहाँ वैधानिक जनतन्त्र का विकास सम्भव नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में सर्वोत्तम आदर्श है। सर्वोत्तम राज्य का उद्देश्य उत्तम जीवन की प्राप्ति होता है। उत्तम जीवन का अर्थ आनन्दमय जीवन से है जो आत्मानुभूति पर आधारित है। उत्तम जीवन एक

चिन्तात्मक जीवन है। अरस्तू ने उत्तम जीवन के लिए आवश्यक विशेष प्रकार की परिस्थितियों को आदर्श राज्य कहा है। प्लेटो ने जिस आदर्श राज्य की अवधारणा को प्रतिपादित किया था, आगे चलकर अरस्तू ने उसे ही विकसित करने का प्रयास किया है। अरस्तू ने अपनी महान् रचना 'Politics' की सातवीं व आठवीं पुस्तक में आदर्श राज्य का सुन्दर चित्रण किया है। अरस्तू ने आदर्श राज्य की अवधारणा पर यथार्थवादी एवं व्यावहारिक ढंग से प्रस्तुत किया है। इसलिए अरस्तू का आदर्श राज्य प्लेटो द्वारा 'रिपब्लिक' में वर्णित आदर्श राज्य से सर्वथा भिन्न है। 'रिपब्लिक' में वर्णित प्लेटो का आदर्श राज्य जहाँ सिर्फ अयथार्थवादी काल्पनिक सिद्धान्तों पर आधारित है, वहाँ प्लेटो का आदर्श राज्य जीवन की वास्तविकता से सम्बन्ध रखता है। इस प्रकार अरस्तू का आदर्श राज्य प्लेटो द्वारा 'लॉज' में वर्णित 'द्वितीय उत्तम राज्य' से अलग है। सेबाइन के अनुसार – "जिसे अरस्तू आदर्श राज्य मानता है वह प्लेटो का उपादर्श या द्वितीय सर्वश्रेष्ठ राज्य है।" इसका अर्थ यह है कि अरस्तू का आदर्श राज्य प्लेटो के उपादर्श राज्य का ही संशोधित संस्करण है।" सिन्क्लेयर के अनुसार – "अरस्तू वहाँ से प्रारम्भ करता है जहाँ से प्लेटो छोड़ देता है।

आदर्श राज्य के उद्देश्य (Objectives of the Ideal State)

अरस्तू के अनुसार आदर्श राज्य का उद्देश्य "उत्तम जीवन की उपलब्धि है तथा ऐसे जीवन की प्राप्ति के लिए आवश्यक भौतिक और आध्यात्मिक साधनों की व्यवस्था करना है।" उत्तम जीवन की परिभाषा देते हुए बार्कर कहता है – "एक ऐसा जीवन जो उत्तम कार्य और उत्तम आचरणों से गढ़ा जाता है। नैतिक और बौद्धिक सद्गुण ही उत्तम जीवन का निर्माण करते है।" ऐसा जीवन, जो व्यक्ति को भौतिक, नैतिक औ आत्मिक सम्पन्नता प्रदान करता हो, प्राप्त करना आदर्श राज्य का उद्देश्य होना चाहिए। अरस्तू का कथन है – "जो राज्य स्वयं अपनी जीवन को और नागरिकों के जीवन को इन श्रेष्ठ तत्त्वों से परिपूर्ण कर सकता है, वही आदर्श राज्य कहाँ जा सकता है।"

अरस्तू के आदर्श राज्य का स्वरूप और रचना (The Form andStructure of Aristotle's Ideal State)

1. **राज्य की जनसंख्या (Population of the State) :** अरस्तू ने आदर्श राज्य के लिए सन्तुलित जनशक्ति पर जोर दिया है। अरस्तू का कहना है कि राज्य की महानता नागरिकों की संख्या में नहीं, बल्कि उनके गुणों में होती है। दासों और विदेशियों से भरा हुआ अत्यधिक जनसंख्या वाला राज्य श्रेष्ठ नहीं हो सकता। अरस्तू कहता है कि राज्य की महानता उसके नागरिकों द्वारा कर्त्तव्य पालन में होती है। जिस प्रकार हियोक्ट्रीज अपने शरीर के कारण नहीं, बल्कि अपनी गुणात्मक योग्यता के कारण प्रसिद्ध था, उसी पर एक राज्य अपनी क्षमताओं अर्थात् नागरिकों की कर्त्तव्यपरायणता और अन्य चरित्र के कारण महान् बनाता है, आबादी के कारण नहीं। आबादी इतनी होनी चाहिए कि राज्य आत्मनिर्भर बन सकें और प्रशासनिक कार्यों में कोई असुविधा उत्पन्न न हो। इसलिए सबसे अच्छा राज्य वहीं होगा जिसमें जनसंख्या और व्यवस्था में आपसी तालमेल और सामंजस्य हो। अतः जनसंख्या न तो ज्यादा होनी चाहिए और न ज्यादा कम।

2. **राज्य का आकार (The Size of State) :** अरस्तू का मानना है कि भौगोलिक दृष्टि से बहुत अधिक विस्तृत राज्य महान् राज्य नहीं होता। इसलिए राज्य का भू–भाग न बहुत बड़ा हो और न बहुत छोटा। उसका विस्तार इतना अवश्य हो कि वह निवास करने वालों की आवश्यकता पूरी कर संयम और उदारतापूर्वक जीवन व्यतीत कराने में सक्षम हो। परन्तु उसका क्षेत्रफल इतना ही बड़ा हो कि वह आसानी से नजर आ सके। राजय एक आत्मनिर्भर समाज होता है। उसका विस्तार व जनसंख्या इतनी जरूर होनी चाहिए कि राज्य आत्मनिर्भर बन सके। राज्य की भूमि उपजाऊ हो ताकि अन्न के मामले में आत्मनिर्भरता हो सके। भू– भाग शहरी और ग्रामीण क्षेत्र में बँटा होना चाहिए। इससे राज्य में एकता की भावना बढ़ेगी और राज्य की आत्मरक्षा की क्षमता भी बढ़ेगी। अरस्तू का कहना है कि – "चहुँमुखी विकास के लिए बहुत जनशक्ति विस्तृत सीमा की आवश्यकता नहीं होती। इसके लिए सन्तुलित

जनसंख्या और विस्तार की आवश्यकता होती है जिसमें शान्ति व व्यवस्था की आसानी से कायम रखा जा सके तथा लोगों के बीच व्यक्तित्व सम्बन्ध स्थापित हो सके। विस्तार नाप–तौल के योग्य हो तथा सुरक्षा की आवश्यक योजना तैयार की जा सके, उसका सम्बन्ध राजधानी से और मुख्य सुरक्षा शक्ति से जोड़ा जा सके। उसकी आर्थिक स्थिति मजबूत हो।" राज्य का स्थान समुद्र और स्थल दोनों के निकट अवस्थित होना चाहिए जिससे वहाँ जल और थल दोनों मार्गों की सुविधा हो।

3. **राज्य का आर्थिक स्वरूप (The Economic Structure of the State) :** अरस्तू ने राज्य को समुद्र के निकट होने के श्रेयस्कर माना है। इससे व्यापारिक व यातायात की सुविधा रहती है। शत्रु पर हमला होने की सुविधा रहती है। आयात–निर्यात की दृष्टि से समुद्र के निकट के राज्य लाभ में होते हैं। अरस्तू का मानना है कि राज्य में नौ–सैनिक शक्ति भी आत्म–रक्षा की दृष्टि से जरूरी होती है। अरस्तू प्रत्येक नागरिक के लिए व्यक्तिगत सम्पत्ति आवश्यक मानता है लेकिन भूमि पर वह शासक वह सैनिक वर्ग का स्वामित्व चाहता है। वह भूमि का स्वामित्व व कब्जा अलग–अलग वर्गों के हाथ में सौंपता है। वह कहता है कि सही किसान खेत का मालिक नहीं होना चाहिए। अरस्तू कहता है – "भूमि का मालिक केवल नागरिक बन सकता है क्योंकि यदि नागरिक वर्ग खेत जोटेंगे तो उन्हें परिश्रम के अनुसार हिस्सा मिलेगा और परिश्रम के लिए उन्हें दासों और सर्फों को लगाना होगा जो अधिक परिश्रम कर थोड़ा हिस्सा मिलने पर असन्तोष व्यक्त करेंगे और समाज में अशान्ति पैदा हो जाएगी।" अरस्तू का कहने का तात्पर्य यह है कि दास और कृषक तो खेतों में कार्य करेंगे तथा खेत के मालिक अवकाश करेंगे जिससे इनको नागरिकों के रूप में बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास के लिए पर्याप्त समय प्राप्त होगा।

4. **राज्य का सामाजिक स्वरूप (The Social Structure of the State) :** अरस्तू के राज्य में पूर्ण अंग नागरिक और आवश्यक साधन के रूप में प्रयुक्त नागरिक दो प्रकार के निवासी हैं। ये दोनों निवासी एक – दूसरे के पूरक हैं। उदाहरण के लिए सम्पत्ति राज्य

संचालन का एक साधन है, अंग नही। यह नागरिकों से अलग वस्तु है। इसमें जीव और निर्जीव दोनों ही वस्तुएँ शामिल हैं। दास और सर्फ सम्पत्ति के अन्तर्गत आते हैं, परन्तु वे नागरिक नहीं हैं। अरस्तू के अनुसार – "भोजन की व्यवस्था, कला और दस्तकारी को प्रोत्साहन, सुरक्षा, सम्पत्ति के कुल प्रकारों का संचय, देवाराधना, लोकहित और व्यक्तिगत हित के मध्य निर्णय की व्यवस्था – ये छः प्रकार के राजकीय कार्य हैं। एक सक्षम राज्य वह होता है जो इन सेवाओं को उपलब्ध करा सके। इन सेवाओं की उपलब्धि के लिए राज्य में श्रम का विभाजन इस प्रकार होना – खेती और दस्तकारी का कार्य सहायक वर्ग अर्थात् दास और सर्फ तथा बाकी के चार – चार कार्य नागरिक करेंगे। सुरक्षा, सार्वजनिक आराधना और न्याय का कार्य सभी नागरिक अपनी आयु के अनुसार अलग–अलग करेंगे अर्थात् सभी नागरिक आयु के अनुसार सैनिक, प्रशासक, न्यायधीश, विधायक और पुरोहित बन सकेंगे। इस प्रकार के कार्यों को करने वाले नागरिकों के पास सम्पत्ति का होना आवश्यक है ताकि वे अपना आत्मिक विकास राजनीतिक कार्यों का सम्पादन सरलता से कर सकें।

5. **नागरिकों का चरित्र (Character of Citizens) :** अरस्तू का कहना है कि राज्य के कार्यों को करने के लिए सद्गुणी नागरिकों का होना जरूरी है। अपने कार्यों को करने के लिए नागरिक का बुद्धिमान व साहसी होने के साथ–साथ इन गुणों में समन्वय का होना भी जरूरी है। अरस्तू मानव स्वभाव के अनुसार नागरिकों को तीन भागों में बाँटता है। अरस्तू की मान्यता है कि जलवायु का भी मानव–स्वभाव पर प्रभाव पड़ता है। उसका मानना है कि शीत प्रधान यूरोप के निवासियों में साहस व शौर्य का गुण तो होता है लेकिन उनमें विवेक और कौशल की भी होती है। अतः उनका उचित राजनीतिक विकास नहीं हो पाता। एशिया की गर्म जलवायु में रहने वाले लोग दूरदर्शी तो होते हैं, परन्तु साहसी नहीं होते। यूनान इन दोनों के बीच में बसा हुआ है, इसलिए यूनानियों में इन दोनों के गुणों का समावेश है। इसलिए यूनानियों की तरह सफल और समर्थ नागरिक बनने के लिए इन दोनों के गुणों का समावेश

जरूरी है जिससे उनमें एकता और सहयोग की भावना विकसित हो सके। ऐसे उच्च आदर्श वाले ही आदर्श राज्य के आधार होते हैं।

6. **विवाह (Marriage) :** अच्छे स्वास्थ्य के लिए विवाह का राज्य द्वारा नियमन आवश्यक है। अरस्तू के अनुसार स्त्री – पुरूष को मेल उचित व परिपक्व आयु में ही होना चाहिए। इसके लिए राज्य को विवाह की आयु तय करनी चाहिए ताकि वृद्धों व अल्पायु वालों को विवाह से रोका जा सके। विवाह के समय स्त्री की आयु 18 वर्ष और पुरूष की आयु 37 वर्ष से जनसंख्या वृद्धि रोकने के लिए गर्भपात का कानून होना चाहिए। स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए स्त्री–पुरूष दोनों को शारीरिक व्यायाम करना चाहिए।

7. **विधि की सम्प्रभुता (Sovereignty of Law) :** अरस्तू के अनुसार आदर्श राज्य वही हैं जहाँ कानून की सम्प्रभुता स्थापित है। यह नागरिकों की समानता का द्योतक है क्योंकि उसका आधार मानवीय विवेक और उसी उपज रिति–रिवाज और जन परम्पराएँ हैं। विधि की सम्प्रभुता का समर्थन अरस्तू आदर्श राज्य में क्रान्ति की सम्भावना समाप्त करने के लिए करता है। अरस्तू कहता है कि विधि के शासन की कोई भी ज्ञानवान व्यक्ति या दार्शनिक बराबरी नहीं कर सकता। अतः आदर्श राज्य में कानून ही सम्प्रभु होना चाहिए।

8. **शिक्षा (Education) :** अरस्तू आदर्श राज्य के निर्माण के लिए शिक्षा को आवश्यक मानता है। राज्य का स्थायित्व शिक्षा पर ही निर्भर करता है। अरस्तू के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को विवेकी और गुणी बनाना है। अरस्तू के अनुसार शिक्षा नागरिकों के चरित्रों को संविधान के ढाँचे के अनुरूप ढालती है। अरस्तू की शिक्षा का उद्देश्य नागरिकों का सर्वांगीण विकास करना है। शिक्षा से ही नागरिक आज्ञा पालन करना और शासन करना सीखते हैं। अरस्तू शिक्षा को तीन चरणों में बाँटकर 21 वर्ष तक चलाता है। इस शिक्षा क्रम में नागरिक, गुणी, विनम्र, उदार, साहसी, आत्मसंयमी, न्यायप्रिय और नियमपालक हो जाता है। अरस्तू व्यक्ति के लिए नैतिक , सैनिक, बौद्धिक, शारीरिक शिक्षा का प्रावधान करता है।

9. **अन्य वयवस्थाएँ (Other Requirements) :** अरस्तू का कहना है कि राज्य को बाह्य आक्रमणों से बचाने के लिए सुरक्षा के अच्छे साधन होने चाहिएं। राज्य में जल, सड़कों और किलों की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए। इनके अतिरिक्त परिषद् होनी चाहिए जिसके सामने शासन के सभी निर्णय प्रस्तुत किए जाने चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रशासनिक अधिकारियों व न्यायपालिका की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

उपर्युक्त विवरण से यह स्वष्ट हो जाता है कि प्लेटो की तरह अरस्तू का आदर्श राज्य का विवरण काल्पनिक न होकर यथार्थवादी है अरस्तू का कहना है कि अच्छा राज्य वही है जो अतियों (Extremists) से बचता हुआ अपने आप को निर्मित करने वाले लोगों की चारित्रिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखता है और उन्हें सद्गुणयुक्त जीवन – निर्वाह के साधन और अवसर प्रदान करता है और इस तरह उनके जीवन को आनन्ददायक व आदर्श बनाता है।

आदर्श राज्य की आलोचना (Criticism of Ideal State)

1. **मौलिकता का अभाव (Lack of Orginality)** : अरस्तू से पहले भी प्लेटो ने आदर्श राज्य पर अपने विचार दिए हैं। अरस्तू ने प्लेटो के विचारों को तर्कसंगत और स्पष्ट करने के लिए उसके स्वरूप में परिवर्तन कर दिया है। अतः अरस्तू आदर्श राज्य के सिद्धान्त का परिमार्जक है, मौलिक निर्माता नहीं।
2. **अरस्तू का आदर्श राज्य का विचार अस्पष्ट है (Aristotle's Concept of Ideal State is not Clear)** : अरस्तू ने आदर्श राज्य के लिए कोइनोनिय (Koinonia) शब्द का प्रयोग किया है जिसके अनुसार सभी व्यक्ति समान होने चाहिए। क्योंकि इस शब्द का अर्थ 'साँझेदारी' के रूप में होता है। परन्तु अरस्तू के राज्य में या राजनीतिक साँझेदारी में सभी स्त्री– पुरूष समान नहीं हैं। राज्य स्वामी और दास तथा स्त्री व पुरूष में असमानता को परिलिखित करता है। अरस्तू स्वामियों को दासों का शोषण करने की छूट देता हैं अरस्तू के आदर्श राज्य में कहीं भी स्पष्टता नहीं है। अतः अरस्तू के विचार अस्पष्ट हैं।

3. **आदर्श राज्य में एकता और राज्य की सर्वोपरिता के सिद्धान्तों को जोड़ने का असफल प्रयास है (There is an Unsuccessful Attempt to Reconcile the Principles of Unity in Diversity and the Hegemony of the State)** : अरस्तू एक तरफ तो अपने राज्यों को फलने – फूलने देता है क्योंकि राज्य में अत्यधिक एकरूपता स्वयं राज्य के अस्तित्व के लिए घातक हो जाती है। दूसरी ओर मजदूर, सर्फ और दास वर्ग को कृषि और शारीरिक श्रम के सिवाय आत्मिक और बौद्धिक विकास को कोई अवसर नहीं दिया जाता। दास नागरिकों की उसकी तरह सम्पत्ति है, जैसे कुत्ते, बिल्ली, बैल। शिक्षा के क्षेत्र में राज्य का पूर्ण नियन्त्रण है। राज्य के विरूद्ध व्यक्ति कुछ करने का अधिकारी नहीं है, फिर भी यह कैसी अनेकता है।

4. **अरस्तू का आदर्श राज्य प्लेटो का उपादर्श राज्य है :** अरस्तू ने प्लेटो के 'लॉज' की नकल करके ही छोटे–मोटे परिवर्तनों के साथ अपने आदर्श राज्य का चित्रण किया है। राज्य की जनसंख्या, विस्तार, आर्थिक और सामाजिक स्थिति, समुद्र से दूरी, कानून की सम्प्रभुता आदि तत्त्व प्लेटो को उपादर्श राज्य में भी विद्यमान हैं।

5. **अरस्तू ने आदर्श राज्य को सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया बल्कि राज्य के गुणों का वर्णन किया है :** अरस्तू ने राज्य के उद्देश्य, अच्छाई, उत्तमता, आनन्द और सुखमय जीवन की कल्पना 'पोलिटिक्स' की 7 वीं पुस्तक के प्रथम दो अध्यायों में की है और उसने बाह्य उत्थान की उपेक्षा चेतना के विकास तथा उच्चतम नैतिकता की उपलब्धि पर जोर दिया है। उसने राज्य के व्यावहारिक स्वरूप का जो चित्र तीसरी, पाँचवी तथा छठी पुस्तक में खींचा है, वहाँ ये सारे आदर्श लुप्त हो जाते हैं।

6. **अव्यावहारिक :** अरस्तू जैसे – जैसे सैद्धान्तिक से व्यावहारिकता की तरफ बढ़ता है तो उसकी व्यावहारिकता शून्य होती जाती है। इसका उदाहरण उसका ग्रन्थ 'पालिटिक्स' है। उसने इसकी तीसरी पुस्तक आदर्श राज्य की भूमिका के रूप में लिखी लेकिन उसकी सातवीं व आठवीं पुस्तक के अध्ययन से पता चलता है कि उसकी सारी योजना असन्तोषजनक थी, इसलिए उसने आदर्श राज्य की योजना को पूरा नहीं किया। यह उसकी अव्यावहारिकता का ही उदाहरण है।

7. **आयु के अनुसार वर्ग और कार्य विभाजन :** अरस्तू ने कार्य – विभाजन का आधार आयु को बनाया है। एक नागरिक युवावस्था में सैनिक का, प्रौढ़ावस्था में शासक का तथा वृद्धावस्था में पुरोहित का कार्य करेगा तो इससे एक आयु वर्ग में कार्य करने वालों की संख्या आवश्यकता से अधिक हो जाएगी जिससे अव्यवस्था पैदा होगी। इससे विशेषज्ञों का भी अकाल पड़ जाएगा क्योंकि सभी व्यक्ति सभी कार्यों के जानकार होंगे।

8. **आदर्श राज्य नैतिकता, उत्तमता और विवेक की कोई निश्चित परिभाषा नहीं है :–** अरस्तू का कहना है कि जो नैतिक है, सुखी है। राज्य का उद्देश्य उत्तमता है क्योंकि उत्तमता में ही आनन्द है। नैतिकता, सुख और उत्तमता निरपेक्ष गुण नहीं है। ये समयानुसार बदलते हैं। अतः इनको परिभाषित करना आवश्यक होता है। अतः अरस्तू के आदर्श में इनको स्पष्ट नहीं किया गया है।

उपर्युक्त आलोचनाओं से स्पष्ट है कि अरस्तू का आदर्श राज्य का विचार न तो वैज्ञानिक है और न ही व्यावहारिक। लेकिन वह एक सच्चा यूनानी होने के नाते जिस आदर्श राज्य का वर्णन करता है, वह पृथ्वी पर प्राप्त किया जा सकता है। अरस्तू ने आदर्श राज्य का मौलिक चिंतक न होते हुए भी इस विचार के कारण यूनान में काफी प्रसिद्धि प्राप्त की है। यही कारण है कि आज भी अनेक विद्वान अरस्तू को प्लेटो को आदर्श राज्य के परिमार्जक के रूप में देखते हैं।

2.13 सम्पत्ति पर विचार (Views on Property)

अरस्तू ने प्लेटो के सम्पत्ति के साम्यवाद की आलोचना करते हुए अपने सम्पत्ति पर विचारों को व्यक्त किया है। अरस्तू द्वारा प्लेटो के सम्पत्ति के साम्यवाद की आलोचना में काफी सच्चाई है। सम्पत्ति सम्बन्धी विचार अरस्तू ने 'पॉलिटिक्स' की प्रथम पुस्तक के तीन अध्यायों में व्यक्त किए हैं। अरस्तू निजी सम्पत्ति को अनिवार्य मानता है। अरस्तू का कहना है कि निजी सम्पत्ति के बिना व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास नहीं हो सकता। यह व्यक्ति के आनन्द का स्त्रोत है और उसे अनेक उत्तम व नैतिक कार्य करने के अवसर प्रदान

करती है। यदि व्यक्ति को निजी सम्पति से वंचित किया जाए तो उससे राज्य को ही हानि होगी।

सम्पति का अर्थ (Meaning of Property)

सम्पत्ति को परिभाषित करते हुए अरस्तू ने लिखा है – "सम्पत्ति उन वस्तुओं का संग्रह है जो राज्य या परिवार में जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यक व उपयोगी होती है।" अरस्तू ने इसे मानव – जीवन को आनन्ददायक बनाने वाला साधन माना है। वह लिखता है – "सम्पत्ति परिवार व राज्य में प्रयोग किए जाने वाले साधनों या उपकरणों का संग्रह है।" सम्पत्ति के अन्तर्गत वे सारी वस्तुएँ आ जाती हैं जो परिवार के सदस्यों के दैनिक जीवन के लिए आवश्यक है। अरस्तू के अनुसार – "सम्पत्ति परिवार का अंग होती है तथा सम्पत्ति प्राप्त करने की कला गृह प्रबन्ध का एक अंग होती है।"

सम्पत्ति का औचित्य (Justification for Property)

अरस्तू निजी सम्पत्ति का प्रबल समर्थक है। उसने इसके पक्ष में निम्न तर्क प्रस्तुत किए हैं :

1. **सम्पत्ति नैतिक और आध्यात्मिक वस्तु है (Property is Related with Morality and Spiritutality)** : अरस्तू के अनुसार सम्पत्ति मानव में सहनशीलता, सद्भावना, उदारता, भ्रातृभाव आदि के सद्गुण उत्पन्न करती है। अरस्तू कहता है – "न्यायपरायण्ता कुछ निजी सम्पत्ति की पूर्व कल्पना करती है।"
2. **सम्पत्ति अनिवार्य है (Property is inevitable)** : अरस्तू सम्पत्ति को परिवार के अस्तित्व और समुचित कार्यान्विति क लिए मानव में सद्गुणों का विकास करने वाली वस्तु मानता है। यह जीविका है। यह राज्य या परिवार के लिए आवश्यक निर्जीव उपकरणाों का संचयन है।
3. **आनन्द प्राप्ति का साधन (Means of Pleasure)** : अपने घर में रहने और भोजन प्राप्त करने का जो आनन्द है वह न तो किराए के मकान में रहने और न होटल में भोजन करने से प्राप्त हो सकता है। आत्म–सम्मान निजी सम्पत्ति पर ही निर्भर है। निजी सम्पत्ति व्यक्ति के व्यक्तित्व का दर्पण है।

4. **निजी सम्पत्ति व्यक्ति को अवकाश प्रदान करती है (Private property provides rest to his Owner)** : अरस्तू का कहना है कि सम्पत्तिहीन व्यक्ति नागरिक कार्यों में भाग नहीं ले सकता क्योंकि उसके पास अवकाश नहीं होता। अरस्तू कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति विशेष हित के कारण ही अपने कार्य का पूरा ध्यान देता है। सम्पत्ति के निजी स्वामित्व में जो उत्पादन व अवकाश सम्भव है वह उसके सार्वजनिक स्वामित्व में नहीं।

सम्पत्ति के प्रकार (Kinds of Property)

अरस्तू के अनुसार सम्पत्ति दो तरह की होती है :–

1. **सजीव सम्पत्ति (Animate Property)** : इसमें दास, गाय, बैल, घोड़े, हाथी आदि सजीव प्राणी आते हैं। ये परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन के रूप में प्रयुक्त होते हैं।
2. **निर्जीव सम्पत्ति (Inanimate Property)** : इसमें खेत, खलिहान, मकान, मुद्रा, कृषि के औजार आदि निर्जीव वस्तुएँ आती हैं।

सम्पत्ति की विशेषताएँ (Characteristics of Property)

अरस्तू के अनुसार सम्पत्ति की दो विशेषताएँ होती हैं :–

1. राज्य का संरक्षण।
2. सामाजिक स्वीकृति।

ये दोनों बातें सम्पत्ति के आधार–स्तम्भ हैं।

सम्पत्ति – संग्रह की सीमाएँ (Limitations of Property)

अरस्तू असीमित मात्रा में सम्पत्ति – अर्जन के विचार का विरोध करता है। वह सम्पत्ति को साधन मानता है, साध्य नही। साधन का साध्य से सीमित होना चाहिए। अरस्तू का मानना है कि असीमित सम्पत्ति नैतिकता का हनन करती है। यह मनुष्य को उसके असल उद्देश्यों से विमुख करती है। इसके चंगुल में पड़कर व्यक्ति लोभी, कृपण, विलासी तथा अन्य कई दुर्गुणों का शिकार हो जाता है। अतः जीवन को सुचारू ढंग से चलाने लायक ही सम्पत्ति का संचय करना चाहिए।

सम्पत्ति अर्जन (Aquisition of Property)

अरस्तू ने सम्पत्ति अर्जन के दो तरीके बताए हैं :

1. **प्राकृतिक ढंग (Natural Way)** : इस प्रकार के सम्पत्ति के अर्जन में मनुष्य प्रकृति की सहायता लेकर परिश्रम करके भूमि में अनाज पैदा करके व पशु चराकर सम्पत्ति अर्जित करता है। भौतिक जगत् की सभी वस्तुएँ इसके अन्तर्गत आती हैं।
2. **अप्राकृतिक ढंग (Unnatural Way) :** इसमें प्रकृति का कोई हाथ नहीं होता है। यह लाभ के लालच में अर्जित की जाती है। ऋण देकर ब्याज कमाना, व्यापार में लाभ कमाना इसके उदाहरण हैं। इस प्रकार की सम्पत्ति अर्जन करने में मनुष्य सारे मानवीय तरीके छोड़कर दानवीय तरीके अपनाता है। यहाँ सक्षम धर्म की भावना विद्यमान नहीं रहती। अरस्तू सूदखोर को हेय दृष्टि से देखता है। अतः यह धनार्जन का अवैध व अमानवीय तरीका है।

सम्पत्ति विनिमय (Exchange of Property)

अरस्तू सम्पत्ति विनिमय के दो रूप बताता है :–

1. **नैतिक विनिमय (Moral Exchange) :** जब सम्पत्ति का विनियम न्याय–सिद्धान्त के अनुसार हो। इसमें नैतिकता का पूरा ध्यान रखा जाए और वस्तुओं का आदान –प्रदान का आधार समान मूल्य हो।
2. **अनैतिक विनियम (Immoral Exchange)** : जब किसी की विवशताओं का लाभ उठाकर विनिमय किया जाए तो अनैतिक विनिमय कहलाता है। जब व्यापार पर धनी वर्ग का प्रमुख होता है तो इस प्रकार के विनिमय का जन्म होता है। राज्य का कर्त्तव्य है कि वह अनैतिक विनिमय पर रोक लगाए।

सम्पत्ति–विवरण (Distribution of Property)

अरस्तू सम्पत्ति वितरण के तीन प्रकार बताता है :–

1. सार्वजनिक अधिकार और सार्वजनिक प्रयोग (Common Ownership and Common Use)
2. सार्वजनिक अधिकार और व्यक्तिगत प्रयोग (Common Ownership and Individual Use)
3. व्यक्तिगत अधिकार और सार्वजनिक प्रयोग (Individual Ownership and Common Use)

सार्वजनिक अधिकार और व्यक्तिगत प्रयोग को किसी भी विचारक के लिए स्वीकार करना कठिन होगा। अरस्तू ने भी इसका खण्डन किया है कि जो वस्तु सभी की है, वह किसी की भी नहीं है, क्योंकि जिस सम्पदा के सभी स्वामी होते हैं, उसकी ओर सभी लापरवाह होते हैं। जिसमें व्यक्ति का अपनत्व होता है, उसमें वह उत्साह, तत्परता और कुशलता दिखाता है। सार्वजनिक स्वामित्व के कलह तथा संघर्ष उत्पन्न होने की आशंकाएँ होती हैं। अरस्तू ने सम्पत्ति के तीसरे प्रकार के वितरण को लाभदायक व व्यावहारिक बताते हुए कहा है – "व्यक्तिगत स्वामित्व से सम्पत्ति का उत्पादन बढ़ेगा। उसमें उदारता, दानशीलता, तथा आतिथ्य – सत्कार जैसे सद्‌गुणों का अभ्युदय होगा।" अरस्तू मनुष्य की नैतिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए निजी सम्पत्ति का होना जरूरी मानता है। वह कहता है कि जिस नागरिक के पास कुछ भी निजी सम्पदा नहीं है, उसके लिए सम्पूर्ण नागरिक जीवन जीना असम्भव ही नहीं, उससे वंचित भी रहना है। इस प्रकार अरस्तू निजी सम्पत्ति के सिद्धान्त द्वारा व्यक्ति की अधिक से अधिक नैतिक बनाना चाहता है और सार्वजनिक कल्याण के लिए उसके उपयोग पर बल देता है। वह वर्ग – संघर्ष को टालने के लिए निजी सम्पत्ति को सीमित करना चाहता है।

उपर्युक्त विचारों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अरस्तू प्लेटो के सम्पत्ति के साम्यवाद को अस्वीकार करता है। वह प्लेटो की तरह ही सम्पत्ति के प्रति अत्यधिक प्रेम को सभी बुराइयों की जड़ मानता है। उसका निजी सम्पति सम्बन्धी दृष्टिकोण आज भी सही है। उनकी यह काल्पनिक सम्पत्ति अच्छे जीवन का साधन है, ध्येय नहीं, आज भी शाश्वत महत्त्व रखती है। सम्पत्ति के बारे में ऐसी अन्तर्दृष्टि बहुत ही कम राजनीतिक विचारकों में पाई जाती है। वह सम्पत्ति अर्जन व विनियम के जो तरीके बताता है, वे शांतिपूर्ण जीवन के लिए अति आवश्यक है। उनका नैतिक दृष्टि से बहुत महत्त्व है। वह एक समन्वयवादी चिन्तक है। अरस्तू का सम्पत्ति सम्बन्धी दृष्टिकोण आधुनिक राजनीतिक दर्शन में एक महत्त्वपूर्ण और अमूल्य देन है।

2.14 परिवार सम्बन्धी विचार (Views of Family)

अरस्तू के चिन्तन में परिवार सम्बन्धी विचारों का बहुत महत्त्व है। अरस्तू ने प्लेटो की तरह राज्य को महत्त्व देने की धुन में परिवार की उपेक्षा नहीं की है। अरस्तू का मानना है कि परिवार राज्य की तरह ही एक स्वाभाविक सहयोग है जिसके द्वारा मनुष्य की नितांत प्रारम्भिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। अरस्तू के परिवार नामक संस्था के सम्बन्ध में विचार यथार्थवादी व व्यावहारिक हैं। अरस्तू प्लेटो के विपरीत सभी वर्गों के लिए निजी परिवार की व्यवस्था का समर्थन किया है। प्रो० फोस्टर के अनुसार – "प्लेटो ने संरक्षकों के लिए पत्नियों के साम्यवाद की व्यवस्था करके, निजी परिवारों को उन्मूलन करके उन्हें घोर–नीरसता का दण्ड दे दिया था और उनकी सन्तानों को माता – पिता के स्वाभाविक स्नेहसे वंचित करके उनके प्रति घोर अन्याय किया था। उसके महान् शिष्य अरस्तू ने यह सब कुछ बदल दिया। उसने व्यक्तिगत परिवार की आवश्यकता, महत्ता तथा उपयोगिता पर बल देकर न केवल यर्थाथवाद वरन् मनुष्य की मानवीयता के प्रति अधिक सहृदयता का परिचय दिया।"

अरस्तू के अनुसार परिवार एक स्वाभाविक और नैसर्गिक संस्था है। सन्तान उत्पत्ति की इच्छा ही परिवार का आधार है। मानव में शासक और शासित होने की भावना विवेक पर आधारित होती है। विवेक स्वामी तथा अविवेकी दास बनकर परिवार का अंग बन जाते हैं। इस प्रकार स्त्री–पुरूष, स्वामी और दास से परिवार का निर्माण होता है। इस तरह परिवार, स्त्री, स्वामी तथा दास तीनों के पारस्परिक सम्बन्धों का नाम है। स्वामी पत्नी का परामर्शदाता, बच्चों का पद–पदर्शक और दासों का निर्देशक होता है।

मानव आवश्यकताओं की पूर्ति (To fulfill the Human Needs)

अरस्तू की धारणा है कि केवल सन्तानोत्पत्ति का विचार ही परिवार को संगठित नहीं रखता बल्कि मानव की आवश्यकताएँ भी उसे संगठित रखती है। बार्कर ने लिखा है – "परिवार वह प्रथम समुदाय है जिसे मानव द्वारा अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संगठित किया गया।" परिवार में सभी व्यक्ति अपनी नैतिक और भौतिक आवश्यकाताओं की

पूर्ति करते हैं। परिवार में ही मानव व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है और उस पर ही मानव का अस्तित्व टिका है। फॉस्टर ने कहा है – "परिवार मानव विकास में बाधक नहीं, साधक है, यह घोंसले के समान है, पिंजरे के समान नहीं।"

सामाजिक एवं नागरिक सद्‌गुणों का विकास (Development of Social and Civil Virtues) :

अरस्तू का कहना है कि परिवार सामाजिक सदृगुणों की प्रथम पाठशाला है। व्यक्ति परिवार में ही दया, परोपकार, सहानुभूति, त्याग, प्रेम आदि भावनाएँ सीखता है। अरस्तू ने लिखा है – "परिवार प्राकृतिक स्नेह की शाश्वत पाठशाला है।" अरस्तू निजी सम्पत्ति व परिवार की संस्था को बनाए रखने का पक्षधर है। उसका मानना है कि प्रकृति ने इन्हें अनावश्यक रूप में प्रदान नहीं किया है, यह तो युगों – युगों के अनुभव का परिणाम है। अतः परिवार तक ऐसी महत्त्वपूर्ण संस्था है जिसके सामाजिक तथा नागरिक सद्‌गुणों का पाठ पढ़ाया जाता है और व्यक्ति का सद्‌गुणी बनाया जाता हे।

राज्य परिवार का विकसित रूप है (State is the Developed Form of Family)

अरस्तू के अनुसार लोग सबसे पहले परिवारों के रूप में संगठित हुए। कई परिवारों के मिलने से ग्राम की रचना हुई और ग्रामों का विकसित रूप राज्य बन गया। इस प्रकार सामाजिक और राजनीतिक विकास की सर्वप्रथम संस्था से कालांतर में राज्य का जन्म हुआ। अतः राज्य परिवार का ही विकसित रूप है।

परिवार का रूप पैतृक (Patriarchal Form of Family)

अरस्तू ने परिवार को पैतृक माना है। उसने इसके पक्ष में निम्न तर्क प्रस्तुत किए हैं :–

1. स्त्री को अपने पति से परामर्श लेने की आवश्यकता होती है।
2. बच्चों को अपने पिता से पथ–प्रदर्शन की जरूरत होती है।
3. दासों को अपने स्वामी के निर्देशन में रहना पड़ता है।
4. परिवार में वयोवृद्ध के पास अनुभव और व्यावहारिक ज्ञान होता है जिसमें सभी पारिवारिक कार्यों को करने – कराने की योग्यता व क्षमता होती है। इन तर्कों के आधार पर अरस्तू ने वयोवृद्ध व्यक्ति को ही परिवार का मुखिया और प्रधान बनाने के अधिकार को सही ठहराया है।

स्त्री – पुरूषों के सम्बन्ध में भिन्नता (Dissimilarities on the Relationship Men and Women)

जहाँ प्लेटो स्त्रियों के सुधार और उद्धार का समर्थक है, वहाँ अरस्तू रूढ़िवादी है। अरस्तू स्त्री–पुरूष की समानता का विरोध करता हैं वह स्त्री को पुरूष के अधीन मानता है। वह कहता है कि जिस प्रकार ज्येष्ठ और प्रौढ़ किशोर ओर अपरिपक्वों से उच्च है, उसी तरह पुरूष प्रकृतिवश स्त्री की तुलना में आदेश देने के लिए अधिक उपयुक्त है। इस प्रकार अरस्तू स्त्री को पुरूष से कम शक्तिशाली व योग्य मानता है।

पत्नियों का साम्यवाद अप्राकृतिक एवं अवांछनीय (Communism of Wives is Unnatural and Impractical)

अरस्तू प्लेटो के पत्नियों के साम्यवाद को अप्राकृतिक, असंगत, अवांछनीय और मूर्खता की संज्ञा देता है। अरस्तू लिखता है कि स्नेह का आधार निजी स्वामित्व, सम्बन्ध व अनन्यता है। ज्योंही अनन्यता साम्यवाद के कारण नष्ट होती है तो स्नेह का आधार ही समाप्त हो जाता है। बच्चों के साम्यवाद में वह स्नेह प्राप्त नहीं हो सकता जो निजी परिवार में मिलता है। शिशु सदन घर का स्थान नहीं ले सकते और परिचारिकाएँ माँ का स्थान नहीं ले सकती। अरस्तू की धारणा है कि पत्नियों का साम्यवाद राज्य में एकता और समन्वय पैदा न करके कलह, संघर्ष और ईर्ष्या को जन्म देगा। प्रत्येक स्त्री प्रत्येक पुरूष की पत्नी होगी। इससे अव्यवस्था व अराजकता की स्थिति पैदा होगी। स्त्रियों के साम्यवाद को अनैतिक कार्यों में वृद्धि होगी। इससे नैतिक सम्बन्धों का पतन हो जाएगा। कोई भी यह नहीं जान सकेगा कि वह जिससे सम्बन्ध स्थापित कर रहा है, वह उसकी माँ है या बहिन। इससे मात् – हत्या, पित्ा – हत्या तथा भ्रातृ – हत्या जैसे अपराधों का जन्म होगा। अरस्तू का कहना है कि प्लेटो का साम्यवाद अप्राकृतिक तथा आवांछनीय है। इसको व्यवहार में लागू नहीं किया जा सकता।

अरस्तू के परिवार सम्बन्धी विचारों की आलोचना

1. अरस्तू के परिवार सम्बन्धी विचार तथ्यों से अधिक कल्पनाओं पर आधारित हैं।
2. अरस्तू ने स्वामी और दास तथा सम्पत्ति का तो विवेचन किया है, परन्तु परिवार में माता–पिता और बालकों के सम्बन्ध में तथा पति–पत्नी के सम्बन्ध में विस्तृत विचार नहीं किया है।
3. अरस्तू के स्त्रियों के सम्बन्ध में विचार निकृष्ट हैं। वह नारी को पुरूष की दासी समझता है।
4. यह अरस्तू की मौलिक देन नहीं है। ये प्लेटो के 'लॉज' में दी गई योजना को ज्यों का त्यों पेश करता है।

अरस्तू का परिवार सम्बन्धी विचारों का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि अरस्तू ने परिवार को प्लेटो के साम्यवाद के गर्त निकालकर सम्मानजनक स्थान पर प्रतिष्ठित किया है। यह विवेचन सामाजिक और आर्थिक, सिद्धान्त एवं इतिहास में महत्त्वपूर्ण साम्रगी परिवार व उसके तत्त्वों के सम्बन्ध में शामिल करता है। अरस्तू के विचार आधुनिक सन्दर्भ में सजीव और शाश्वत हैं। निस्सन्देह परिवार राज्य की आधारशिला है और राज्य के अस्तित्व व निर्माण के लिए एक अनिवार्य शर्त भी है, लेकिन अरस्तू ने स्त्री को पुरूष से हीन बताकर अनुदारवादी होने का परिचय दिया है।

2.15 कानून सम्बन्धी विचार (Views on Law)

अरस्तू के 'कानून सम्बन्धी विचारों' का राजनीतिक चिन्तन में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्लेटो ने 'रिपब्लिक' में तो कानून की उपेक्षा की है लेकिन उन्होनें अपनी पुस्तक 'लॉज' में इस भूल को स्वीकारते हुए 'कानून' की आवश्यकता पर जोर दिया है। प्लेटो के शिष्य होने के नाते अरस्तू ने भी 'कानून के शासन' का दृढ़ समर्थन किया है। प्लेटो ने कानून से ऊपर दार्शनिक शासन को माना है, लेकिन अरस्तू का मानना है कि बुद्धिमानी शासक भी कानूनों से सर्वोत्तम नहीं हो सकता। अरस्तू ने कानून को एक आवश्यक बुराई के रूप में नहीं, बल्कि एक अच्छाई के रूप में स्वीकार किया है। उसकी धारणा है कि श्रेष्ठ राजनीति

जीवन के लिए कानून अनिवार्य है। कानून संविधान के अनुकूल होना चाहिए तभी कानून न्यायपूर्ण होगा। अरस्तू के अनुसार – "विधि का शास्त्र किसी एक व्यक्ति के शासन से अच्छा है, भले ही वह उचित लगता हो कि व्यक्तियों का शासन हो, तब भी व्यक्तियों को विधि का संरक्षक अथवा सेवक ही बनाना चाहिए।" इससे स्पष्ट है कि अरस्तू कानून के शासन का दृढ़ समर्थक है और जितनी निष्ठा कानून के प्रति अरस्तू की है, अन्य की नहीं है।

कानून से अभिप्राय (Meaning of Law)

अरस्तू कानून को ही विवेक का दूसरा रूप मानता है। उसका मानना है कि कानून वासनाओं से मुक्त विवेक है। उसके अनुसार कानून उन सभी आध्यात्मिक प्रतिबन्धों का योग है जिनका मनुष्य मर्यादापूर्वक आचरण करता है। मनुष्य में विवेक के साथ – साथ भावना, लालसा, प्रलोभन, आवेग आदि का भी समावेश होता है। इसलिए वह गलत कार्यों की ओर प्रेरित होता है। इसलिए कानून उन सामान्य सिद्धान्तों का रूप बनकर मनुष्य को व्यावहारिक जीवन में अच्छे, नैतिक, सामाजिक और न्यायोचित कार्यों की ओर मोड़ता है। अरस्तू का मानना है कि कानून नैतिकता का भी सहधर्मी है। विवेकापूर्ण आचरण में ही नैतिकता भी निहित है। इस प्रकार अरस्तू कानून को आवेगों और आवेशों से रहित विशुद्ध विवेक के रूप में स्वीकारता है। उसने कहा है – "कानून आवेगहीन विवेक होता है।" अरस्तू के अनुसार कानून विशुद्ध विवेक के साथ – साथ उत्कृष्ठ नैतिकता का भी प्रतिक है। अतः कानून मानव जीवन के सभी पहलुओं का नियामक है।

कानून की आवश्यकता (Need of Law)

कानून न केवल व्यक्ति के लिए बल्कि समाज के लिए भी आवश्यक होता है। अरस्तू का मानना है कि मनुष्यों को सदाचार की मार्यादाओं में रखने के लिए संयम और अनुशासन में रखने के लिए, स्वार्थ तथा वासनाओं से प्रेरित न होने के लिए, अपराधों वह अन्याय को रोकने के लिए, राज्य में शान्ति व व्यवस्था बनाए रखने के लिए कानून अति आवश्यक है। कानून व्यक्ति की पाश्विक वृत्तियों का दमन करके उन्हें अनुशासन में रखता है। कानून

स्वार्थी और भावना प्रेरित कार्यों पर रोक लगाता है। इसलिए कानून व्यक्ति तथा समाज दोनों के लिए जरूरी है।

कानून के स्त्रोत (Sources of Law)

अरस्तू ने कानून के दो स्त्रोत – वैयक्तिक तथा अवैयक्तिक माने हैं। अरस्तू के मत में विधायक या विधि निर्माता कानून का वैयक्तिक स्त्रोत होता है। यह लिखित कानूनों के साथ – साथ अतिरिक्त कानूनों और प्रथाओं का भी निर्माण कर सकता है। वह शिक्षा के सिद्धान्तों का निरूपण कर नागरिकों को स्वभावतः कानून का पालन करने योग्य बनाता है। विधि निर्माता को ही कानून निर्माण का एकमात्र अधिकार प्राप्त है। अरस्तू ने प्रथाओं और परम्पराओं को कानून का अवैयक्तिक स्त्रोत माना है।

कानून का स्वरूप (Nature of Law)

अरस्तू के कानून के प्राकृतिक स्वरूप को स्वीकार किया है। उसके मत में कानून शाश्वत और परिवर्त्य नैतिक नियम होते हैं। विधि – निर्माता, जो कानूनों को बनाता है मूलतः कानूनों की सृष्टि नहीं करता बल्कि मात्र उनकी खोज करता है। कानून प्राकृतिक रूप से विद्यमान है। यह अव्यावहारिक तत्त्व है। विधिकार अपनी दिव्य दृष्टि और अलौकिक प्रतिभा द्वारा उन तत्त्वों की खोज करता है, वह किसी नए नियम का निर्माण नहीं करता । उसने स्वीकार किया है कि वास्तविक कानून तथा प्राकृतिक कानून में अन्तर है। ये एक – दूसरे के विरोधी न होकर, एक – दूसरे के पूरक हैं।

कानूनों का वर्गीकरण (Classification of Laws)

अरस्तू ने अपनी पुस्तक 'वक्तृत्वकला शास्त्र' में कानून दो भागों – विशिष्ट कानून तथा सार्वजनिक कानून में विभाजित किया है। अरस्तू ने विशिष्ट कानून उन कानूनों को कहा है जो किसी विशिष्ट राज्य द्वारा बनाए जाते हैं और उस राज्य के व्यक्तियों पर लागू किए जाते हैं। ये लिखित भी हो सकते हैं और अलिखित भी। अरस्तू ने सार्वभौमिक कानून प्राकृतिक नियमों को माना है। अरस्तू का मानना है कि ये कानून मनुष्य के हृदय में अलौकिक ज्योति के रूप में सदा उपस्थित रहते हैं। इन पर देशकाल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ये सभी देशों के लिए समरूप होते हैं। ये कानून न्याय और औचित्य का मूल

सिद्धान्त होते हैं। ये शाश्वत और सार्वभौम होते हैं। विवेक पर आधारित होने के कारण ये कानून पालना योग्य होते हैं।

कानून का स्थान (Place of Law)

अरस्तू का कहना है कि कानून सदैव संविधान के अनुकूल होते हैं। बुरे संविधान में बुरे कानून होते हैं। जिस देश में कोई कानून नहीं, वहाँ पर संविधान का अभाव होगा। अरस्तू के विचार में संविधान और सरकार एक हैं। वह सरकार को कानून की प्रभुता में रखना चाहता है। सरकार चाहे कैसी भी हो उसे स्वार्थ रहित रखने के लिए कानून आवश्यक है। कानून सरकार के अनुचित कार्यों पर रोक लगाते हैं। कानून का शासन सदैव अच्छा होता है। कानून सब के लिए समान होते हैं। किसी भी नागरिक को कानून का उल्लंघन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। अतः कानून का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह सामाजिक मापदण्डों के निर्धारक हैं।

कानून की सर्वोच्चता (Supremacy of Law)

अरस्तू ने निम्न तर्कों के आधार पर कानून की सर्वोच्चता का समर्थन किया है :

1. कानून के शासन का अर्थ है – विवेक का शासन। यह स्वयं ईश्वर के शासन के समान होता है। किसी व्यक्ति का शासन इसकी बराबरी नहीं कर सकता क्योंकि वह क्रोध के कारण पथ – भ्रष्ट हो सकता है।
2. कानून ही राज्य में एकता व सुव्यवस्था स्थापित कर सकता है। यह व्यक्ति के आचरण को सीमाबद्ध करके अन्याय व अपराधों को रोकता है।
3. यह सदैव सार्वजनिक कल्याण का उद्देश्य रखता है जबकि निरंकुश शासक स्वार्थ – पूर्ति के लिए शासन करता है।
4. यह पक्षपातविहीन और निर्वैयक्तिक होता है। दूसरी तरफ के अच्छे से अच्छे शासक भी अपनी इच्छाओं व भावनाओं के दास होते हैं।
5. कानून की प्रभुता में कार्य करने से सरकारी पदाधिकारियों के स्वेच्छाचार से छुटकारा मिल जाता है।
6. यह जन –इच्छा पर आधारित है, भय या दण्ड पर नहीं।

अतः हम कह सकते हैं कि कानून का शासन अरस्तू की एक महत्त्वपूर्ण देन है। अरस्तू ने कानून की सर्वोच्चता को श्रेष्ठ शासन का अभिन्न अंग स्वीकार किया है। कानून का शासन व्यक्ति में नैतिक और सभ्य व्यक्ति के गुण पैदा करता है। कानून के महत्त्व पर अरस्तू ने लिखा है – "मनुष्य परिष्कृत होने पर एक सर्वश्रेष्ठ है, लेकिन कानून और न्याय से अलग होने पर वह निकृष्टतम प्राणी है।" अरस्तू की कानून की सर्वोच्चता की धारणा मध्ययुग में बहुत लोकप्रिय रही है। इसी सिद्धान्त ने जर्मनी की राजनीति को सभ्य और उदार बनाने में योगदान दिया हैं यह सिद्धान्त आगे चलकर अमेरिका, इंगलैण्ड आदि देशों के संविधान तन्त्र का आधार बना। आधुनिक युग में अधिकांश देशों ने इसे मूलमन्त्र के रूप में स्वीकार कर लिया है। निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि कानून की सर्वोच्चता का विचार अरस्तू की राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण देन है।

2.16 न्याय सम्बन्धी विचार (Views on Justice)

अरस्तू ने अपनी न्याय – सम्बन्धी का प्रतिपादन अपने ग्रन्थ 'रैटोरिक' (Rhetoric) में किया है। अरस्तू की न्याय सम्बन्धी धारणा प्लेटो की ही भाँति यूनानी न्याय की धारणा से प्रभावित है। यूनानी विचारक न्याय को राज्य का ही नहीं बल्कि समाज और व्यक्ति का भी आवश्यक गुण मानते हैं। उनके लिए न्याय वैधानिक सम्बन्धों की वस्तु होने के साथ – साथ नैतिक सम्बन्धों और आचरण की वस्तु भी है। इसलिए अरस्तू का न्याय का अर्थ और क्षेत्र आधुनिक युग में प्रचलित न्याय के अर्थ व क्षेत्र से व्यापक है।

न्याय का अर्थ (Meaning of Justice)

अरस्तू ने न्याय का अर्थ सद्‌गुण और उसके व्यावहारिक प्रयोग के रूप में ग्रहण किया है। विवेकी होना सद्‌गुण है परन्तु जब यह सद्‌गुण विवेकपूर्ण आचरण में परिणत होता है तो न्याय की उत्पत्ति होती है। अरस्तू के अनुसार – "विवेकी होना सद्‌गुण है, परन्तु दूसरों के साथ विवेकपूर्ण आचरण करना न्याय है।" अरस्तू के अनुसार न्याय अन्य सद्‌गुणों से श्रेष्ठ है। अरस्तू के विचार में न्याय एक ऐसा सद्‌गुण है जिसका अनुसरण सभी अन्य सद्‌गुण करते हैं। अतः न्याय एक ऐसा सामाजिक गुण है जिसमें सारे अन्य सद्‌गुण समा जाते हैं।

प्रो० बार्कर के अनुसार – "अरस्तू के लिए न्याय कानूनी से अधिक है। इसमें कुछ नैतिक विचार शामिल हैं जो हमारे साधुता शब्द में निहित है।" इस प्रकार न्याय राजनीतिक समुदाय का एक नितान्त आवश्यक गुण है। न्याय की उपस्थिति राज्य को विकासग्रस्त होने से बचाती है और राजनीतिक जीवन को स्वस्थ एवं कल्याणकारी बनाती है।

न्याय के प्रकार (Kinds of Justice)

अरस्तू ने अपने ग्रन्थ 'एथिक्स' (Ethics) में न्याय का स्वरूप स्पष्ट करते हुए उसके दो प्रकार बताए है :

1. सामान्य न्याय (General Justice)
2. विशिष्ट न्याय (Particular Justice)

सामान्य न्याय अच्छाई का नाम है। इसमें सब सद्‌गुण और साधुता (Righteousness) का समावेश है। अरस्तू ने 'Ethics' की पाँचवी पुस्तक में लिखा है – "सामान्य न्याय सम्पूर्ण अच्छाई है। यह पूर्णरूपेण सम्पूर्ण अच्छाई है क्योंकि यह सम्पूर्ण अच्छाई का अभ्यास है सम्पूर्ण इस अर्थ में कि इससे युक्त व्यक्ति अपनी अच्छाई का अभ्यास न केवल अपने लिए करता है, बल्कि पड़ोसियों के साथ भी वह इसका प्रयोग करता है।

विशिष्ट न्याय समान्य न्याय का ही अंग है। यह सम्पूर्ण अच्छाई का एक पहलू है जिसकी उपस्थिति मनुष्य को अन्य लोगों के साथ उचित एवं सामान्य व्यवहार करने की प्रेरणा देती है। इसके कारण व्यक्ति समभाव या समता के साथ व्यवहार करता है। इस प्रकार यह न्याय नितान्त सीमित है। यह मात्र सामान्य न्याय के उस अंश का द्योतक है जिसके रहने से एक व्यक्ति दूसरों के साथ उचित व्यवहार करता है। विशिष्ट न्याय सामाजिक व्यवहार संहिता का प्रतिरूप है। विशिष्ट न्याय से युक्त व्यक्ति वह होता है जो श्रेष्ठ कानून का समुचित पालन करता है और इस प्रकार समाज के सन्दर्भ में अपने लिए उचित मात्रा से अधिक सुखों की माँग नहीं करता। अरस्तू ने विशिष्ट न्याय को भागों में बाँटा है :–

(क) वितरणात्मक न्याय **(Distributive Justice)**

(ख) सुधरात्मक न्याय **(Corrective Justice)**

वितरणात्मक न्याय से अभिप्राय है कि राज्य अपने नागरिकों में राजनीतिक पदों, सम्मानों तथा अन्य लाभों और पुरस्कारों का बँटवारा या वितरण न्यायपूर्ण रीति से करे। परन्तु यह वितरण समानता के आधार पर नहीं बल्कि योग्यता और क्षमता के आधार पर होना चाहिए। अरस्तू ने अपनी पुस्तक 'पोलिटिक्स' में वितरक न्याय पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि मानव प्रकृतिवश – आसमान है, उनकी योग्यताएँ और क्षमताएँ भिन्न – भिन्न होती हैं। अतः जिस मात्रा में कोई नागरिक अपना योगदान देता है उसी अनुपात में उसे पद, स्थान या सम्मान प्राप्त होना चाहिए। अरस्तू का मानना है कि वितरणात्मक न्याय असमानता का अन्त करता है और राज्य को स्थायित्व प्रदान करता है। यदि उच्च पदों पर किसी वर्ग विशेष का अधिकार हो तो राज्य असन्तोष, संघर्ष और क्रान्ति को जन्म देगा। इसलिए राज्य में सुख – समृद्धि व स्थायित्व कायम रखने के लिए आनुपातिक या वितरणात्मक न्याय जरूरी है। राज्य में पदों का वितरण, जन्म, धन, स्वतन्त्रता और समानता के आधार पर नहीं होना चाहिए बल्कि सद्गुणों के आधार पर होना चाहिए। थियोडोर गोमपर्ज ने वितराणात्मक न्याय के बारे में कहा है– "आनुपातिक न्याय प्रत्येक का उसकी योग्यता और पात्रता के अनुसार भाग निश्चित करता है।" यह नागरिकों में पूर्ण समानता की बजाय आनुपातिक समानता की स्थापना करता है। इस प्रकार आनुपातिक समानता के आधार पर वितरण करना ही वितरक न्याय है।

सुधारात्मक न्याय का सम्बन्ध नागरिकों के पारस्परिक सम्बन्धों से है। इसका मूल उद्देश्य नागरिकों के जीवन, सम्पत्ति और स्वतन्त्रता की रक्षा करना है अर्थात् व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों में उत्पन्न होने वाली भ्रष्टताओं को सुधारना है। अरस्तू ने इस न्याय का उल्लेख अपनी पुस्तक (Ethics) में किया है। उसने कहा है कि इसका क्षेत्र दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार के मामलों एवं ऐच्छिक व अनैच्छिक व्यवहारों तक फैला हुआ है। इस आधार पर सुधारात्मक न्याय के दो उपभेद– ऐच्छिक व अनैच्छिक सुधारात्मक न्याय हैं। ऐच्छिक सुधारात्मक न्याय का सम्बन्ध सम्पत्ति सम्बन्धी समझौतों से होता है। यदि इस समझौते को कोई नागरिक तोड़ता है तो उसे न्यायालय दण्डित करता है और पीड़ित पक्ष को मुआवजा दिलाता है। लेकिन अनैच्छिक न्याय का सम्बन्ध धोखा, मारपीट, चोरी, डकैती,

हत्या आदि से सम्बन्धित अपरोधों से होता है। राज्य के न्यायालय अपराधी को दण्ड देते हैं। इसका सम्बन्ध फौजदारी मुकद्दमों से है जबकि ऐच्छिक का दीवानी झगड़ों से है। अतः सुधारात्मक न्याय का सम्बन्ध राज्य का सम्पूर्ण दण्ड विधान है जिसकों न्यायालय द्वारा लागू किया जाता है।

निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि अरस्तू की सुधारात्मक न्याय की अवधारणा का महत्त्व आज भी है। आज भी प्रत्येक देश का शासक नागरिकों को अधिकारों की रक्षा करता है और उल्लंघन करने वालों को सजा देता है। वर्तमान कल्याणकारी राज्य में यह आवश्यक है कि उच्च शासकीय पद और पुरस्कार योग्यता के आधार पर बाँटे जाएँ ताकि नागरिकों को सामाजिक न्याय प्राप्त हो सके और राज्य में स्थायित्व व एकता कायम रह सके। इस प्रकार अरस्तू न्याय के वितरणात्मक रूप द्वारा समानता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है जिससे राज्य का स्थायित्व बना रह सके।

2.17 अरस्तू राजनीति विज्ञान के जनक के रूप में

(Aristotle as the Father of Political Science)

प्लेटो के शिष्य अरस्तू को ही राजनीतिक विज्ञान का जनक होने का गौरव प्राप्त है। अरस्तू एक ऐसे व्यावहारिक राज्य का विचार देने वाला प्रथम वैज्ञानिक है जो प्लेटो से अधिक महत्त्वपूर्ण, उपयोगी व वास्तविकता पर आधारित विचारों का खजाना है। मैक्सी ने अरस्तू को ही प्रथम वैज्ञानिक विचारक माना है। डनिंग अरस्तू की कृति 'पालिटिक्स' (Politics) को राजनीति विज्ञान की अनुपम निधि मानता है। यद्यपि प्लेटो ने भी राजनीति पर विचार किया था लेकिन उसके विचार अरस्तू की तरह यथार्थवादी नहीं है। अरस्तू ने राज्य, क्रान्ति, संविधान, सरकारों के वर्गीकरण और परिवर्तन, नागरिकता आदि पहलुओं पर जो विचार प्रकट किए हैं, वे आज भी समसामयिक और प्रासंगिक हैं। प्लेटो की तुलना में अरस्तू के विचार अधिक शाश्वत मूल्य के हैं। आधुनिक राजनीतिक विज्ञान का क्षेत्र उन्हीं सिद्धान्त पर टिका हुआ है जो अरस्तू ने हजारों वर्ष पूर्व प्रतिपादित किए थे। राजनीति विज्ञान का वर्तमान ढाँचा अरस्तू की ही परिकल्पना पर आधारित है। अरस्तू के विचारों में जितनी

सजीवता, परिपक्वता और स्थायित्व है, उसे आधार पर ही अरस्तू को राजनीति विज्ञान का जनक माना जाता है।

प्लेटो को यह श्रेय प्राप्त क्यों नहीं है ? (Why Plato does not get this Credit ?)

यद्यपि प्लेटो ने भी राजनीति विज्ञान को कुछ महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, लेकिन उसे राजनीति विज्ञान का जनक नहीं कहा जा सकता। इसके कुछ कारण निम्नलिखित है :–

1. राजनीतिशास्त्र के अध्ययन में प्लेटो ने वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग नहीं किया है। प्लेटो का नगर राज्यों की समस्याओं की ओर दृष्टिकोण अवैज्ञानिक है। वह कल्पना क आधार पर समस्याओं का समाधान करना चाहता है। वह एक चित्रकार की तरह आदर्श प्रस्तुत करता है। उसके विचारों का वास्तविक जीवन से कोई सरोकार नहीं है। उसके विचार तत्त्वों के निरीक्षण व परीक्षण पर आधारित नहीं है। अतः प्लेटो को राजनीति विज्ञान का जनक नहीं माना जा सकता ।
2. प्लेटो ने राजनीति शास्त्र के स्वतन्त्र अनुशासन के रूप में प्रतिष्ठित नहीं किया। उसने राजनीतिशास्त्र को नीतिशास्त्र की एक उप – शाखा माना है।
3. प्लेटो ने तत्कालीन ज्ञान–प्रणाली का खण्डन किया । उसने युगों के अनुभव को मान्यता नहीं दी। उन्होनें राज्य में रीति–रिवाजों को सही स्थान नहीं दिया।

उपर्युक्त कारणों से प्लेटो को राजनीति विज्ञान का जनक नहीं माना गया। यह श्रेय अरस्तू को ही प्राप्त हुआ। इसके निम्नलिखित कारण हैं :

1. **वैज्ञानिक पद्धति (Scientific Method)** : अरस्तू ने राजनीतिशास्त्र के अध्ययन में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग किया है। इस विधि में एक विचारक जो कुछ देखता है या जिन ऐतिहासिक तथ्यों की खोज करता है। उनका निष्पक्ष रूप से बिना अपने किसी पूर्वाग्रह के अध्ययन करता है और इस अध्ययन के फलस्वरूप जो कुछ निष्कर्ष निकलता है वह वैज्ञानिक होता है। बार्कर ने अरस्तू की अध्ययन – पद्धति के बारे में लिखा है – "उनकी प्रक्रिया का सारांश सभी संगत (Relevant) आकड़ों का संग्रह, पंजीकरण और निरीक्षण करना था और प्रत्येक सन्दर्भ में उनके अध्ययन का

ध्येय किसी सामान्य सिद्धान्त की खोज करना था।" समस्याओं के प्रति अरस्तू का दृष्टिकोण वैज्ञानिक है। अरस्तू का ज्ञान विश्वकोषीय है। उसने अपने समय में प्रचलित 158 देशों के संविधानों का अध्ययन करने के लिए आंकड़े एकत्रित करके सामान्य निष्कर्ष निकाले हैं। उन्होनें तथ्यों का संग्रह व निरीक्षण सूक्ष्मता के करके वैज्ञानिक निष्कर्ष निकाले हैं। यह सच्चे वैज्ञानिक तरीके का सार होता है। अतः अरस्तू की पद्धति वैज्ञानिक है जो विशेष से सामान्य की ओर जाती है। इसलिए अरस्तू को राजनीति विज्ञान का जनक मानने के पीछे मूल कारण उनके द्वारा वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग है।

2. **राजनीति को नीतिशास्त्र से अलग किया :** अरस्तू ने सर्वप्रथम राजनीतिशास्त्र को नीतिशास्त्र कसे अलग करके उसे एक स्वतन्त्र अनुशासन के रूप में प्रतिष्ठित किया। उसके अनुसार नीतिशास्त्र का सम्बन्ध उद्देश्यों से है, जबकि राजनीतिशास्त्र का उन साधनों से है जिनके द्वारा उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है। अरस्तू ने राजनीति को नीतिशास्त्र से अलग करते हुए श्रेष्ठतम विज्ञान माना है। अरस्तू ने प्लेटो के उस विचार का खण्डन किया जिसके अनुसार राजनीतिशास्त्र नीतिशास्त्र की दासी था। अरस्तू ने दोनों को ठीक तरह से समझकर यह निष्कर्ष निकाला कि राजनीति अलग विषय है। डनिंग ने लिखा है – "राजनीतिक सिद्धान्तों के इतिहास में अरस्तू की सबसे बड़ी महानता इस बात में निहित है कि उसने राजनीति को स्वतन्त्र विज्ञान का स्वरूप प्रदान किया है।"

3. **कानून की सम्प्रभूता :** अरस्तू ने कानून की सर्वोच्चता में विश्वास व्यक्त किया है। उसके अनुसार कानून में सामुहिक विवेक, अवैयक्तिकता एवं सार्वभौमिकता का गुण होता है। कानून निष्पक्ष होता है और समान रूप से लागू होता है। अरस्तू विवेक के स्थान पर कानून के शासन को ज्यादा न्यासंगत मानता है। प्लेटो आदर्श राज्य में व्यक्तियों के शासन (दार्शनिक शासक) में विश्वास करता है जबकि अरस्तू कानून के शासन पर करता है। अरस्तू का कहना है कि श्रेष्ठ व्यक्ति की तुलना में भी कानून का शासन ही उचित होता है क्योंकि यह शासक वर्ग में अनावश्यक अहंकार व सत्ता

के दुरूपयोग को रोकता है तथा शासित वर्ग में हीनभावना पैदा नहीं होने देता। कानून की सर्वोच्चता तथा संवैधानिक शासन ही वांछनीयता में विश्वास अरस्तू की ऐसी धारणाएँ हैं जिनके आधार पर उसे संविधानवाद का जनक कहा जाता है। अरस्तू के कानून की सम्प्रभुता के सिद्धान्त के बारे में एवन्सटीन ने लिखा है – "कानून के शासन का सिद्धान्त सम्भवतः अरस्तू की ऐसी सबसे महत्त्वपूर्ण देन है जो उसने आगामी पीढ़ियों को प्रदान की है।" ग्रोशियस, बेन्थम, लास्की आदि ने अरस्तू की धारणाओं के आधार पर ही अपने वैधानिक सम्प्रभुता के विचारों को खड़ा किया है। कानून की सम्प्रभुता अरस्तू की महत्त्वपूर्ण देन है।

4. **तुलनात्मक पद्धति :** अरस्तू ही ऐसा प्रथम विचारक है जिसमें राजनीतिशास्त्र के क्षेत्र में तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग किया है। उन्होनें तत्कालीन नगर – राज्यों की समस्याओं का विश्लेषण करने के लिए विश्व के 158 संविधानों का अध्ययन किया। उसे निष्कर्ष तुलनात्मक होने के कारण वैज्ञानिक और सही हैं। अतः राजनीति विज्ञान के जनक के रूप में अरस्तू की पदवी राजनीतिक घअटनाओं के अध्ययन में उनके द्वारा तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग किए जाने के कारण है।

5. **राज्य के पूर्ण सिद्धान्तों का क्रमबद्ध निरूपण (Complete and Systematic Theory of State) :** राज्य का पूर्ण सैद्धान्तिक वर्णन करने वाला पहला विचारक अरस्तू ही है। राज्य के जन्म और विकास से लेकर उसके स्वरूप, संविधान की रचना, सरकार का निर्माण, नागरिकता की व्याख्या और कानून की सम्प्रभुता, क्रान्ति आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर अरस्तू ने विस्तार से लिखा है। अरस्तू के ये सभी विषय आधुनिक राजनीतिक विचारकों के लिए सामग्री प्रदान करते हैं। इन सिद्धान्तों का क्रमबद्ध विवेचन प्लेटो तथा अन्य विचारकों में दिखाई नहीं देता है। बार्कर का कहना है – "अरस्तू के विचार प्रायः आधुनिकतम हैं चाहे भले ही अरस्तू का राज्य केवल नगर – राज्य ही रहा हो। अरस्तू के राजदर्शन का आधार मानव– प्रकृति बनी क्योंकि अरस्तू ने यह सिद्ध किया कि जो व्यक्ति के लिए आदर्श और श्रेयस्कर है, वही राज्य के लिए भी है।" इसी तरह अरस्तू ने मनुष्य को एक राजनीतिक प्राणी बताकर राजनीतिशास्त्र

को ऋणी बना दिया है। इस प्रकार अरस्तू ने एक प्रबुद्ध विचारक की तरह लिखकर अमूल्य सामग्री राजनीतिक चिन्तन को भेंट की है।

6. **मध्यम मार्ग (Golden Mean) :** अरस्तू का विश्वास था कि विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा असन्तुलन है। यह असन्तुलन चाहे राजनीतिक हो, चाहे सामाजिक हो, चाहे आर्थिक। असन्तुलन अतियों के कारण उत्पन्न होता है। साम्यवाद, निरंकुशता, आंगिक समानता और पूंजीवाद सभी अति का ही रूप है। उसने कुलीनतन्त्र व भीड़तन्त्र को अतिवादी बताकर संयत लोकतन्त्र का मध्यम मार्ग अपनाने का सुझाव दिया। अरस्तू का विश्वास था कि मध्यवर्ग शासन को सुचारू रूप से चला सकता है। यह वर्ग ही सामाजिक व राजनीतिक संघर्ष को समाप्त करा सकता है। उसने इतिहास से उदाहरण लेकर अपने इस तथ्य की पुष्टि की कि मध्यमवर्ग का शासन अधिक स्थायी व टिकाऊ होता है। उसका मानना है कि मध्यम वर्ग ही एक ऐसा वर्ग है जो विवेक के पालन में अग्रणी होता है। यह वर्ग ही समाज में शान्ति व स्थायित्व पैदा कर सकता है। इसी कारण केटलिन ने अरस्तू को मध्यम–वर्ग का दार्शनिक कहा है।

7. **नागरिकता (Citizenship):** अरस्तू ने नागरिकता की व्याख्या अपने ग्रन्थ 'पॉलिटिक्स' (Politics) की तीसरी पुस्तक में की है। यह अरस्तू की मौलिक देन है। अरस्तू ने नागरिकता की जो व्याख्या की है, वह राजनीति के लिए बहुत सहायक तथा आधुनिक नागरिकता की व्याख्या करने में मार्गदर्शक सिद्ध हुई है। अतः आधुनिक राजनीतिक चिन्तन में अरस्तू के नागरिकता सम्बन्धी विचारों का एक महत्त्वपूर्ण योगदान है।

8. **शिक्षा का सिद्धान्त (Priniciple of Education) :** अरस्तू ने राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना के लिए शिक्षा को एक महत्त्पूर्ण साधन माना है जो वर्तमान युग में भी प्रासंगिक है। शिक्षा ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास करके उसे सच्चा नागरिक बनाती है। शिक्षा से ही मानव सही मानव बनता है। शिक्षा ही व्यक्ति के

आत्मिक पक्ष का विकास करती हैं यह व्यक्ति की पाशविक वृत्तियों पर रोक लगाकर उसे सद्‌गुणी बनाती है।

9. **संविधान का अध्ययन (Study of Constituion) :** अरस्तू ने 'संविधान' की विस्तारपूर्वक व्याख्या की है। अरस्तू ने 'संविधान' शब्द का विस्तृत वर्णन अपनी पुस्तक 'Politics' में किया है। बार्कर ने अरस्तू की महान् रचना 'पालिटिक्स' के अनुवाद में लिखा है – "अगर कोई पूछे कि अरस्तू की –'पालिटिक्स' ने सामान्य यूरोपीय विचारधारा को उत्तराधिकार में क्या दिया है तो इसका उत्तर होगा – संविधान शास्त्र। अरस्तू को संविधान के लिए किए गए विस्तृत अध्ययन के कारण ही संविधान और संविधानवाद का जनक कहा जाता है। अरस्तु ने प्लेटो से प्राप्त संविधानों के वर्गीकरण को व्यावहारिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। उसने राज्यों का वर्गीकरण संविधान से जोड़कर ही किया। अरस्तू की इस देन के कारण राजनीतिक चिन्तन का इतिहास उनका ऋणी है।

10. **सरकार के अंगो का निरूपण (Determination of the Organs of Government) :** अरस्तु ने सरकार के तीन अंगों – नीति – निर्धारक, प्रशासकीय और न्यायिक का विस्तारपूर्वक निरूपण किया है। उसने इन अंगों के परस्पर सम्बन्धों व क्षेत्राधिकार का भी वर्णन किया है। 'शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त' तथा 'नियन्त्रण और सन्तुलन' के सिद्धान्त में अरस्तू की ही झलक दिखाई देती है। अरस्तू के सरकार के तीनों अंग वर्तमान समय में व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के समान हैं।

11. **ऐतिहासिक दृष्टिकोण (Historical Approach) :** अरस्तू ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ – साथ ऐतिहासिक दृष्टिकोण का भी प्रयोग किया है। उसने राज्य को परिवार का विकसित रूप बताया है। उसने व्यक्ति से परिवार, परिवार से गाँव तथा गाँवों से राज्य बनने तक के ऐतिहासिक विकास – क्रम पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। बाद में आइंस्टाइन, मैकियावेल्लि, माण्टेस्क्यू, बर्क, हीगल व मार्क्स ने अरस्तू के ऐहिहासिक दृष्टिकोण को ही अपनाया है। इसलिए अरस्तू को सार्वभौमिक ऐतिहासिक पद्धति का जनक माना जाता है।

12. **स्वन्तत्रता व समानता (Liberty and Equality) :** अरस्तू ने सर्वप्रथम स्वतन्त्रता व समानता के परस्पर विरोधी दावों के मध्य संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया है। आधुनिक दृष्टि से यह विचार लोकप्रिय है। इसी आधार पर उसने संवैधानिक लोकतन्त्र की स्थापना का समर्थन किया है।

13. **शाश्वत उद्देश्य (Eternal Objective) :** अरस्तू ने राज्य का उद्देश्य सुखी और आत्म–निर्भर की खोज करना बताया है। उसने राज्य का उद्देश्य जनकल्याण बताकर आधुनिक युग के दर्शन किए हैं। आज सभी देशों में राज्य का उद्देश्य अपने नागरिकों के जीवन को सुखी बनाना है। अतः अरस्तू के विचार शाश्वत सत्य के हैं।

14. **राजनीतिक अर्थव्यवस्था (Political Economy) :** अरस्तू ने आर्थिक परिस्थितियों का राजनीतिक क्रिया–कलापों पर प्रभाव स्वीकार किया है। अरस्तू ने स्पष्ट किया कि सम्पत्ति का लक्ष्य और वितरण शासन व्यवस्था के रूप में निश्चित करने में निर्णायक भूमिका निभाता है। राज्य की समस्याओं का कारण अमीर – गरीब के मध्य अधिक असमानता का होना है। यदि सम्पत्ति पर स्वामित्व व्यक्तिगत रहे और उसका उपयोग सार्वजनिक हो जाए तो राज्य की समस्याएँ आसानी से हल की जा सकती है। यह विचार आधुनिक राजनीति का महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है। आज राजनीतिक अर्थशास्त्र के रूप में उसका महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है। आज राजनीतिक अर्थशास्त्र के रूप में उसका अध्ययन किया जा सकता है। अरस्तू ने राज्य की स्थिरता एवं आत्मनिर्भरता के लिए मध्यम वर्ग की उपस्थिति स्वीकार की है। यह मध्यम– वर्ग पूंजीपति वर्ग व गरीब के बीच के लोग हैं जो सारी अर्थव्यवस्था का संचालन करते हैं।

स्पष्ट है अरस्तू ने अपने अध्ययन में वैज्ञानिक, आगमनात्मक और तुलनात्मक पद्धति को बनाया है। ये तथ्य अरस्तू को राजनीति विज्ञान के जनक के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। वह प्लेटो की तरह कल्पनावादी न होकर यथार्थवादी है। उसने राजनीतिशास्त्र की नीतिशास्त्र से अलग कर उसे एक स्वतन्त्र विज्ञान का रूप प्रदान किया। अतः कहा जा सकता है कि राजनीति विज्ञान अरस्तू से शुरू होता है, प्लेटो से नहीं।

2.18 निष्कर्ष (Conclusion)–

अरस्तू प्रथम राजनीतिक विचारक हैं जिसने राजनीति का एक स्वतन्त्र तथा वैज्ञानिक अध्ययन किया। वह प्लेटो की भांति कल्पनावादी और आदर्शवादी नहीं था बल्कि पूर्णतः व्यवहारिक एवं यथार्थवादी दार्शनिक था। अरस्तू ही वह पहला विचारक था जिसने राज्य का पूर्ण सैद्धांतिक वर्णन किया है। राज्य के जन्म और उसके विकास से लेकर उसके स्वरूप, संविधान की रचना, सरकार के निर्माण, नागरिकता की व्याख्या, कानून की सर्वोच्चता तथा क्रांति जैसे अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। अरस्तू ही वह पहला विचारक था, जिसने यह प्रतिपादित किया कि ''मनुष्य एक सामाजिक व राजनीतिक प्राणी है'' अरस्तू का यह कथन आज भी राजनीति शास्त्र की धरोहर है। अरस्तू को राजनीतिक समस्याओं का एक वैज्ञानिक उपचारक भी कहा जाता है। अपनीपुस्तक पॉलिटिक्स में उसने जो सद्‌गुण विषय सिद्धान्त मध्यम मार्ग (गोल्डन मीन) का सिद्धान्त दिया है, जिसके अनुसार विकास के मार्ग में सबसे बड़ा अवरोधक असंतुलन है, चाहे वह राजनीतिक असंतुलन हो या सामाजिक और आर्थिक असंतुलन। इसी कारण वह एक मध्यम तथा संतुलित मार्ग निकालना चाहता था। मैक्सी के अनुसार, ''पॉलिटिक्स के वे पृष्ठ जो इस समस्या का निरूपण करते हैं। राजनेताओं के लिए आने वाले समस्त गुणों में मार्ग निर्देशिका का कार्य करेगें।

2.19 शब्दावली (Keywords)–

वाग्वीर	–	वाक्‌पटु, संबोधन की कला में दक्ष
ऑटारकिया (Autarkia)	–	पूर्ण निर्भरता
राज्य की अंगिक एकता एक–दूसरे	–	व्यक्ति, परिवार और ग्राम राज्य के अंग हैं तथा से पृथक नहीं हैं।

2.20 स्वमूल्याकंन (Self-Assessment)

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) अरस्तू के राजनीतिक चिन्तन पर प्लेटो के प्रभाव का वर्णन करें।

(2) अरस्तू द्वारा वर्णित मानवीय प्रकृति की विवेचना कीजिए।

(3) अरस्तू द्वारा वर्णित क्रांति के सामान्य कारणों की व्याख्या कीजिए।

दीर्घ उत्तरात्मक प्रश्न (Long Answer Type Question)

(1) अरस्तू के अनुसार क्रांति का क्या अर्थ है? अरस्तू के क्रांति सम्बन्धी सिद्धान्त की विस्तार से व्याख्या करें।

(2) अरस्तू के दासता के सिद्धान्त का आलोचनात्मक वर्णन करें।

(3) अरस्तू के राज्य के सिद्धान्त की व्याख्या करें।

2.21सन्दर्भ सूची–

1. प्रभुदत्त शर्मा, राजनीतिक विचारों का इतिहास (प्लेटो से मार्क्स), कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 1967.
2. बी.एल.फाड़िया, पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास (प्लेटो से मार्क्स), साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2018.
3. जे.पी.सूद, पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का इतिहास (भाग–प्राचीन व मध्यकालीन), जे.नाथ एण्ड कंपनी, मेरठ, 2008.
4. सेबाइन, ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल थ्योरी, न्यूयार्क, 1973
5. पुखराज जैन, राजनीतिक विज्ञान के सिद्धान्त, साहित्य भवन, आगरा, 1988.
6. रघुवीर सिंह, मध्यकालीन विश्व का इतिहास, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. ब्रायन आर. नेल्सन, वेस्टर्न पॉलिटिकल थॉट, वेवलैंड प्रकाशन, 1996.

8. डी. बॉशर व पी. कैली, पॉलिटिकल थिंकरसः फ्रॉम सॉकरेटिज टू द प्रेजेंट, ऑक्सफोर्ड, 2009.
9. जे.कॉलमैन, ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल थॉटः फ्रॉम एंशियट ग्रीस टू अर्ली प्रिस्टियनीटी, ऑक्सफोर्ड, 2000.
10. सी.बी.मैकफर्सन, द पॉलिटिकल थ्योरी ऑफ पसैसिव इंडिवियुलिज्मः हॉब्स टू लॉक, 1962.
11. ली. स्ट्रॉस, हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल फिलॉस्फी, शिकागो यूनिवर्सिटी प्रैस, 1987.

ईकाई – 3

प्रस्तावना (Introduction)

प्राचीन यूनानी चिंतन के बाद पाश्चात्य जगत के दार्शनिक, धार्मिक तथा राजनीतिक बिम्ब पर जिसने सर्वाधिक प्रभाव डाला है। वह ईसा मसीह द्वारा प्रतिपादित ईसाई धर्म रहा। इस कालक्रम में परिस्थितियों के कारण ईसाई धर्म के चिन्तन को अलग–अलग चिंतनों के द्वारा परिस्थितियों तथा अवश्यकताओं के कारण वर्णित किया गया। इन चिंतकों की रचनाओं व विचारों ने न केवल व्यक्ति की धार्मिक सोच व जीवन पर प्रभाव डाला, बल्कि राजनीतिक व सामाजिक व्यवस्थाओं में भी व्यापक परिवर्तन दृष्टिपात हुए। इन चिंतनों में कुछ अग्रणी नामों में से संत अंगस्टाइन व संत थॉमस एक्वीनॉस हैं। जिनके विचारों ने ईसाई धर्म को वो मजबूत आधार प्रदान किया जिससे कालांतर में सम्पूर्ण यूरोप सहित पूरे विश्व में ईसाई धर्म ने अपना अस्तित्व स्थापित करते हुए सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्थाओं को गहराई से प्रभावित किया।

उद्देश्य (Objective)

1. ईसाई धर्म के पुनरूत्थान तथा प्रभाव को समझना।
2. यूनानी चिंतन के मध्ययुगीन राजनीतिक व्यवस्था के चरित्र के बदलाव को समझना।
3. संत आगस्टाइन व संत थॉमस एक्वीनॉस के विचारों को समझना

अध्याय – 3

सेण्ट आगस्टाइन (St. Augustine)

3.1 प्रस्तावना (Introduction).

संत अम्ब्रोज को ईसाई धर्म की स्वायत्तता और स्वतन्त्रता का जो प्रतिपादन किया, उसे एक व्यापक आयाम और स्वरूप उसके महान शिष्य ऑगस्टाइन ने प्रदान किया। आगस्टाइन का मुख्य दर्शन उसके महान ग्रन्थ 'De Civitate De' में निहित है जो अंग्रेजी अनुवाद में 'The City of God' के नाम से प्रसिद्ध है। आगस्टाईन को रोमन चर्च फादर्स में महानतम् समझा जाता है, जिसका आने वाले विचारकों पर व्यापक प्रभाव दिखाई देता है। सेबाईन का कहना है कि उसके लेख विचारों की खान हैं, जिसमें से बाद के विचारकों ने खोदकर विचार निकाले हैं।'' ईसाई चर्च के इतिहास में संत पॉल के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान संत आगस्टाइन को प्राप्त है। आगस्टाइन ने अपने विचारों के द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि रोमन साम्राज्य का पतन ईसाई धर्म को अपनाने के कारण नहीं हुआ था तथा उसका यह उद्देश्य था कि ईसाई धर्म के विरूद्ध लगाए जाने वाले आरोपों का खंडन किया जाए तथा विपक्षियों से रक्षा की जाए। ऑगस्टाइन ने ईसाई धर्म को उस निराशा के काल से बाहर निकालने का कर्म किया, जब ईसाईयत को 'रोम साम्राज्य के पतन' के लिए उत्तरदायी ठहराया जा रहा था। उसने ईसाई धर्म में एक नयी सोच, चेतना तथा ऊर्जा का संचार कर इसे प्रतिस्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

3.2 उद्देश्य (Objectives)–

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी यह समझने के योग्य होगें कि –

- राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में मध्यकालीन युग का क्या महत्व है?
- सेंट ऑगस्टाइनके विचारों पर प्रभाव डालने वाली परिस्थितियां कौन–कौन सी हैं?
- सेंट ऑगस्टाइन ने राज्य तथा चर्च सम्बन्धों पर क्या विचार दिए हैं?

3.3 जीवन परिचय (Life Sketch)

सेण्ट आगस्टाइन का जन्म उत्तरी अफ्रीका के रोमन प्रान्त न्यू मीडिया (अल्जीरिया) के थिगस्ते नामक स्थान पर 354 ई० में हुआ। उसके पिता एक मूर्तिपूजक थे और एक बड़े जमींदार थे। उसकी माँ ईसाईधर्म में विश्वास रखने वाली महिला थी। वह बचपन से ही एक प्रतिभाशाली बालक था। उसकी प्रतिभा से प्रभावित होकर उसके पिता ने उसे अच्छी शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध किया। सेण्ट आगस्टाइन ने अपनी प्रतिभा के बल पर शीघ्र ही वह यूनानी और रोमन साहित्य में निपुण हो गया। 370 ई० में उसने कार्थेज विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। वहाँ से अपनी पढ़ाई पूरी करके उसने अपनी मातृभूमि की सेवा का निश्चय किया और अपने प्रान्त में पढ़ाने लगा। कुछ समय बाद उसने कार्थेज विश्वद्यिालय में ही अलंकारशास्त्र पढ़ाना शुरू कर दिया। उसने यहाँ से नौकरी छोड़ने के बाद 384 ई० में मीलान में अलंकारशास्त्र पढ़ाया। यहाँ पर उनका सम्पर्क सेण्ट अम्ब्रोज से हुआ। सेण्ट अम्ब्रोज की रोमन विरोधी विचारधारा के प्रभाव में आकर उसने उनको अपना गुरू स्वीकार कर लिया और उसने 387 ई० में ईसाई धर्म को ग्रहण कर लिया। ईसाई धर्म के सम्पर्क में आने पर उसने एक क्रियाशील और सच्चा ईसाई बन कर ईसाई धर्म का प्रचार किया। 388 ई० में वह अफ्रीका वापिस लौटकर हिप्पो विशप बन गया। उसने आजीवन इस पद को सुशोभित किया। 430 ई० में वणडाल नामक बर्बर जाति द्वारा हिप्पो नगर पर आक्रमण में उसकी मृत्यु हो गई।

3.4 समकालीन परिस्थितियाँ (Contemporary Situations)

सेण्ट आगस्टाइन का जन्म ऐसे समय में हुआ जब दक्षिणी और पश्चिमी युरोप के बर्बरों के कारण ईसाई धर्म के लिए एक गम्भीर संकट पैदा हो गया था। सभ्यता और कैथोलिक वाद दोनों का भाग्य अधर में लटका हुआ था। वह एक ऐसे संक्रमणकाल का प्रतीक था, जब व्रात्यवाद का अन्त हो रहा था और ईसाई धर्म का मध्ययुग प्रारम्भ हो रहा था। आगस्टाइन के समय में ईसाई धर्म और गैर ईसाई धर्म का विवाद जोरों पर था। लगातार ईसाई धर्म की आलोचनाएँ की जा रही थी। 410 ई० में गॉथों (Goths) और असभ्य बर्बरों (Barbarians) ने रोम के सुन्दर नगर को तहस – नहस कर दिया। चर्च के विरोधी इस प्रचार में लग गए

कि रोम का पतन ईसाई धर्म के कारण हुआ है। विरोधी विचारधारा के प्रबल प्रभावस्वरूप स्वयं ईसाई धर्म में विश्वास रखने वालों को भी आत्मरक्षा के उपाय सोचने पर विवश होना पड़ा। गैर – ईसाई लेखक इस बात पर जोर दे रहे थे कि जब तक जनता ईसाई धर्म से दूर रही, रोम का साम्राज्य विकास की ओर चलता रहा और रोम का पतन उस दिन शुरू हो गयया जब ईसाई धर्म को रोम का राजकीय धर्म बना दिया। गैर – ईसाई (Pagams) लेखकों का विश्वास था कि ईसाई धर्म ने परलोक सुधार पर अधिक बल दिया और सांसरिक लक्ष्यों की उपेक्षा की, इसलिए उसका पतन हुआ। ईसाई धर्मावलम्बी भी व्रातयों की ही तरह भयग्रस्त होकर इस बात के लिए दुःखी थे कि वे रोमन साम्राज्य के पतन को नहीं रोक सके। आगस्टाइन ईसाई धर्मावलम्बी होने के नाते इससे बहुत दुःखी हुआ और उसने ईसाई धर्म की आलोचना का विरोध करना शुरू कर दिया।

पूर्ववर्ती विचारकों का प्रभाव (Influence of Predecessors)

किसी भी विचारक पर पूर्ववर्ती लेखकों का प्रभाव अवश्य पड़ता है। आगस्टाइन भी इसके अपवाद नहीं थे। आगस्टाइन के दर्शन को प्लेटो, सिसरों, स्टोइको आदि विचाराकों ने प्रभावित किया। उन्होनें पूर्ववर्ती लेखकों की विचारधारा का ज्यों का त्यों अपने चिन्तन मे प्रयोग नहीं किया। उन्होनें तर्कपूर्ण ढंग से आवश्यकतानुसार अपने पूर्ववर्ती विचारकों के चिन्तन में परिवर्तन किया और अपने चिन्तन के अनुरूप ढाला। उन्होनें प्लेटो से न्याय का सिद्धान्त, सिसरों से राष्ट्रमण्डल की अवधारणा तथा स्टोइकों से एक सार्वत्रिक (Universal) राज्य की नागरिकता की धारणा ग्रहण की। इन धाराणाओं में आगस्टाइन ने ईसाई धर्म की आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर दिया। इस प्रकार उन्होनें अपने पूर्ववूर्ति विचारकों से प्रभावित होकर ईसाई धर्म की सुरक्षा में अपने को लगा दिया।

महत्त्वपूर्ण रचनाएँ (Important Works)

आगस्टाइन ने ईसाई धर्म को संकट से उभारने के लिए अपनी रचनाओं से प्रयास शुरू किए। उसने ईसाई धर्म का दृढ़ और व्यवस्थित समर्थन किया। उसने बताया कि रोम का पतन दैवीय इच्छा का परिणाम है, न कि ईसाई धर्म के कारण इसका पतन हुआ। उसने अपने इस विचार को प्रबल बनाने के लिए 'ईश्वर की नगरी' (The City of God) नाम पुस्तक

की रचना की । इसमें 22 खण्ड़ है। उसने इस ग्रन्थ को 413 ई० में लिखना शुरू किया था और 426 ई० में उसको पूरा किया। शुरू के 10 खण्ड़ों मे प्रात्यों के आपेक्षपूर्ण आक्रमणों से ईसाई धर्म की रक्षा की गई और शेष 12 खण्ड़ों में 'ईश्वर की नगरी' के निर्माण की रूप–रेखा का वर्णन किया गया है। अपनी इस पुस्तक में आगस्टाइन बताया कि यद्यपि ईसाई धर्म रोम के पतन को नहीं रोक सका, परन्तु उसने ही रोम के पतन के दुःखों को परेशानियों से जनता को छुटकारा दिलाया। उसने तर्क दिया कि रोम के पुराने देवता भी रोम को संकट से नहीं बचा पाए थे। यह सिद्ध करने के लिए उसने इतिहास का क्रमबद्ध वर्णन किया। इस तरह आगस्टाइन ने अपने इस अमर ग्रन्थ की रचना करके ईसाई धर्म की रक्षा का बीड़ा उठाया। उसका अन्य ग्रन्थ 'Confessions' है जो राजनीतिक चिन्तन की दृष्टि से ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं है।

3.5 राजनीतिक विचार (Political Ideas)

आगस्टाइन के महत्त्वपूर्ण राजनीतिक विचार उसकी प्रमुख रचना में ही केन्द्रित है। उसने प्रमुख राजनीतिक विचार निम्नलिखित है :–

1. **इतिहास का दर्शन (Philosophy of History)** : आगस्टाइन ने अपने ग्रन्थ 'The City of God' के प्रारम्भिक 10 खण्ड़ों में इतिहास का क्रमबद्ध विवेचन करके ईसाई धर्म की आलोचनाओं का प्रतिवाद किया है। आगस्टाइन ने रोम के पतन का कारण दैवीय इच्छा का परिणाम मानते हुए ईसाई धर्म की रक्षा का प्रयास किया है। आगस्टाइन के अनुसार – "रोम का पतन एक दैवी न्याय है जिसका प्रयोजन वास्तविक ईश नगर की स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त करना था। जो ईश्वर व्यवस्था, नियमितता और प्रकृति में सौन्दर्य का नियमन करता है, वह सांसारिक घटनाओं का भी संचालन करता है और राष्ट्रों का उत्थान और पतन इसी में सम्मिलित है।"

   आगस्टाइन ने बताया कि यह मानना मूर्खतापूर्ण है कि रोम के पतन के लिए ईसाई धर्म उत्तरदायी था। उसने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि गैर – ईसाई देवताओं का तिरस्कार करने के कारण रोम का पतन नहीं हुआ था। उसने कहा कि यह तो पूर्व नियोजित ईश्वरीय इच्छा का परिणाम था ताकि पृथ्वी पर ईश्वर का

साम्राज्य कायम किया जा सके। उसने बताया कि मानव का इतिहास अच्छाई और बुराई की शक्तियों के मध्य संघर्ष का इतिहास है। विभिन्न भौतिक साम्राज्यों के रूप में बुराइयों के चरम सीमा पर पहुँचने पर उनका अन्त करना आवश्यक होता है क्योंकि भौतिक साम्राज्य अस्थायी होते हैं। ये साम्राज्य मानव के अकल्याणकारी कार्यों पर आधारित होने के कारण पारस्परिक संघर्ष द्वारा नष्ट हो जाते है। उसका कहना है कि इन्हें नष्ट होना ही चाहिए क्योंकि यही दैवीय इच्छा है और इनके स्थान पर स्थापित ईश्वर का साम्राज्य ही वास्तविक साम्राज्य है जो कभी नष्ट नहीं हो सकता। इस प्रकार आगस्टाईन ने अपने इतिहास के दर्शन द्वारा यह सिद्ध करने की चेष्टा की। रोम का पतन ईश्वरीय चेष्टा का परिणाम है ताकि पृथ्वी पर ईश–नगरी की स्थापना की जा सके। उसके मानव इतिहास का क्रमबद्ध विवेचन प्रस्तूत करके यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि मानव इतिहास की प्रगति पूर्व आयोजित लक्ष्य की तरफ हो रही थी और वह लक्ष्य था ईसाई राष्ट्रमण्डल की स्थापना। इसी लक्ष्य के मार्ग में रोमन साम्राज्य एक बाधा बनकर खड़ा था; इसलिए उसका नाश कर दिया गया। आगस्टाइन कहता है कि रोम के पतन में सन्तोषजनक अच्छी बात यह है कि अब यहाँ के शासक और जनता ईसाई धर्म अपनाकर राज्य के रास्ते में आने वाली किसी भी बाधा को रोक पाने में सफल होंगे। ईसाई राष्ट्रमण्डल की स्थापना से रोम आध्यात्मिक मुक्ति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जाएगा।

2. **दो नगरियों का सिद्धान्त (The Theory of Two Citiies)** : आगस्टाइन ने अपनी पुस्तक 'The City of God' के खण्ड़ 11 से 22 तक ईश–नगरी का चित्रण किया है। इसमें वह दो नगरों का चित्रण करते हुए कहता है कि भौतिक नगर नष्ट होते रहते हैं लेकिन एक स्थायी नगर भी है, वह ईश्वर का नगर है। पृथ्वी पर इसका नवीतम और सर्वांगपूर्ण भौतिक रूप ईसाई चर्च है। आगस्टाइन कहता है कि इन दो नगरियों में से एक तो सांसारिक नगरी (The City of Earth) है और दूसरी ईश्वर की नगरी (The City of God) है। ईश – नगर सार्वदेशिक व सार्वकालिक है लेकिन सांसारिक नगरी नश्वर

व अस्थायी है। आगस्टाइन मानव स्वभाव के दो रूपों शरीर और आत्मा से अपने दो नगरों के सिद्धान्त को जोड़ते हुए कहते हैं कि ईश्वरीय नगर का सम्बन्ध आत्मा से है लेकिन सांसारिक नगर का सम्बन्ध शरीर से है। सांसारिक नगरी का सम्बन्ध मनुष्य की वासनाओं से है, इसलिए यह शैतान की नगरी है। पाप की नगरी होने के कारण इसका पतन होना निश्चित है। इस पाप की शुरूआत देवताओं की अवज्ञाओं से शुरू होती है और बाद में गैर – ईसाइयत के रूप में प्रकट होती है। रोम साम्राज्य का पतन भी इस पापमय जीवन के कारण हुआ है। ईश्वरीय नगरी अविनाशी तथा स्थायी है। इस नगरी में धर्मपरायण लोग ही रहते हैं। इस नगरी के सभी लोग ईश्वर के प्रति अपने सर्वनिष्ठ प्रेम के कारण बँधे हुए हैं। इस नगरी की आधारशिला स्वर्गीय शान्ति और आध्यात्मिक मुक्ति है। जिस प्रकार सांसारिक नगरी बुराई का प्रतीक है, उसी प्रकार ईश्वरीय नगरी अच्छाई का प्रतीक है। ईश्वरीय नगरी का सदस्य बनने के लिए सच्ची योग्यता ईश्वर का अनुग्रह है, न कि जाति, राज्य या वर्ग है। ईश–नगरी के सदस्य प्रेम द्वारा ईश्वर से बँधे रहते हैं और सभी एक समाज के सदस्य होते है। ईश्वरीय नगरी की सदस्यता विशाल है क्योंकि इसमें सभी देवदूत, सन्त तथा सद्गुणी व्यक्ति शामिल होते हैं। आगस्टाइन का मानना है कि ये दोनों नगरियाँ एक – दूसरे के आस – पास ही रहती हैं। ये आपस में मिलती रहती हैं और एक – दूसरे को अतिछादित करती रहती है। इसमें संघर्ष होने पर ईश्वरीय नगरी की ही विजय होती है। चर्च ईश्वरीय नगरी के प्रतिनिधि के रूप में सर्वोच्च व सर्वशक्तिमान है और केवल ईश्वर के प्रति उत्तरदायी है। ईश्वरीय नगरी का सदस्य बनने के लिए ईश्वर की कृपा अनिवार्य है। इस प्रकार आगस्टाइन ने स्पष्ट किया है कि सांसारिक नगरी (रोम साम्राज्य) का पतन आवश्यक था क्योंकि यह ईश्वरीय नगरी (चर्च) की विरोधी हो गई थी।

ईश्वरीय नगरी के दो सद्गुण (Two Virtues of the City of God)

आगस्टाइन ने ईश्वरीय नगरी के दो सद्गुणों का भी वर्णन किया है। ये दो सद्गुण हैं – न्याय The (Justice) और शान्ति (Peace)। आगस्टाइन कहता है कि व्यवस्था के

अनुकूल आचरण ओर इस व्यवस्था से उत्पन्न होने वाले कर्त्तव्यों का पालन करना न्याय है। आगस्टाइन कहता है कि पूर्ण न्याय न तो परिवार की व्यवस्था में है और न ही राज्य की में। राज्य व परिवार में परस्पर संघर्ष होता रहता है, इसलिए मनुष्य केवल एक के प्रति न्यायपूर्ण हो सकता है। इसलिए राज्य व परिवार में न्याय सापेक्षिक (Relative) होता है, पूर्ण न्याय नहीं। सम्पूर्ण न्याय तो सार्वत्रिक समाज (सार्वदेशिक व्यवस्था) में पाया जाता है। समाज मनुष्य मात्र का समाज है जिसका शासक ईश्वर है। इसका संचालन सब मनुष्यों के लिए ईश्वर की इच्छा द्वारा निर्धारित एक सार्वदेशिक (राज्य से बाहर) व्यवस्था द्वारा किया जाता है। एक राज्य इस व्यवस्था का उल्लंघन कर सकता है और वह तब अन्यायपूर्ण होगा। उस स्थिति में व्यक्तियों द्वारा अपने राज्य की अवज्ञा करना और सार्वदेशिक व्यवस्था का पालन करना न्यायसंगत होगा। इस प्रकार राज्य के व्यक्ति ईश्वर के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करने में सफल सिद्ध होंगे। आगस्टाइन की यह धारणा प्लेटो से अधिक व्यापक है। यह समय और स्थान की सीमा से बँधी नहीं है। अतः यह अधिक पूर्ण धारणा है। आगस्टाइन का सार्वदेशिक समाज ईसाई राष्ट्रमण्डल (Christian Commonwealth) के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इस धारणा द्वारा आगस्टाइन राज्य को गिरजाघर (चर्च) के अधीन कर देते हैं। राज्य चर्च के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। गैर ईसाई राज्यों में न्याय नहीं था क्योंकि वे चर्च के कार्यों में हस्तक्षेप करते थे। अतः सच्चा न्याय ईसाई धर्म के आविर्भाव से ही सम्भव हो सकता है। इस प्रकार आगस्टाइन ने इस सद्‌गुण के द्वारा ईश्वरीय नगरी की प्रशंसा करके ईसाई राष्ट्रमण्डल का समर्थन किया है।

आगस्टाइन ईश्वरीय नगरी का दूसरा सद्‌गुण शान्ति (Peace) को मानता है। वह संघर्ष की अनुपस्थिति को ही शान्ति नहीं मानता। उसकी नजर में शान्ति एक सामंजस्यपूर्ण ठोस सम्बन्ध है। भौतिक राज्य और ईश नगर दोनों का लक्ष्य शान्ति स्थापित करना है। राज्य केवल सापेक्षिक (Relative) शान्ति स्थापित करता है। ऐसी शान्ति साध्य न होकर साधन होती है। राज्य की शान्ति का अर्थ एक – दूसरे के

साथ व्यवस्थाबद्ध सम्बन्धों का सामंजस्य है जबकि ईश्वरीय नगरी की दृष्टि में सर्वाधिक व्यवस्थित और सामंजस्यपूर्ण तरीके से ईश्वर की प्राप्ति और ईश्वर में लीन होने से एक – दूसरे का हाथ बाँटना ही शान्ति है। भौतिक राज्य (सांसारिक नगरी) द्वारा स्थापित शान्ति नकारात्मक शान्ति है और वह पूर्ण शान्ति नहीं है। यह कानूनों पर आधारित शान्ति है जो बदलते है जो बदलते रहते हैं। पूर्ण और सार्वदेशिक शान्ति ईश्वर में लीन होने पर ही प्राप्त हो सकती है।

इस प्रकार आगस्टाइन ईश्वरीय नगरी के दो सद्‌गुणों की व्याख्या करके ईश्वरीय नगरी के महत्त्व को सिद्ध करता है। उसके विचारानुसार ईश्वरीय नगरी में ही न्याय व शान्ति जो मनुष्य व राज्य के ध्यये हैं, प्राप्त किए जा सकते हैं।

3. **राज्य का सिद्धान्त (Theory of State) :** आगस्टाइन का कहना है कि न्याय राज्य का आधार नहीं होता। राज्य तो ऐसी भी हो सकते हैं जो ईसाई धर्म को न मानते हों किन्तु न्याय तो केवल ईसाई राज्य में ही हो सकता है। इसलिए न्याय चर्च का लक्षण है, न कि राज्य का। चर्च का अधिकार राज्य के अधिकार से बड़ा होता है। सेण्ट आगस्टाइन ने कहा है कि समूह में रहने की मनुष्य की प्रवृति ओर मूल पाप से उत्पन मनुष्य के पाप के कारण ही राज्य की उत्पत्ति हुई। उसके मतानुसार राज्य की स्थापना ईश्वर द्वारा मनुष्य को पापमय जीवन से मुक्ति दिलाने के लिए की गई है। यद्यपि राज्य की उत्पत्ति मनुष्य को पापमुक्त करने के लक्ष्य को लेकर हुई है, फिर भी राज्य पाप का प्रतीक नहीं है। राज्य की उत्पत्ति स्वयं ईश्वर ने की है। राज्य स्वयं ईश्वर का प्रतिनिधि है। इसलिए उसकी आज्ञा का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। आगस्टाइन का मानना है कि मनुष्य सामाजिक सहज प्रवृति के कारण शान्ति प्राप्त करना चाहता है। राज्य कम सांसारिक शान्ति व व्यवस्था प्रदान करता है। परन्तु सांसारिक शान्ति अपने आप में साध्य नहीं है। वह तो सार्वत्रिक (Universal) शान्ति की उपलब्धि के लिए एक आधार है। सार्वत्रिक शान्ति तो ईश्वरीय नगरी में ही सम्भव है। इस प्रकार वह दैविय सिद्धान्त का प्रतिपादन करना है अर्थात्‌वह राज्य की उत्पत्ति का दैविय सिद्धान्त पेश करता है। राज्य

ईश्वरीय नगरी के लिए न्याय प्रदान करता है। चर्च को सम्पत्ति और इमारत राज्य ही प्रदान कर सकता है। राज्य ही चर्च को इसका अधिकार दे सकता है। राज्य को दैवी मान्यता होती है इसलिए उसके आदेशों का पालन करना चाहिए। यदि राज्य धर्म और नैतिकता का पालन न करे तो उसकी अवज्ञा करनी चाहिए। आगस्टाइन ने लौकिक राज्य की अपेक्षा ईश्वरीय राज्य को सम्पूर्ण शान्ति व न्याय पर आधारित राज्य मानकर उसके पालन पर बल दिया है। वह कहता है कि गैर – ईसाई राज्य लौकिक राज्य है तथा उसका ईसाई राज्य ईश्वरीय राज्य है जो अन्य से सर्वोत्तम है। उसने अपने इस सिद्धान्त द्वारा रोम के पतन पर हर्ष व्यक्त करते हुए कहा कि रोम का राज्य लौकिक राज्य था। उसके पतन से ईश्वरीय राज्य (ईसाई राज्य) का मार्ग प्रशस्त हो गया है। आगस्टाइन ने अप्रत्यक्ष रूप से चर्च को राज्य से श्रेष्ठ घोषित कर दिया है।

4. **चर्च और राज्य में सम्बन्ध (Relation Between Church and State) :** राज्य की उत्पत्ति के बाद आगस्टाइन न चर्च और राज्य के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट किया है। उनका मानना है कि चर्च ईश्वर का प्रतिनिधि है। ईश्वर की अधिक ऊँची सत्ता होने के नाते चर्च के आदेशों का पालन करना आवश्यक है। उनका मानना है कि राज्य के कानूनों का पालन और उसमें सत्ता का सम्मान तभी न्यायसंगत है जब तक वे ईश्वर के प्रति अपने कर्त्तव्य से विपरित न जाएँ। राज्य को सार्वभौम रोमन कैथोलिक चर्च के अधीन करते हुए भी वे राज्य के कानूनों का पालन करने का प्रचार करते हैं। परन्तु यह कानून निरपेक्ष नहीं है। यदि यह कानून व्यक्ति को सच्ची शान्ति व न्याय प्रदान करने में सक्षम नहीं है तो उसका विरोध किया जा सकता है। वह कहता है कि राज्य की गिरजाघर के धर्मनिरपेक्ष (Secular) अंग के रूप में राज्यअधिकार सम्भालना चाहिए। परन्तु आगस्टाइन ऐहिक व आध्यात्मिक मामलों में स्पष्ट विभाजन रेखा खींचकर नागरिकों को ऐहिक मामलों में ही राज्य के आदेश का पालन करने की बात कहते हैं। यदि राज्य धर्म या आध्यात्मिक मामलों में हस्तक्षेप करे तो नागरिकों को उस राज्य के आदेशों से मुँह मोड़ लेना चाहिए। चर्च और

राज्य एक दूसरे पर आश्रित होते हुए भी चर्च सर्वोच्च संस्था है जो ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में पृथ्वी पर विराजमान है। आगस्टाइन का कहना है कि चर्च और राज्य में परस्पर सहायता व सहयोग का सम्बन्ध होना चाहिए। ईसाई सम्राट का चर्च के आध्यात्मिक मार्गदर्शन की जरूरत होती है तथा चर्च को विधि व व्यवस्था के लिए राज्य की आवश्यकता होती है। अतः दोनों को सामंजस्यपूर्ण ढंग से कार्य करना चाहिए तभी ईश–नगर की स्थापना सम्भव है। इस प्रकार आगस्टाइन चर्च को आध्यात्मिक क्षेत्र में सर्वोच्च बनाने के साथ – साथ उसे ऐहिक मामलों में भी राज्य को चर्च के अधीन कर देते हैं।

5. **सम्पत्ति और दासता सम्बन्धी विचार (Views on Property and Slavery) :** आगस्टाइन ने भी अन्य ईसाई विचारकों की तरह सम्पत्ति रखना वैध माना है। उसका मत है कि सम्पत्ति रखना कोई प्राकृतिक अधिकार न होकर परम्परागत परिपाटी है और यह अधिकार राज्य प्रदान करता है। उसका विचार है कि सम्पत्ति के अभाव में मनुष्य अपने लौकिक और आध्यात्मिक जीवन के उत्तरदायित्वों को पूरा नहीं कर सकता। परन्तु उसका कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति को उतनी ही सम्पत्ति रखने का अधिकार है जितनी इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति का प्रयोग जनहित के लिए करना चाहिए।

आगस्टाइन दास – प्रथा को उचित ठहराता है क्योंकि उसका विचार है कि मूल पाप से उत्पन्न मनुष्य के पाप का दण्ड दासता है। आगस्टाइन इस बात से इन्कार करता है कि मनुष्य जन्म से दास होता है। उसका मानना है कि यदि ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त हो जाए तो मनुष्य का उत्कर्ष हो सकता है। आगस्टाइन का कहना है कि – "दासता एक प्रकार का आदि – मानव के पतन के कारण होने वाले मनुष्यता के पतन के लिए मानव जाति को दिया गया सामूहिक दण्ड है।" उसका मानना है मालिक दास से अच्छा नहीं होता। मालिक पर ईश्वर की कृपा होती है। यदि दास भी ईश्वर की कृपा का पात्र बन जाए तो वह भी दासता से मुक्त हो सकता है। लेकिन आगस्टाइन दासता का औचित्य सिद्ध करने में असफल रहे हैं। उन्होनें यह बताया कि यदि कोई मनुष्य पाप करता है तो उसके पाप के

बदले में उसे दास बनाया जाना तो उचित है, लेकिन यदि सम्पूर्ण मानवता पाप करे तो उसे ही दास क्यों बनाया जाए जबकि अन्य कोई दास नहीं बनाया जाता। अतः दासता का सिद्धान्त असन्तोषजनक है।

3.6 योगदान एवं प्रभाव

आगस्टाइन में धर्मसत्ता तथा राजसत्ता को अलग – अलग मानते हुए धर्मसत्ता (चर्च) की सर्वोच्च माना है। राजसत्ता के औचित्य तथा अधिकार क्षेत्र को उसने ईश्वरीय इच्छा पर प्रतिष्ठित करके इसके प्रति समुचित दृष्टिकोण अपनाया है। उसने 'ईश्वरीय नगर' के विचार का प्रतिपादन कर ईसाई जगत्के सामने एक आदर्श प्रस्तुत कर उसकी प्राप्ति के एकमात्र साधन के रूप में चर्च को प्रतिष्ठित कर एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। उसकी पुस्तक 'The City of God' कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेण्ट धर्मावलम्बियों के लिए एक प्रेरणा–स्त्रोत बन गई और परवर्ती ईसाई चिन्तन को प्रभावित किया। उसकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण धारणा इतिहास के दर्शन पर आधारित ईसाई प्रजाधिपत्य (Christain Commonwealth) की स्थापना थी जो मानव के आध्यात्मिक विकास के चरमोत्कर्ष का प्रतीक है। उसके महत्त्वपूर्ण योगदान निम्नलिखित हैं :–

1. पवित्र रोमन साम्राज्य का निर्माण सेण्ट आगस्टाइन की पुस्तक 'ईश्वर की नगरी' (The City of God) पर भी आधारित किया है। वास्तव में आगस्टाइन ही ईसाई राष्ट्रमण्डल के पिता हैं। यह अवधारणा मध्ययुग में एक विवाद का विषय रही।
2. आगस्टाइन का चर्च को सर्वाच्चता का सिद्धान्त मध्ययुग में एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा रहा। उसने राज्य से चर्च को श्रेष्ठ बताकर चर्च को ईश्वर का प्रतिनिधि कहा। इससे चर्च के प्रति लोगों की रूचि बढ़ने लगी और चर्च मध्ययुग में सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गया। आगस्टाइन का चर्च व राज्य की सर्वोच्चता की द्वैधवादी सिद्धान्त मध्ययुगीन विचारधारा का आधार बन गया। यह आगस्टाइन की मौलिक देन है।
3. आगस्टाइन ने सार्वभौमवाद (Universalism) की अवधारणा का प्रतिपादन किया है। उसने सार्वदेशिक समाज की स्थापना के रास्ते में राज्य, जाति, भाषा आदि के

अवरोध उत्पन्न नहीं हो सकते। यह अवधारणा मध्ययुगीन चिन्तन का आधार बन गई।

4. आगस्टाइन ने दैवीय सिद्धान्त को ठोस आधार प्रदान किया। उसने बताया कि राज्य 'ईश्वर की इच्छा का परिणाम' है। उसने बताया कि चर्च ईश्वर का प्रतिनिधि है। चर्च ही व्यक्ति को आध्यात्मिक मुक्ति प्रदान कर सकता है। इससे मध्ययुग में नए चिन्तन का सूत्रपात हुआ।

5. उसका द्वैधवाद (राजसत्ता और धर्मसत्ता) का सिद्धान्त मध्ययुग में गेलासियस के दो तलवारों के सिद्धान्त का आधार बना। मध्ययुग का समान्तरवाद (Parallelism) भी आगस्टाइन की विचारधारा पर ही आधारित है। इसलिए मध्ययुग में आगस्टाइन की सबसे महत्त्वपूर्ण देन उसका द्वैधवादी सिद्धान्त है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आगस्टाइन मध्ययुगीन चिन्तन के एक प्रभावशाली विचारक रहे हैं। उसकी ईश्वरीय नगर (The City of God) की अवधारणा ने अनेक शताब्दियों तक मध्ययुगीन तथा परवर्ती विचारको ंको प्रभावित किया। उसने चर्च की सर्वोच्चता के सिद्धान्त का बीजारोपण करके ईसाई विचारकों के चिन्तन को प्रभावित किया। उनके धार्मिक मन्तव्यों, बाइबल के प्रमाणवाद, चर्च की प्रभुता, आदिम पाप आदि ने सैंकड़ों वर्षों तक मध्ययुगीन विचारकों का प्रतिनिधितत्व किया। सुप्रसिद्ध पोप, ग्रगरी सप्तम, वोनीफेस अष्टम, थॉमस एकवीनास, दाँते, ग्रोशियस आदि के विचारों को आगस्टाइन के दर्शन ने अत्याधिक प्रभावित किया। सेबाइन का मत है – "उसकी रचनाएँ विचारों की खान हैं। परवर्ती रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टैण्ट इसे खोदकर नए विचार निकालते रहे।" फोक्स जैक्सन ने भी कहा कि – "सेण्ट पॉल के बाद आगस्टाइन चर्च के इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण हस्ती रहे है।" सम्पूर्ण मध्ययुगीन चिन्तन राज्य और चर्च के बीच के वाद – विवाद के चारों ओर ही केन्द्रित रहा। अतः कहा जा सकता है कि आगस्टाइन मध्ययुगीन ईसाइत विचारधारा के सबसे अधिक प्रभावशाली विचारक रहे हैं जिन्होनें परवर्ती चिन्तन को अत्यधिक प्रभावित किया है।

3.7 निष्कर्ष–

सेंट ऑगस्टाइन के विचारों ने यूरोपीय विचार जगत को बहुत गहराई से प्रभावित किया है। उसने ईसाई धर्म को मजबूत आधार प्रदान किया जिससे कालांतर में सम्पूर्ण यूरोप सहित पूरे विश्व में ईसाई धर्म ने अपना आधिपत्य स्थापित करते हुए सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं को गहराई से प्रभावित किया। सेंट ऑगस्टाइन का एक महत्वपूर्ण विचार एक ईसाई राज्य का सिद्धान्त है, जिसे वैधानिक तथा प्रोटेस्टेंट दोनों ही सम्पद्रायों ने एक समान रूप से स्वीकार किया है। उनके विचारों ने मध्ययुग को तो प्रभावित किया ही, साथ ही साथ आधुनिक युग भी उसके प्रभाव से अछूता नहीं था। उसने ईसाई धर्म को एक तार्किक आधारशिला प्रदान करने का प्रयास किया। गैटेल के शब्दों में, ''सेंट ऑगस्टाइन के कार्य का महत्व यह था कि उसने चर्च को उसके इतिहास के एक घोर संकट में एक सुनिश्चित और व्यवस्थित विचारधारा प्रदान की, उसके अस्तित्व को स्पष्टता और अपनापन दिया तथा उसके उद्देश्य को आत्म–चेतना मूलक बनाया।''

3.8 शब्दावली (Keywords)–

बिशप– ईसाई धर्म के धर्म गुरू

सांसारिक नगर– संत ऑगस्टाइन द्वारा प्रतिपादित अवधारणा जिसमें लौकिक राज्य को पाप के नगर या सांसारिक नगर की संज्ञा दी गयी है।

पोप– ईसाई धर्म के सर्वोच्च धर्मगुरू एवं विवेचक जो धर्म की व्याख्या करते हैं।

3.9 स्व–मूल्यांकन (Self Assessment)

लघु उत्तरीय प्रश्न–

(1) संत ऑगस्टाइन ने लौकिक राज्य पर क्या विचार दिए हैं?

(2) मध्ययुग का 'दो तलवारों के सिद्धान्त' को स्पष्ट कीजिए।

(3) संपत्ति पर संत ऑगस्टाइन के क्या विचार हैं?

(4) दास प्रथा के सम्बन्ध में संत ऑगस्टाइन ने क्या लिखा है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

(1) संत ऑगस्टाइन के सांसारिक नगर व ईश्वरीय नगर की धारणा स्पष्ट करते हुए रोमन साम्राज्य पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण करें।

(2) राजनीतिक चिंतन के इंतिहास में संत ऑगस्टाइन के विचारों का मूल्यांकन करें।

(3) संपति, युद्ध तथा दासता पर संत ऑगस्टाइन के विचारों की समीक्षा कीजिए।

3.10 सन्दर्भ सूची–

1. प्रभुदत्त शर्मा, राजनीतिक विचारों का इतिहास (प्लेटो से मार्क्स), कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 1967.
2. बी.एल.फाड़िया, पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास (प्लेटो से मार्क्स), साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2018.
3. जे.पी.सूद, पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का इतिहास (भाग–प्राचीन व मध्यकालीन), जे.नाथ एण्ड कंपनी, मेरठण 2008.
4. सेबाइन, ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल थ्योरी, न्यूयार्क, 1973
5. पुखराज जैन, राजनीतिक विज्ञान के सिद्धान्त, साहित्य भवन, आगरा, 1988.
6. रघुवीर सिंह, मध्यकालीन विश्व का इतिहास, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली
7. ब्रायन आर. नेल्सन, वेस्टर्न पॉलिटिकल थॉट, वेवलैंड प्रकाशन, 1996.
8. डी. बॉशर व पी. कैली, पॉलिटिकल थिंकरसः फ्रॉम सॉकरेटिज टू द प्रेजेंट, ऑक्सफोर्ड, 2009.
9. जे.कॉलमैन, ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल थॉटः फ्रॉम एंशियट ग्रीस टू अर्ली प्रिस्टियनीटी, ऑक्सफोर्ड, 2000.
10. सी.बी.मैकफर्सन, द पॉलिटिकल थ्योरी ऑफ पसैसिव इंडिवियुलिज्मः हॉब्स टू लॉक, 1962.
11. ली. स्ट्रॉस, हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल फिलॉस्फी, शिकागो यूनिवर्सिटी प्रैस, 1987.

अध्याय – 4

सेण्ट थॉमस एक्विनास (St. Thomas Aquinas)

4.1 प्रस्तावना (Introduction).

एक्विनास 13वीं शताब्दी के महानतम् व्यक्तियों में से एक था। उसी महानता का आधार यह था कि उसने उस नवीन यूरोप की उच्च आशाओं का प्रतिनिधित्व किया जोकि धीरे–धीरे अन्धकार के युग से बाहर निकलने का प्रयास कर रहा था तथा ज्ञान के नए स्रोतों की तलाश कर रहा था। ए.वीनास मध्यकाल का एक महानतम् क्रमबद्ध दार्शनिक है क्योंकि उसने विभिन्न विचारधाराओं को जोकि पहले अलग–अलग प्रवाहित थी, एक साथ, एक प्रणाली में संशलिष्ट करने का प्रयास किया। उसने अपने गुरू अल्बर्ट महान् के पद चिन्हों पर चलते हुए अरस्तु के ईसाई राज्य (Christianise de version of Aristotle) को संसार के सामने लाने का प्रयास किया। उसकी महान कृति 'सम्मा थ्योलौजिका' (Summa Theologica) विचारों का भव्य तथा विशाल प्रासाद है जिसमें प्लेटो की परम्पराओं, अरस्तू का दर्शन, रोमन कानून, बाइबल की शिक्षाओं, चर्च फादर्स तथा अन्य महान धर्मशास्त्रियों के कथनों के साथ समावेश हुआ है। उसने परम्परागत मध्ययुगीन चिंतनों के विपरीत राज्य तथा चर्च में सहज सम्बन्धों की बात कही। उसने ईसाई धर्म के इस विचार का खण्डन किया कि राज्य पाप है अपितु वह कहता है कि राज्य का कार्य ऐसी स्थिति जुटाना है जिसमें चर्च आत्म–मुक्ति के कार्य को समुचित रूप से सम्पादित कर सके तथा जो नागरिकों को ऐसे अनुशासन में रख सके जिससे वे नैतिक रूप से श्रेष्ठतर मनुष्य बन सकें।

4.2 उद्देश्य (Objectives)–

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य होगें–

- संत एक्विनास के विचारों पर प्रभाव डालने वाले कारकों को जानना।
- संत एक्विनास के ईसाईयत पर दिए गए विचारों का अध्ययन करना।

- संत एक्विनास द्वारा दी गई चर्च तथा राज्य सम्बन्धों की परिभाषा को जानना।
- संत एक्विनास द्वारा कानूनों के वर्गीकरण के आधारों को समझना।

4.3 जीवन परिचय (Life Sketch)

13 वीं शताब्दी के महान् दार्शनिक सेण्ट थॉमस एक्विनास का जन्म 1225 ई० में नेपल्स राज्य (इटली) के एक्वीनो नगर में हुआ। उसका पिता एकवीनी का काऊण्ट था। उसकी माता थियोडोरा थी। सेण्ट थॉमस एक्विनास का बचपन सम्पूर्ण सुख – सुविधाओं से परिपूर्ण था। उसकी जन्मजात प्रतिभा को देखकर उसके माता–पिता उसे एक उच्च राज्याधिकारी बनाना चाहते थे। इसलिए उसे 5 वर्ष की आयु में मौंट कैसिनो की पाठशाला में भेजा गया। इसके बाद उसने नेपल्स में शिक्षा ग्रहण की। लेकिन उसके धार्मिक रूझान ने उसके माता – पिता के स्वप्न को चकनाचूर कर दिया और उसने 1244 ई० में 'डोमिनिकन सम्प्रदाय'की सदस्यता स्वीकार कर ली। उसके माता – पिता ने उसे अनेक प्रलोभन देकर इसकी सदस्यता छोड़ने के लिए विवश किया लेकिन उसके दृढ़ निश्चय ने उनकी बात नहीं मानी। इसलिए वह धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए पेरिस चला गया। वहाँ पर उसने आध्यात्मिक नेता अल्बर्ट महान् के चरणों में बैठकर धार्मिक शिक्षा ग्रहण की। इसके बाद उसने 1252 ई० में अध्ययन व अध्यापन कार्य में रूचि ली और उसने इटली के अनेक शिक्षण संस्थानों में पढ़ाया। इस दौरान उसने विलियम ऑफ मोरवेक के सम्पर्क में आने पर अरस्तू व उसके तर्कशास्त्र पर अनेक टीकाएँ लिखीं। उस समय भिक्षुओं के लिए पेरिस विश्वविद्यालय में उपाधि देने का प्रावधान नहीं था। इसलिए पोप के हस्तक्षेप पर ही उसे 1256 ई० में 'मास्टर ऑफ थियोलोजी' (Master of Theology) की उपाधि दी गई। इसके उपरान्त उसने ईसाई धर्म के बारे में अनेक ग्रन्थ लिखकर ईसाईयत की बहुत सेवा की। पोप तथा अन्य राजा भी अनेक धार्मिक विषयों पर उसकी सलाह लेने लग गए। इस समय उसकी ख्याति चारों और फैल चुकी थी। अपने समय के महान् प्रकाण्ड विद्वान की अल्पायु में ही 1274 ई० में मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद 16 वीं शताब्दी में उसे 'डॉक्टर ऑफ दि चर्च' (Doctor of the Church) की उपाधि देकर सम्मानित किया गया।

महत्त्वपूर्ण रचनाएँ (Important Works)

सेण्ट थॉमस एक्विनास के राज–दर्शन का प्रतिबिम्ब उसकी दो रचनाएँ 'डी रेजिमाइन प्रिन्सिपम' (De Regimine Principum) तथा 'कमेण्ट्री ऑन अरिस्टॉटिल्स पॉलिटिक्स' (Commentary on Aristotle's Politics) है। इन रचनाओं में राज्य व चर्च के सम्बन्धों के साथ – साथ अन्य समस्याओं पर भी चर्चा हुई है। ये रचनाएँ राज्य व चर्च के सम्बन्धों का सार मानी जाती हैं। ये रचनाएँ राज्य व चर्च के सम्बन्धों का सार मानी जाती हैं। 'सुम्मा थियोलॉजिका' (Summa Theologica) भी एक्विनास का एक ऐसा महान् ग्रन्थ माना जाता है, जिसमें प्लेटो तथा अरस्तू के दर्शनशास्त्र का रोमन कानून और ईसाई धर्म – दर्शन के साथ समन्वय स्थापित किया गया है। इस ग्रन्थ में कानून की संकुचित रूप से व्याख्या व विश्लेषण किया गया है। 'रूल ऑफ प्रिन्सेस' (Rule of Princess) 'सुम्मा कण्ट्रा जेटाइल्स' (Summa Contra Gentiles) 'टू दि किंग ऑफ साइप्रस' (To the King of Cyprus) 'ऑन किंगशिप' (On Kingship) भी एक्विनास की अन्य रचनाएँ है। 'ऑन किंगशिप' (On Kingship) में एक्विनास राजतन्त्र व नागरिक शासन पर चर्चा की है। उसकी सभी रचनाएँ उसके महान् विद्वतावादी होने के दावे की पुष्टि करती हैं।

4.4 अध्ययन पद्धति : विद्वतावाद (Method of Study : Scholasticism)

सेण्ट थॉमस एक्विनास का युग बौद्धिक और धार्मिक दृष्टि से एक असाधारण युग था। यह युग पूर्ण संश्लेषण का युग था। यह युग पूर्ण संश्लेषण का युग था जिसमें समन्यवादी दृष्टिकोण पर जोर दिया जा रहा था। यह विद्वतावाद के दो प्रमुख जीवन दर्शन की नैतिक, सामाजिक, राजनितिक, आर्थिक व अन्य समस्याओं का सुन्दर समावेश था। विद्वतावाद के दो प्रमुख लक्षण – युक्ति व विश्वास थे। इस युग में चर्च के सर्वोच्चता सिद्धान्त की तार्किक या युक्तिपरक व्याख्या करके यह स्पष्ट किया गया कि चर्च सिद्धान्त तर्क के विपरीत नहीं है। विद्वतावाद विश्वास और युक्ति (तर्क) में तथा यूनानीवाद और चर्चवाद में समन्वय स्थापित करने तथा सब प्रकार के ज्ञान का एकीकरण करने का प्रयास है। सेण्ट आगस्टाइन के विश्वास (Faith) तथा अरस्तू के विवेक (Reason) या तर्क में समन्वय स्थापित

करने का प्रयास एक्विनास ने किया। उसमें मतानुसार विद्वतावाद (Scholasticism) तीन मंजिले भवन की तरह है। इसकी पहली मंजिल विज्ञान तथा दूसरी मंजिल दर्शनशास्त्र की प्रतीक है। दर्शनशास्त्र विज्ञान के मूल तत्त्वों को एकत्रित कर उनमें सह – सम्बन्ध स्थापित करता है तथा उसके सार्वभौमिक प्रयोग तथा मान्यता के सिद्धान्तों को निर्धारित करने का प्रयास करता है। यह विज्ञानों का सामान्यकृत व सुविवेचित सार (Essence) है। ये दोनों मंजिल मानव तर्क का प्रतीक हैं जिनका समन्वय व नियन्त्र धर्मदर्शन द्वारा होनी चाहिए। धर्म – दर्शन ज्ञान इमारत की सबसे महत्त्वपूर्ण मंजिल है। यह धर्म – दर्शन ईसाई प्रकाशना (Revelation) पर निर्भर है जो दर्शनशास्त्र तथा विज्ञान से सर्वश्रेष्ठ है। धर्म – विज्ञान या धर्म – दर्शन उस प्रणाली को पूरा को पूरा कर देता है जिसके आरम्भ बिन्दु विज्ञान और दर्शन हैं। जिस प्रकार विवेक दर्शन का आधार है, उसी प्रकार धर्म – विज्ञान का आधार विश्वास है। इन दोनों में कोई विरोध नहीं हैं। वे एक – दूसरे के पूरक हैं। अतः दोनों का मिश्रण ज्ञान की इमारत को मजबूत बनाता है। एक्विनास का मानना है कि धर्म – विज्ञान ही सर्वोच्च ज्ञान है जो ज्ञान की अन्य शाखाओं – नीतिशास्त्र, राजनीतिशास्त्र तथा अर्थशास्त्र को अपनी अधीन रखता है। इस प्रकार एक्विनास ने मध्ययुग की तीन महान् बौद्धिक विचारधाराओं – सार्वभौमिकतावाद, विद्वतावाद और अरस्तूवाद में समन्वय स्थापित किया है। उसने समन्वयात्मक तथा सकारात्मक पद्वति का ही अनुसरण किया है।

4.5 राज्य सिद्धान्त (Theory of State)

जिस प्रकार एक्विनास ने धर्म से पृथक् तर्क का अस्तित्व माना है, उसी प्रकार उसने चर्च से पृथक् राज्य का अपना औचित्य भी स्वीकार किया है। आरम्भिक ईसाई विचारकों का मानना था कि राज्य की उत्पत्ति मनुष्य के आरम्भिक पाप के कारण हुई है। एक्विनास ने मध्ययुगीन तथा उससे पहले से प्रचलित राज्य – उत्पत्ति के सभी सिद्धान्तों को नकारते हुए अपने ग्रन्थ सुम्मा 'थियोलोजिका' में राज्य सम्बन्धी विचारों को प्रस्तुत किया, उसने राज्य की उत्पत्ति की पापमयी धारणा को सरेआम अस्वीकार कर दिया। वह अरस्तू तथा प्लेटो जैसे यूनानी दार्शनिकों की तरह यह मानता था कि मनुष्य राजनीतिक तथा सामाजिक प्राणी

है और राज्य की आवश्यकता केवल इसलिए नहीं है कि वह मानवीय बुराइयों को रोकता है, बल्कि इसलिए भी है कि राज्य के बिना व्यक्ति अपना सम्पूर्ण विकास नहीं कर सकता। एक्विनास एक ऐसा प्रथम ईसाई दार्शनिक था जिसने यह कहने का साहस किया कि राज्य मनुष्य के लिए स्वाभाविक है और जो नियन्त्रण राज्य अपने अपने सदस्यों पर आरोपित करता है, वह उनके लिए बाधा न होकर उनके नैतिक विकास में सहायक होता है। उसका मानना था कि समाज प्राकृतिक है, इसलिए राज्य भी प्राकृतिक है। इस प्रकार एक्विनास ने राज्य की उत्पत्ति के बारे में एक विशिष्ट मध्ययुगीन धारणा अपनाकर राज्य की उत्पत्ति के आगस्टाइन के सिद्धान्त को अरस्तू के तर्क के अनुसार संशोधित करने का प्रयास किया। उसने स्पष्ट किया कि निर्दोषता की अवस्था (State of Innocence) में (पापमयी जीवन से पहले) भी राज्य किसी न किसी रूप में विद्यमान था। उसने आगस्टाइन तथा अन्य ईसाई विचारकों की इस अभिधारणा को अस्वीकार किया कि निर्दोषता की अवस्था में राज्य नाम की कोई वस्तु नहीं थी। एक्विनास ने यह स्पष्ट करने के लिए कि राज्य एक कृत्रिम, पापमयी, परम्परागत संस्था न होकर एक प्राकृतिक संस्था है, के पक्ष में अनेक तर्क प्रस्तुत किए । उसके प्रमुख तर्क निम्न प्रकार से हैं :–

1. "मनुष्य स्वभाव से ही एक सामाजिक प्राणी है।" एक्विनास ने अरस्तू के इस तर्क का विस्तार करते हुए कहा कि एक प्रधान (Head) के बिना व्यक्ति एक व्यवस्थित समाज में नहीं रह सकता। प्रधान या मुखिया जनहित की देखभाल करके समाज के निर्देशक तथा दण्डनायकिक शक्ति का केन्द्र बना रहता है। यदि श्रेष्ठ का निम्नतर पर शासन स्वीकार कर लिया जाए तो मनुष्य का मनुष्य के ऊपर शासन की धारणा स्वाभाविक बन जाती है। अतः राज्य मनुष्य के लिए प्राकृतिक है।
2. यदि अधिक सद्गुणी, श्रेष्ठ, प्रज्ञावान व्यक्तियों का निम्न पर शासन प्रकृति के अनुकूल है तो राज्य एक प्राकृतिक संस्था है। यह प्राकृतिक होने के साथ – साथ निम्न लोगों के लिए लाभदायक भी है। इससे उनको अपने व्यक्तित्व का विकास करने के अवसर प्राप्त होंगे।

3. एक्विनास का मानना है कि व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों पर आश्रित होता है। इससे अच्छे जीवन के लिए सेवाओं का स्वाभाविक आदान – प्रदान होता रहता है। इसलिए समाज और राज्य मानव – प्रकृति की पूर्ति पर आधारित है। वह मनुष्य के पापमयी जीवन पर आधारित नहीं है। एक्विनास का यह विचार कि राज्य का लक्ष्य सद्‌गुणों का विकास करना है, सरकार के कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में एक रचनात्मक दृष्टिकोण प्रकट करता है। उसके मतानुसार शासक का पद समस्त समाज के लिए होता है। सामाजिक हित में योगदान देने में ही उसकी सार्थकता है। उसका मानना है कि समुदाय को सद्‌गुणयुक्त जीवन की प्राप्ति में सहयोग देना ही शासक का प्रमुख कर्त्तव्य है। इसमें समाज में शान्ति व न्याय – व्यवस्था कायम रखना भी शामिल है। इसके अतिरिक्त समुदाय को जीवनयापन की वस्तुओं के बारे में आत्मनिर्भर बनना भी शासक का प्रमुख कर्त्तव्य है। इसके लिए जो भोज्य पदार्थों की पर्याप्त आपूर्ति की व्यवस्था करनी चाहिए। उसे शिक्षालयों, चर्चों व बाजारों का अच्छा प्रबन्ध करना चाहिए। माप– तौल की समुचित प्रणाली का विकास करना, गरीबों के भरण – पोषण की व्यवस्था करना, सड़कों की चोर – डाकुओं के भय से मुक्त रखना, जनसंख्या पर नियन्त्रण करना, पुरस्कार व दण्ड की व्यवस्था के माध्यम से प्रजा पर नियन्त्रण रखना, उसके प्रमुख कर्त्तव्य हैं। उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि राज्य की भौतिक अवस्थाएँ उच्चतर लक्ष्य अर्थात् मोक्ष – प्राप्ति में सहायक हों। इस प्रकार सेण्ट थॉमस एक्विनास ने शिष्टाचार व रीति – रिवाजों की समानता को राज्य का आचार बताकर आधुनिक राष्ट्रीय राज्य समर्थन किया है।

यद्यपि सेण्ट एक्विनास ने काफी हद तक अरस्तू का अनुसरण करके शासक के कर्त्तव्यों पर जोर दिया लेकिन वे भी ईसाइत के प्रभाव से बच नहीं सके। उसने यह कहा कि राज्य मानव – प्रकृति पर आधारित है, परन्तु वह यह कहने को भी विवश हुआ कि राज्य ईश्वर द्वारा स्थापित किया जाता है। राजनीतिक समाज की उत्पत्ति सहज सामाजिक प्रवृत्तियों का ही परिणाम है। उसका विचार है कि सभी राजनीतिक अधिकारों का स्त्रोत ईश्वर है जो

सभी वस्तुओं का सर्वोच्च शासक है। शासन करने का वैध अधिकार समूचे समुदाय को ईश्वर से ही प्राप्त होता है। मनुष्य में राजनीतिक समुदाय के विकास की प्रवृति ईश्वर ने ही आरोपित की है। इस प्रकार सेण्ट थॉमस एक्विनास ने अरस्तू के राज्य की उत्पत्ति के सिद्धान्त का ईसाइयत विचारधारा में समनव्य करके अपने सिद्धान्त की आधारशिला रखी। आगे चलकर 18वीं शताब्दी में रूसो, बर्क तथा अन्य विचारकों ने इस सिद्धान्त की प्रशंसा की।

4.6 सरकार का सिद्धान्त (Theory of Government)

सेण्ट एक्विनास ने मनुष्य का मनुष्य के ऊपर शासन दो प्रकार का बताया है। पहला, पाप से उत्पन्न दासता का रूप होता है। दूसरा सहज सामाजिक प्रवृति से उत्पन्न नागरिक सत्कार के रूप में होता है। ऐसी नागरिक सरकार कई प्रकार की होती है – (i) पुरोहितवादी (Sacerdotal) (ii) राजसी (Royal) (iii) राजनीतिक (Political) (iv) अर्थिक (Economic)। इनमें से पहली पोपतन्त्र के रूप में सर्वोच्च किस्म होती है। सामान्य रूप से राज्य का शासन राजसी अथवा राजनीतिक सरकारों द्वारा चलाया जाता है। राजसी सरकार में शासक के पास निरंकुश शक्तियाँ न होकर विशाल शक्तियाँ होती हैं। राजनीतिक सरकार में शासक की शक्तियाँ कानूनों से सीमित होती है। एक्विनास का मानना है कि सरकारों का अच्छा या बुरा होना 'सब की भलाई' के मापदण्ड पर ही निर्भर करता है। एक्विनास ने इस बात पर जोर दिया है कि राज्य या सरकार का प्रमुख लक्ष्य मनुष्यों के बीच सद्‌गुणों का विकास करना है ताकि वे मोक्ष – प्राप्ति करने में सफल हो सकें। इस उद्देश्य या लक्ष्य की प्राप्ति में सफल सरकार अच्छी तथा असफल सरकार निकृष्ट होती है। इस प्रकार सरकारों का वर्गीकरण करने में एक्विनास ने अरस्तू का अनुसरण करते हुए राजतन्त्र, अभिजाततन्त्र, सर्वजनतन्त्र, निरंकुशतन्त्र, धनिकतन्त्र तथा जनतन्त्र में बाँटा है। इनमें से राजतन्त्र सरकार का सर्वोत्तम तथा जनतन्त्र निकृष्ट रूप होता है।

राजतन्त्र पर विचार (Views on Monarchy)

एक्विनास ने राज्य के स्थायित्व, एकता व नियमितता के लिए राजतन्त्र का ही समर्थन किया है। उसने इसे सबसे सर्वश्रेष्ठ सरकार मानकर इसकी प्रशंसा की है। उसके समर्थन के आधार निम्नलिखित हैं :–

1. समाज में एकता तथा शान्ति राजतन्त्र में ही सम्भव है।
2. अव्यवस्था तथा अराजकता की समाप्ति राजतन्त्र में ही सम्भव है।
3. जिस तरह ईश्वर एक है ओर उसका पूरे ब्रह्माण्ड पर शासन है, उसकी प्रकार समाज में एक राजा ही ठीक है। जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अवयवों पर दिल, मधुमक्खियों के छत्ते पर रानी मधुमक्खी का शासन अच्छा रहता है, वैसे ही समाज में एक ही व्यक्ति का शासन सर्वोत्तम होता है।
4. ऐतिहासिक अनुभव भी यह बताता है कि राजतन्त्रात्मक सरकारें ही अन्य सरकारों की तुलना में सर्वश्रेष्ठ रही हैं। राजतन्त्र में ही शान्ति व समृद्धि का वातावरण रहा है। लोकतन्त्रात्मक सरकारें फूट व अराजकता से भरपूर रही हैं।

इसी प्रकार एक्विनास ने राजतन्त्र को सर्वोत्तम सरकार माना है।

निरंकुश सरकार (Tyranny)

एक्विनास का मानना है कि राजतन्त्र पथभ्रष्ट होकर अत्याचारी शासन में बदल सकता है। यही राजतन्त्र का सबसे गम्भीर दोष है यह सरकार की सबसे बुरी किस्म है। इसमें शासक प्रजा के हित में शासन न करके अपने हितार्थ शासन करता है। उसने बताया है कि राजतन्त्र को निरंकुश बनने से रोकने के लिए राजतन्त्र को लचीला बनाना आवश्यक होता है। उसका मानना है कि तानाशाही के अन्तिम काल अर्थात् स्वयं लोगों के अन्याय को दूर किया जाना चाहिए ताकि राजतन्त्र को तानाशाही में परिवर्तित होने से रोका जा सके। लेकिन उसने यह नहीं बताया कि राजतन्त्र में लचीलापन कैसे लाया जाए। एक्विनास अत्याचारी शासक के वध का विरोध करते हैं। उनका मानना है कि यह भी सम्भव है कि निरंकशतन्त्र जनतन्त्र में बदलने पर अत्याचारी शासक के वध का विरोध करते हैं। उनका

मानना है कि यह भी सम्भव है कि निरंकुशतन्त्र जनतन्त्र में बदलने पर और अधिक अत्याचारी शासन कायम हो सकता है। ऐक्विनास स्वयं राजतन्त्र को निरंकुश नहीं बनाते क्योंकि वे स्पष्ट करते हैं कि राजा को सदैव अपने उत्तरदायित्व निभाने चाहिए। राजा का प्रमुख उत्तरदायित्व ईश्वर के प्रति होता है। पोप ईश्वर का प्रतिनिधि होने के कारण उसको अपने अधीन रख सकता है। जनता को भी शान्तिपूर्वक तरीके से उसे हटाने की शक्ति प्राप्त है। उसको हटाना तो उचित है लेकिन उसके पद का हनन करना अनुचित है। वह तानाशाही की हत्या के सिद्धान्त की निन्दा करते हैं। इस प्रकार एक्विनास राजतन्त्र को सर्वोत्तम सरकार मानते हुए उसके बनाए रखने के पक्षधर हैं। उसके अनुसार राजा को अत्याचारी बनने से रोकने के लिए राजा को संविधान – पालन की शपथ दिलाने की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि शपथ का उल्लंघन करने पर राजा को न्यायोचित आधार पर गद्दी से उतारा जा सके।

सरकार के कार्य (Functions of Government)

एक्विनास के मतानुसार शासन का अधिकार एक न्यास का पद है जो समूचे समाज के लिए अस्तित्व में लाया जाता है। उसके लिए कुछ उत्तरदायित्व या कर्त्तव्य निश्चित किए गए हैं, जिनके पूरा होने पर ही शासक का पद कायम रह सकता है। एक्विनास के अनुसार राज्य या सरकार के निम्न कार्य हैं :–

1. सरकार को राज्य में एकता को बढ़ावा देना चाहिए ताकि शान्ति कायम हो सके। फूट और दलबन्दी को समाप्त करना चाहिए।
2. सरकार का यह भी कर्त्तव्य है कि वह अपनी प्रजा पर नाजायज कर न लगाए और न ही उसकी सम्पत्ति का हरण करे।
3. सरकार को मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं की वस्तुओं की पूर्ति बनाए रखनी चाहिए।
4. बाहरी आक्रमणों से बाहरी शत्रुओं से अपनी सीमाओं और नागरिकों की रक्षा करनी चाहिए।
5. शासक का यह कर्त्तव्य है कि वह गरीबों के भरण – पोषण की व्यवस्था करे।

6. सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह राज्य के लिए विशेष मुद्रा और नाप – तौल की प्रणाली लागू करे।
7. चोर – डाकुओं के भय से सड़कों को मुक्त रखे।
8. योग्य व्यक्तियों को पुरस्कृत तथा अपराधियों को दण्ड की व्यवस्था करे।
9. अपने अधिकार क्षेत्र में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखे। राज्य में अराजकता, अव्यवस्था तथा उपद्रवों से निपटने में सक्षम सरकार का होना जरूरी है।
10. सरकार को अपने नागरिकों में धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए। उसे प्रजा को सदाचारी बनाने पर जोर देना चाहिए।
11. सरकार को व्यक्तिगत हितों की बजाय लोकहित को बढ़ावा देना चाहिए।

इस प्रकार एक्विनास ने सरकार के जो कर्त्तव्य या कार्य निर्धारित किए हैं, वे आधुनिक सरकारों के कार्यों से मिलते – जुलते हैं। लेकिन एक्विनास का शासन आधुनिक राज्य की तरह सम्प्रभू नहीं है। उसके कार्य तो सकारात्मक हैं लेकिन उनकों पूरा करने के लिए उसके पास सर्वोच्च सत्ता नहीं है। उस पर पोप या चर्च का पूर्ण नियन्त्रण है। शासक को नियन्त्रण या मर्यादा में रहकर ही अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करना पड़ता है।

4.7 चर्च और राज्य का सम्बन्ध (Relationship Between Church and State)

सेण्ट थॉमस एक्विनास ने लौकिक सत्ता (राज्य) तथा पारलौकिक सत्ता (चर्च) में सम्बन्ध स्थापित करके राजसत्ता तथा धर्मसत्ता के मध्य चल रहे लम्बे संघर्ष का समाधान करने का प्रयास किया। एक्विनास ने बताया कि मनुष्य सांसारिक सुख व आत्मिक सुख की प्राप्ति चाहता है। सांसारिक सुख की प्राप्ति राज्य द्वारा तथा आत्मिक सुख की प्राप्ति चर्च द्वारा ही कराई जा सकती है। थॉमस एक्विनास का मत है कि सद्गुणी व्यक्ति भी चर्च की सहायता के बिना अपने परम लक्ष्य (मोक्ष) को प्राप्त नहीं कर सकता। यह परम सत्य (मोक्ष) श्रद्धा और विश्वास पर ही आधारित होता है। अतः यह चर्च का मामला होता है। राजा का कर्त्तव्य बनता है कि वह इस प्रकार शासन करे कि ईश्वर की इच्छा पूरी और धर्म की वृद्धि हो। एक्विनास के अनुसार व्यक्ति के जीवन का उद्देश्य तो मोक्ष प्राप्त करना है। इसे प्राप्त

कराने के लिए दोनों (चर्च व राज्य) को संगठित प्रयास करना चाहिए। राज्य का कर्त्तव्य है कि नागरिकों को सद्‌गुणी बनाने के प्रयास करे और चर्च का कर्त्तव्य है कि वह मनुष्यों को मोक्ष प्राप्ति कराने के लिए उनकी आत्मशुद्धि में वृद्धि करे। एक्विनास का कहना है कि राज्य चर्च के अधीन रहते हुए अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करे ताकि परम लक्ष्य को आसानी से प्राप्त किया जा सके। एक्विनास ने राज्य की तुलना समुद्री जहाज के बढ़ई से तथा चर्च की तुलना जहाज के चालक से करके अपना मत प्रस्तुत किया है कि चालक ही जहाज का दिशा निर्देशन और दिनगमन करता है। इसका अर्थ यह है कि सांसारिक शासक चर्च के सहयोग और उसके मार्गदर्शन के अन्तर्गत की समुचित रूप से अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन कर सकता है। मोक्ष तर्क के द्वारा नहीं धर्म में विश्वास के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है और धर्म के सारे मामलों में चर्च ही सर्वोच्च सत्ता है। चर्च राज्य का नियन्त्रक व मार्गदर्शक है, इसलिए पोप की सत्ता सांसारिक सत्ता (राज्य) से श्रेष्ठ है। आत्मा पर नियन्त्रण रखना भौतिक वस्तुओं पर नियन्त्रण रखने से श्रेष्ठ है। इसलिए सभी व्यक्तियों को चर्च की सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार करना चाहिए। एक्विनास ने कहा कि शासक ईश्वर की छाया हो सकता है, लेकिन यदि वह चर्च की अवहेलना करे, तो उसे धर्म बहिष्कृत किया जा सकता है। पोप के पास सांसरिक शासकों के कर्त्तव्यों का नियमन करने, उन्हें दण्ड देने और प्रजा को उनके प्रति निष्ठा से मुक्त करने की शक्ति है। एक्विनास ने कहा है – "जिस प्रकार शरीर मस्तिष्क के अधीन है वैसे ही सांसारिक सत्ता आध्यात्मिक सत्ता के अधीन है।" इसलिए यदि चर्च शासक के कार्यों में हस्तक्षेप करता है तो वह अनुचित नहीं है। इसके बावजूद भी चर्च और राज्य एक – दूसरे के विरोधी न होकर एक – दूसरे के पूरक हैं जिसमें चर्च राज्य से श्रेष्ठ है। थॉमस एक्विनास ने यह भी स्पष्ट किया है कि पोप की राज्य क्षेत्रिय प्रभुसत्ता न्यायोचित है। चर्च का प्रधान होने के नाते उसकी अपनी भूमि हो सकती है, लेकिन वह उसका स्वामी नहीं हो सकता। उसने राज्य के दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए, राज्य को सांसारिक मामलों में कुछ छूट प्रदान करके मध्यमार्गी होने का परिचय दिया है। एक समन्वयवादी विचारक होने के नाते उसने पोप को राजा के ऊपर कोई प्रत्यक्ष अधिकार नहीं सौंपा है। उसने सांसारिक मामलों में राजा को ही

सम्प्रभु माना है। कार्लाइल ने इस बारे में कहा है – "सेण्ट एक्विनास का यह सामान्य और परिपक्व निर्णय था कि सांसारिक मामलों में पोप का प्रत्यक्ष अधिकार न होकर अप्रत्यक्ष अधिकार ही है।" वास्तव में सत्य तो यह है कि उसने नम्र पोपवादी होने के नाते धर्मसत्ता व राजसत्ता के मध्य लम्बे समय से चल रहे संघर्ष को कुछ शान्त करने का प्रयास किया है।

4.8 दासता सम्बन्धी विचार (Views on Slavery)

सेण्ट थॉमस एक्विनास ने भी अपने पूर्ववर्ती विचारकों की तरह दासता को दैवी दण्ड मानकर उसका समर्थन किया है। वह अरस्तू की तरह दास – प्रथा को लाभदायक तो मानता है लेकिन उसके विचार अरस्तू और आगस्टाइन से पूरी तरह मेल नहीं खाते हैं। उसका मानना है कि दासता एक प्राकृतिक प्रथा है जो सैनिकों में साहस का संचार करती है। जब सैनिक युद्धक्षेत्र में लड़ते हैं तो उन्हें दासता का भय सताता है। इस भय के कारण वह वीरता और साहस से लड़कर युद्ध में विजयी बनने के प्रयास करते हैं। दासता का भय ही सैनिक विजयों का कारण होता है। एक्विनास ने अपने इस मत की पृष्टि के लिए इतिहास और 'ओल्ड टेस्टामेण्ट' (Olf Testament) की डिद्रानमी नामक पुस्तक से कुछ प्रमाण भी प्रस्तुत किए हैं।

4.9 सम्पत्ति पर विचार (Views on Property)

एक्विनास ने भी अरस्तू की तरह ही व्यक्तिगत सम्पत्ति का समर्थन करते हुए उसे मानव जीवन के लिए आवश्यक माना है। उसका कहना है किस सम्पत्ति का प्रयोग स्वार्थसिद्धि के लिए न करके जनहित में किया जाना चाहिए। सम्पत्ति का सार्वजनिक उपयोग सार्वजनिक कार्यों के लिए ही किया जाना चाहिए। उसके सम्पत्ति सम्बन्धी विचार धार्मिक परिस्थितियों के प्रभाव से अछूते नहीं है। उसने मध्ययुगीन ईसाई पादरियों के विचारों से सहमत होते हुए कहा है कि सम्पत्ति पर चर्च और पोप का भी अधिकार उपयुक्त है लेकिन वह किसी सांसारिक शासक के सामन्त के रूप में भूमि का स्वामी नहीं बन सकता। पोप अपनी

सम्पत्ति का प्रयोग निर्धनों की सहायता के लिए धार्मिक नियमों के अनुसार ही कर सकता है। उसका मानना है कि सम्पत्ति की अधिकता ही सभी पापों का मूल कारण है। सम्पत्ति पर धर्म का लेबल लगाने पर ही सम्पत्ति के सारे दोष मिट जाते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि एक्विनास ने अरस्तू तथा आगस्टाइन के विचारों से अलग ही अपने सम्पत्ति सम्बन्धी विचार प्रतिपादित किए है।

4.10 कानून का वर्गीकरण (Classification of Law)

राजनीतिक चिन्तन के लिए एक्विनास का कानून सम्बन्धी विवेचन उसकी सबसे महान् एवं मूल्यवान देन है। एक्विनास ने कानून के वर्गीकरण का सबसे अधिक मौलिक विचार प्रस्तुत करके आधुनिक युग को ऋणी बना दिया है। कानून के बारे में किसी भी पूर्ववर्ती विचारक ने इतना तर्कसंगत तथा व्यवस्थित विवेचन प्रस्तुत नहीं किया जितना एक्विनास ने। एक्विनास ने अरस्तू, सिसरो, चर्च के पादरियों, सेण्ट आगस्टाइन जैसे विचारकों के कानून पर विचारों को एकत्रित करके उन्हें एक नई दिशा दी। उसने एक तर्क – क्रम के द्वारा कनूनों का वर्गीकरण करके कानूनों को चार भागों – शाश्वत, प्राकृतिक, मानवीय तथा दैवीय में बाँटा है। एक्विनास के कानून सम्बन्धी विचारों को जानने के लिए कानून की आधुनिक व पूर्ववर्ती अवधारणाओं को समझना आवश्यक है।

कानून की परिभाषा

आधुनिक विचारकों के अनुसार कानून सम्प्रभु का आदेश है। कानून एक ऐसा सकारात्मक विचार है जो उन कार्यों को बाध्यकारी बना देता हैं, जो पहले बाध्यकारी नहीं थे, पूर्ववर्ती यूनानी विचारकों के अनुसार कानून विवेक या बुद्धि का परिणाम है। एक्विनास ने कानून की यूनानी व रोमन विचारधाओं को समन्वित करके अपना कानून का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। एक्विनास ने कानून की मध्ययुगीन विचारधारा को और अधिक व्यापक बना दिया है। एक्विनास के अनुसार कानून पूरे विश्व पर लागू होता है। यह एक ऐसी वस्तु होती है जो मानवीय सम्बन्धों का नियमन करने के साधन की अपेक्षा अपने कार्यक्षेत्र में व्यापक है। एक्विनास ने अपनी धारणा को विश्वव्यापी रूप देने का प्रयास किया है। उसने मानवीय कानून को दैवीय कानून से जोड़कर मानवीय विवेक को दैवी विवेक का अंग माना है।

उसने मानवीय कानून और दैवीय कानून के बीच अनश्वर एकता को स्वीकार किया है। उसने कानून को परिभाषित करते हुए कहा है – "कानून लोक – कल्याण के लिए विवेक का अध्यादेश है जो उस व्यक्ति द्वारा बनाया, घोषित और लागू किया जाता है जिसे समाज की चिन्ता है।" अर्थात् कानून बनाने और उसे लागू करने का अधिकार ऐसे व्यक्ति के हाथ में रहता है जिन्हें लोक कल्याण की चिन्ता है। एक्विनास के मतानुसार – "कानून एक विशेष नियम अथवा कार्यों का मापदण्ड है जिसके आधार पर किसी को कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाता है अथवा कार्य करने से रोक दिया जाता है।" इसका अर्थ यह है कि ऐसा कानून जो विवेकपूर्ण और सामान्य हित के उद्देश्य से प्रेरित नहीं है तो वह सच्चा कानून नहीं है।

कानून के प्रकार (Types of Law)

एक्विनास ने कानून को चार भागों में बाँटा है :–

1. **शाश्वत कानून** (Eternal Law)
2. **प्राकृतिक कानून** (Natural Law)
3. **दैवी कानूनी** (Divine Law)
4. **मानवीय कानून** (Human Law)

एक्विनास ने वर्गीकरण की इस श्रृंखला में शाश्वत कानून को शीर्ष स्थान पर रखा है। प्राकृतिक कानून तथा दैवीय कानून का मानव के भौतिक जीवन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। मानवीय कानून ही मनुष्य के प्रत्यक्ष जीवन से जुड़ा हुआ है। इन चारों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :–

1. **शाश्वत कानून (Eternal Law) :** यह कानून ईश्वरीय विवेक पर आधारित होते हैं जिनके द्वारा ईश्वर एक पूर्व निश्चित योजना के आधार पर विश्व पर शासन करता है। शाश्वत कानून ईश्वरीय विवेक से निकली हुई ईश्वरीय इच्छाएँ हैं। इसी कानून के द्वारा सृष्टि का संचालन होता है तथा आकाश और पृथ्वी तथा चेतन और अचेतन सभी पदार्थ शाश्वत कानून से नियन्त्रित व निर्देशित होते हैं। यह कानून बुद्धिगम्य

तथा बुद्धिगम्य दोनों प्रकार के जगत् में अलग – अलग तरीके से कार्य करता है। शाश्वत कानून का स्वभाव विश्वव्यापी है। इस धरती पर विद्यमान सभी कानूनों का स्त्रोत शाश्वत कानून ही है। विवेकशील प्राणी शाश्वत कानून के अनुसार ही आचरण करते हैं। एक्विनास के अनुसार शाश्वत कानून का निर्माण उसी समय हुआ जिस समय ईश्वर के मनका निर्माण हुआ। ईश्वर की समस्त सृष्टि शाश्वत कानून के अधीन है। उस सृष्टि के सभी भाग उसके प्रभाव को ग्रहण करने में समर्थ होने के कारण उसके हिस्सेदार हैं। यह कानून प्राप्ति कर सकने योग्य कार्यों तथा उद्देश्यों को करने के लिए प्रेरणा प्रदान करता है। एक विवेकी व्यक्ति अविवेकी व्यक्ति की तुलना में शाश्वत कानून को जल्दी समझ लेता है। सीमित बुद्धि के कारण शाश्वत कानून का आभास करना कठिन होता है। इसका आभास प्राकृतिक कानून के रूप में ईश्वर करा देता है। यह कानून ईश्वर में अनन्तकाल से दैवी विवेक के रूप में विद्यमान रहा हैं यह एक सुनिश्चित कानून नहीं है क्योंकि उसका निर्माण विशिष्ट समय पर नहीं हुआ है। यह स्वयं निर्मित तथा स्वयं प्रवर्तित है। यह ईश्वर का अमर कानून है। ईश्वरीय या दैवीय न्याय शाश्वत कानून पर ही टिका हुआ है। इसी कानून के अनुसार ईश्वर सम्पूर्ण सृष्टि पर अपना वर्चस्व बनाए हुए है।

2. **प्राकृतिक कानून (Natural Law) :** यह कानून मानवीय जीवनों में ईश्वरीय विवेक का प्रतिबिम्ब है। एक्विनास के मतानुसार – "विवेकशील प्राणी का शाश्वत कानून के अनुसार आचरण करना ही प्राकृतिक कानून है।" इन कानूनों की सहायता से व्यक्ति अच्छे – बुरे का भेद जान सकता है। "यह विवेकपूर्ण जीवधारियों की शाश्वत कानून में सहभागिता है।" ये कानून शाश्वत कानूनों की तुलना में अधिक स्पष्ट व बोधगम्य होते हैं। ये मौलिक रूप से सबके लिए समान होते हैं, परन्तु कुछ विशेष काल और स्थान के लिए अलग – अलग भी हो सकते हैं। ये संसार की सभी जड़ व चेतन वस्तुओं में समान रूप से व्याप्त होते हैं। चेतन पदार्थों में इनकी अभिव्यक्ति स्पष्ट होती है, जबकि अचेतन पदार्थों में अस्पष्ट होती है। चूँकि मनुष्य की तर्क – बुद्धि अपूर्ण होती है। इसलिए मनुष्य का मार्ग निर्देशन करने व विनियमन करने के लिए

यह कानून पर्याप्त नहीं है। इस कानून की भी शाश्वत कानून की तरह प्रमुख विशेषता यह है कि यह कानून सकरात्मक कानून नहीं है तथा इसके नियम भी सर्वांगींण नहीं है। प्राकृतिक कानून सभी विवेकपूर्ण प्राणियों में समाज कल्याण की भावना ही भरता है। इसकी अन्तःवस्तु का विस्तार उन वस्तुओं से किया जा सकता है जो केवल मानव – कल्याण में योगदान देती है। यह मनुष्य की अनेक स्वाभाविक इच्छाओं – आत्मरक्षा, यौन – सन्तुष्टि, सन्तानोत्पादन, परोपकार आदि की सन्तुष्टि करता है। यह मनुष्य में सामाजिकता का गुण पैदा करता है। यह मानव प्राणियों में सत्य की खोज करने और तर्कबुद्धि से विकसित करने की इच्छा पैदा करता है। इस प्रकार एक्विनास का प्राकृतिक कानून व्यापक आयाम धारण कर लेता है।

3. **दैवीय कानून (Divine Law) :** एक्विनास का मानना है कि मनुष्य का मार्ग – दर्शन करने के लिए अधिक व्यापक कानून का होना जरूरी है। ऐसा कानून दैवीय कानून ही हो सकता है। यह एक ऐसा सकारात्मक कानून है जो प्राकृतिक कानून की कमी को पूरा करता है। संतों अथवा बाइबल के माध्यम से प्रकट की गई ईश्वर की वाणी ही दैवीय कानून है। दैवी कानून मानव तर्क – बुद्धि की खोज की बजाय ईश्वर के अनुग्रह का उपहार है। यह मनुष्य को परम – सुख (मोक्ष) की प्राप्ति कराता है। प्राकृतिक कानूनतो सभी के लिए समान होता है लेकिन दैवीय – कानून का ज्ञान ईश्वर के कृपापात्रों को ही प्राप्त होता है। एक्विनास के मतानुसार – "दैवी कानून ईश्वर की इच्छा के आदेशों की प्रणाली है जिसे प्रकाशन (Revelation) द्वारा मनुष्यों तक पहुँचाया जाता है।" यह सहज विवेक की खोज होने के अतिरिक्त ईश्वरीय कृपा की देन है। एक्विसान के अनुसार विवेक और प्रकाशना में कोई अन्तर नहीं है। प्रकाशना विवेकी की वृद्धि ही करती है। दैवीय कानून ईश्वरीय इच्छा के आदेशों का संसार के सामने प्रकटकरण है जिसका पालन चर्च द्वारा किया जाता है। इसने पालन का आधार मानव की आस्था है, विवेक नहीं। ये बाध्यकारी शक्ति से युक्त नहीं है। ईश्वरीय रचना होने के कारण ये मानवीय कानून से श्रेष्ठ है।

4. **मानवीय कानून (Human Law)** : इसकी उत्पत्ति प्राकृतिक कानून से होती है। यह कानून उसी समय तक वैध है, जब तक यह प्राकृतिक कानून के अनुसार रहे। एक्विनास के मतानुसार – "मानवीय कानून मनुष्यों के आचरण का नियमन करने के लिए नियमों की वह प्रणाली है जिसको प्राकृतिक कानून के सिद्धान्तों से मानव –विवेक द्वारा क्रियान्वित किया जाता है।" उसके अनुसार मानवीय कानून प्राकृतिक कानून का बुद्धिसंगत परिणाम है। यह प्राकृतिक कानून का उप – सिद्धान्त है। "मानवयी कानून प्राकृतिक ही है जिसके द्वारा मानवीय विवेक की युक्तिपरक व्यवस्था द्वारा इसके सांसारिक मामलों में सक्रिय बनाया जाता है।" यह मानवीय इच्छा पर आधारित होता है। ये मनुष्य द्वारा समाज में शान्तिपूर्ण जीवन बनाए रखने के लिए बनाई गई दण्ड व्यवस्थाएँ हैं जिनेक भय से समाज में शान्ति बनी रहती है। ये प्राकृतिक कानून के पूरक होते हैं। प्राकृतिक कानूनों की अस्पष्टता तथा अपरिभाषिता के कारण इसकी आवश्यकता पड़ती है। दण्डात्मक शक्ति के कारण ये कानून प्राकृतिक कानूनों से अधिक प्रभावी रहते हैं। एक्विनास ने मानवीय कानून को दो भागों – राष्ट्रों का कानून (Jus Gentium) और नागरिक कानून (Jus Civile) में बँटा है। एक्विनास ने नागरिक कानून को परिभाषित करते हुए कहा है – "यह सबके हित के लिए मानव – तर्कबुद्धि का अध्यादेश है, जिसे ऐसे व्यक्ति ने जारी किया है जो समुदाय की देखभाल करता है।" मानवीय कानूनी के कुछ प्रमुख कारण है जिनके आधार पर इसे अच्छी तरह से समझा जा सकता

(i) ये विवेक पर आधारित उद्घोषणाएँ हैं।

(ii) ये सार्वजनिक कल्याण से सरोकार रखते हैं।

(iii) ये सकारात्मक होते हैं।

(iv) इनके पीछे सार्वजनिक मान्यता तथा सार्वजनिक सहमति होती है।

(v) इनमें दण्डात्मक शक्ति होती है।

(vi) ये प्राकृतिक कानून के अनुकूल होते हैं।

(vii) इनका सम्बन्ध लौकिक संसार से होता है, पारलोकिक से नहीं।

एक्विनास का कहना है कि नागरिक कानून ही मानवीय कानून होता है। इसके ऊपर कुछ सीमाएँ भी हैं :–

1. यह कानून प्राकृतिक कानून के अनुरूप होना चाहिए। नागरिक इसका पालन उसी समय तक करेंगे जब तक यह प्राकृतिक कानून के अनुसार रहेगा।
2. इसे मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन से दूर रहना चाहिए। यह मनुष्य के समूचे जीवन से सम्बन्धित नहीं होता। इसलिए यह मनुष्य की पूर्ण निष्ठा का दावा नहीं कर सकता।

4.11 एक्विनास मध्ययुग के अरस्तु के रूप में (Acquinas as the Aristotle of Medieval Age)

सेण्ट थॉमस एक्विनास ने अपना सम्पूर्ण राजनीतिक चिन्तन अपनी ईसाइत विचारधारा को अरस्तूवाद के साथ मिलाकर ही खड़ा किया है। इसलिए उसे ईसाई अरस्तू (Christianised Aristotle) में भी कहा जाता है। अल्बर्ट महान् के चरणों में बैठकर एक्विनास ने अरस्तू की जो शिक्षाएँ ग्रहण की, उनका स्पष्ट प्रभाव उसके चिन्तन पर पड़ा दिखाई देता है। अरस्तू की मृत्यु के पश्चात् अरस्तूवाद की लम्बे समय तक एक्विनास से पहले किसी ने चर्चा नहीं की। एक्विनास ही एक ऐसे प्रथम ईसाई विचारक थे जिन्होनें अरस्तू के दर्शन को पुनर्जीवित किया। उन्होनें अरस्तू के दर्शन को ग्रहण तो किया लेकिन एक नए रूप में। उसने अरस्तू के दर्शन तथा ईसाई धर्म सिद्धान्त में समन्वय स्थापित किया। उसने अरस्तू के विचारों को उसी सीमा तक ग्रहण किया जिस सीमा तक वे ईसाइयत धर्म – सिद्धान्तों के पक्ष में रहे। एक्विनास ने अरस्तू की गलत धाराणाओं का सर्वथा त्याग किया। उसने अरस्तू की विवेकवादी विचारधारा के साथ ईसाइयत विश्वास या धर्म को मिलाकर एक मध्यमार्ग निकाल लिया ताकि धर्मसत्ता व राजसत्ता के मध्य चले आ रहे लम्बे संघर्ष को समाप्त किया जा सके। इसलिए उनके समन्वयवादी दृष्टिकोण को देखकर मैक्सी न कहा है – "एक्विनवास मध्ययुग का स्वर्गीय अरस्तू है।" फोस्टर ने भी कहा है।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि एक्विनास पर अरस्तू की विचारधारा का काफी प्रभाव पड़ा जिस कारण से वे मध्ययुग के अरस्तू कहलाए। इसके पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं :–

1. अरस्तू के धर्मनिरपेक्ष विचार दर्शन ने एक्विनास को काफी प्रभावित किया है। इस आधार पर एक्विनास ने मध्यकालीन धर्मान्धता के गर्त से राजनीतिक चिन्तन को बाहर निकालने के लिए एक सेतु का निर्माण किया है। उसने अपने चिन्तन में वैज्ञानिकता को प्रवेश कराकर राजनीतिक चिन्तन की महान् सेवा की है। उसके प्रयासों से अराजनीतिक चिन्तन पुनः उसी स्थिति में आ गया जो अरस्तू के समय में था।
2. एक्विनास ने अरस्तू की ही तरह मनुष्य को स्वभावतः तथा अनिवार्यतः एक सामाजिक प्राणी माना है। समाज के बिना व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है। इस सिद्धान्त के आधार पर एक्विनास ने राज्य को प्राकृतिक संस्था सिद्ध किया। उसने राज्य की उत्पत्ति आदिम पाप का फल नहीं है। राज्य को व्यक्ति के लिए स्वाभाविक है। साथ में राज्य ईश्वर द्वारा स्थापित संस्था भी है जिसका क्रमीक विकास हुआ है। अरस्तू के सिद्धान्तों के आधार पर ही एक्विनास ने कहा है कि राज्य मानव समाज का अनिवार्य संघटक है, फिर भी राजनीतिक सत्ता अन्य सभी की तरह ईश्वर से व्युत्पन्न है। चर्च राज्य का विरोधी न होकर पूरक ही है।
3. एक्विनास ने भी अरस्तू की ही तरह श्रेष्ठ जीवन की प्राप्ति के लिए राज्य को अनिवार्य माना है। एक्विनास को कहना है कि राज्य व्यक्ति की पूर्ण प्राकृतिक आत्म – अभिव्यक्ति की प्राप्ति का साधन है। राज्य के आदेशों का पालन करके ही व्यक्ति श्रेष्ठ लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। दोनों दार्शनिक सरकार को नैतिक उद्देश्य को प्रमुखता देते हैं। अरस्तू और एक्विनास के अनुसार राज्य एक अच्छाई है, बुराई नहीं। एक्विनास ने राज्य के अतिरिक्त चर्च को ही सर्वोपरि संगठन स्वीकार किया है। दोनों विचारकों राज्य का उद्देश्य व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति को स्वीकार करते है।
4. एक्विनास ने अरस्तू से विवेक या तर्क का सिद्धान्त भी ग्रहण किया है। उसका मानना है कि मानवीय विवेक पर आधारित ज्ञान ईसाई धर्मशास्त्रों के विपरीत नहीं है। उसने लौकिक सत्ता का आधार विववेक को ही माना है।

5. एक्विनास ने राज्यों व सरकारों का वर्गीकरण भी अरस्तू की तरह ही किया है। उसने अरस्तू की तरह ही राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र और सर्व लोकतन्त्र तथा उनके तीन ही विकृत रूपों का वर्णण किया है। उसने राजतन्त्र को उत्तम तथा लोकतन्त्र को निकृष्ट रूप बताया है।
6. एक्विनास ने अरस्तू की ही तरह यह भी स्वीकार किया है कि कुछ ऐसे भी सत्य हैं जो विवेक से परे हैं। उनका ज्ञान श्रद्धा और विश्वास से ही प्राप्त हो सकता है।
7. उसने अरस्तू की तरह यह भी स्वीकार किया है कि मानव समाज की रचना सभी के हित के लिए हुई है।
8. उसने अरस्तू के कानून सम्बन्धी विचारों को भी ग्रहण किया है। वह कानून को विवेक का परिणाम मानता है। परन्तु एक्विनास ने कानून के विचार को व्यापक आधार प्रदान किया है।
9. एक्विनास ने अरस्तू की सोद्देश्यता की धारणा को भी स्वीकार किया है। दोनों का मानना है कि प्रकृति की प्रत्येक वस्तु एक निश्चित उद्देश्य, लक्ष्य, साक्ष्य या प्रयोजन की तरफ जा रही है।
10. एक्विनास ने अपनी न्याय सम्बन्धी विचारधारा को भी अरस्तू के विचारों पर ही आधारित किया है। एक्विनास का मत है कि न्याय का स्त्रोत राज्य के कानून हैं।

4.12 निष्कर्ष (Conclusion)–

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि एक्विनास ने अपने राजनीतिक चिन्तन को अरस्तूवाद की नींव पर ही खड़ा किया है। लेकिन एक्विनास का प्रयास रह रहा है कि अरस्तू के विचारों को ईसाइयत के आधार पर ढाला जाए। उसने मानव समाज की तुलना में दैवी समाज को महत्त्व दिया है। उसने अरस्तू के विवेक के साथ विश्वास का भी समन्वय कर दिया है। अरस्तू ने तो केवल मानव जीवन का लक्ष्य लौकिक सुख माना है जबकि एक्विनास ने इसके साथ – साथ पारलौकिक सुख को भी महत्त्व दिया है। उसने मानवीय कानून को प्राकृतिक कानून के अधीन कर दिया है। इस प्रकार एक्विनास ने अरस्तू के विचारों को

साधन के रूप में ग्रहण करके उनको साध्यों के अनुकूल बनाया है। सत्य तो यह है कि एक्विनास ने अरस्तू के विचारों को ही अपने चिन्तन का आधार बनाया है। एक महान विद्वतावादी दार्शनिक के रूप में एक्विनास ने अरस्तूवाद और ईसाईवाद का मिश्रण करके मध्ययुग में लम्बे समय से चले आ रहे धर्मसत्ता और राजसत्ता के संघर्ष को शान्त करने का प्रयाय किया है। उनको मध्ययुग का अरस्तू कहना सर्वथा सही हैं।

संत एक्विनास की राजनीतिक विचारधारा का मूल्यांकन करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि उसने आधुनिक यूरोप को मध्यकालीन यूनानी विचारों से परिचित करवाया। उसने अरस्तू की पालिटिक्स तथा संत ऑगस्टाइन के उपदेशों में एक महान समन्वय स्थापित किया। इसी समन्वय के कारण उत्तर मध्ययुग की विचारधारा में अनेक परिवर्तन आए। जैसे कानून की सर्वोच्ता के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया। यह माना जाने लगा कि जनता में सामूहिक निर्णय करने की क्षमता होने के कारण उसे अपने शासकों को निर्वाचित करने तथा उन पर नियंत्रण रखने का जन्मसिद्ध अधिकार होना चाहिए। लार्ड एक्टन ने एक बार संत एक्विनास को सबसे पहला विहग (Whig) बताया था। उसका चिन्तन यद्यपि धर्म तथा चर्च से प्रभावित है परन्तु उसने अरस्तू के धर्मनिरपेक्ष चिन्तन को भी स्वीकार किया है। यही समन्वय उसके चिंतन की विशेषता है जो उसके चिन्तन को अत्याधिक उपयोगी तथा अपने युग का प्रतिनिधि विचारक बना देती है।

4.13 शब्दावली (Keywords)–

लौकिक – जो दिखाई पड़ता हो, जो स्पष्ट रूप से सामने हो।

सीमित राजतन्त्र– राजा के ऊपर यदि कानून का नियंत्रण हो तो उसे सीमित राजतन्त्र कहा जाता है।

शाश्वत कानून– ईश्वरीय कानून, जो स्थायी है।

4.14 स्व–मूल्यांकन (Self Assessment)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Question)–

(1) एक्विनास के दासता पर दिए गए विचारों का वर्णन करें।

(2) थॉमस एक्विनास के अनुसार मानवीय कानून का क्या अर्थ है।

(3) थॉमस एक्विनास के राजनीतिक चिन्तन के उद्देश्य का वर्णन करें।

दीर्घ उत्तरात्मक प्रश्न (Long Answer Type Question)–

(1) चर्च तथा राज्य के बीच सम्बन्ध के विषय में एक्विनास की मान्यताओं का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।

(2) संत थॉमस द्वारा किए गए कानूनों के वर्गीकरण की विवेचना कीजिए।

(3) क्या संतथॉमस एक्विनास अपने युग का प्रतिनिधि विचारक था? स्पष्ट कीजिए।

4.15 सन्दर्भ सूची–

1. प्रभुदत्त शर्मा, राजनीतिक विचारों का इतिहास (प्लेटो से मार्क्स), कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 1967.
2. बी.एल.फाड़िया, पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास (प्लेटो से मार्क्स), साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2018.
3. जे.पी.सूद, पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का इतिहास (भाग–प्राचीन व मध्यकालीन), जे.नाथ एण्ड कंपनी, मेरठ, 2008.
4. सेबाइन, ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल थ्योरी, न्यूयार्क, 1973
5. पुखराज जैन, राजनीतिक विज्ञान के सिद्धान्त, साहित्य भवन, आगरा, 1988.
6. रघुवीर सिंह, मध्यकालीन विश्व का इतिहास, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली
7. ब्रायन आर. नेल्सन, वेस्टर्न पॉलिटिकल थॉट, वेवलैंड प्रकाशन, 1996.

8. डी. बॉशर व पी. कैली, पॉलिटिकल थिंकरसः फ्रॉम सॉकरेटिज टू द प्रेजेंट, ऑक्सफोर्ड, 2009.
9. जे.कॉलमैन, ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल थॉटः फ्रॉम एंशियट ग्रीस टू अर्ली प्रिस्टियनीटी, ऑक्सफोर्ड, 2000.
10. सी.बी.मैकफर्सन, द पॉलिटिकल थ्योरी ऑफ पसैसिव इंडिवियुलिज्मः हॉब्स टू लॉक, 1962.
11. ली. स्ट्रॉस, हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल फिलॉस्फी, शिकागो यूनिवर्सिटी प्रैस, 1987.

- ईकाई – 4

प्रस्तावना (Introduction)

पुर्नजागरण ने मध्ययुगीन व्यवस्था तथा उसके मूल्यों को समाप्त करके आधुनिक युग का शिलान्यास किया। पुर्नजागरण के प्रभाव के परिणामस्वरूप यूरोप के जीवन के हर क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन दिखाई दिए। एक ओर जहां इटली की सामाजिक व राजनीतिक जीवन ने मैकियावेली की विचारों को निर्मित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वहीं दूसरी ओर इंग्लैंड की परिस्थितियों ने थॉमस हॉब्स के राजनीतिक व्यक्तित्व का निर्माण किया। इस अध्ययाय में आधुनिक राजनीतिक चिंतन में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले दोनों विचारकों के योगदान पर चर्चा होगी। दोनों ही चिंतकों के सम्प्रभुता, राज्य, शासनकला आदि जैसे विचारों ने आधुनिक राजनीतिक चिंतन को एक नई दिशा प्रदान की है। राजाज्ञापालन के नए आधारों की खोज की गई तथा समझौतावाद के रूप में एक ऐसे सिद्धान्त का निरूपण किया गया जिसने राजनीतिक सोच का स्वरूप ही परिवर्तित कर दिया।

उद्देश्य (Objective)

1. इटली तथा इंग्लैंड की तत्कालीन परिस्थितियों को समझना।
2. आधुनिक काल में राजनीति के अध्ययन के लिए पर्यवेक्षणात्मक तथा ऐतिहासिक पद्धति को समझना।
3. राज्य के निर्माण के व्यक्तिवादी आधार को समझना।
4. व्यवहारिक राजनीति तथा शासन कला के नियमों को समझना।

अध्याय – 5

मैकियावली (Machiavelli)

5.1 प्रस्तावना (Introduction).

फलोरेन्स निवास मैकियावली यूरोप में पुनर्जारण काल के एक विवादास्पद विचारक है। मैकियांवली के विचारों का जितना प्रयोग हुआ है उतना ही दुष्प्रयोग भी। पुनर्जागरण आन्दोलन के कारण यूरोप में चर्च को तानाशाही व सामन्तावादी व्यवस्था के परिणामस्वरूप जोरदार आन्दोलन चल रहे थे तो ऐसे समय में मैकियावली जैसे प्रतिभाशाली विचारक व राजनीतिज्ञ का इटली की राजनीति में प्रवेश, वहाँ की जनता के लिए एक वरदान से कम नहीं था। मैकियावली ने 'The Prince' और 'Discourses' ग्रन्थों की रचना करके यूरोप की राजनीति (विशेष तौर पर इटली की) को एक नई दिशा दी। मैकियावली ने इटली के विभाजन से उत्पन्न समस्याओं का गहन अवलोकन करके एक संगठित इटली राष्ट्र राज्य का स्वप्न अपने मन में संजोया। उसने अन्त करने वाले और आधुनिक युग की शुरूआत करने वाले प्रथम विचारक थे। उसे अपने 'युग का शिशु' की संज्ञा प्रदान की गई और उसे इटली के एकीकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला व्यक्ति माना गया। उसके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'The Prince' में शासन कला के सिद्धान्तों को प्रतिपादित करके इटली की राजनीतिक स्थिरता का प्रथम महत्त्वपूर्ण प्रयास माना गया। उसने इस पुस्तक में राजतन्त्र की तथा 'Discourses' में गण्तन्त्रीय व्यवस्थ की सराहना की है। वह धर्म को राजनीति से पृथक् करने वाला प्रथम विचारक माना जाता है। उनका यथार्थवादी दृष्टिकोण व्यावहारिक राजनीति का स्वरूप स्पष्ट करता है। अनेक विवादों के बाद भी मैकियावली एक महत्त्वपूर्ण विचारक है जिसका राजनीतिक दर्शन के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है और वह मध्यकाल तथा आधुनिक काल को जोड़ने वाली एक प्रमुख कड़ी है।

5.2 उद्देश्य (Objectives)–

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होगें–

- मैकियावली के राजनीतिक चिन्तन पर प्रभाव डालने वाली तत्कालीन परिस्थितियों को समझने के।
- मैकियावली द्वारा धर्म तथा राजनीति के पृथक्करण पर दिए गए विचारों को समझने में
- मैकियावली का आधुनिक यथार्थवादी राजनीतिक चिन्तन में योगदान का मूल्यांकन करने में।

5.3 जीवन परिचय

मैकियावली का जन्म 1469 ई० में इटली के फलोरेन्स नगर में हुआ। उसके पिता एक वकील थे जो टस्कन वंश से सम्बन्धित थे। यद्यपि उसको पर्याप्त शिक्षा तो प्राप्त नहीं हो सकी, फिर भी उसे लैटिन भाषा का अच्छा ज्ञान था। उसकी लेखनी में कला और शक्ति दोनों थी। जीवन की व्यवहारकुशलता और धनार्जन की दौड़ में बहुत आगे थे। मैकियावली प्रारम्भ से ही फलोरेन्स की सत्ता में भाग लेना चाहते थे और उनका यह स्वप्न 1494 में 25 वर्ष की आयु में पूरा हुआ। इस समय उसने एक छोटा सा प्रशासनिक पद प्राप्त करके अपने राजनीतिक जीवन की शुरूआत की। तत्पचात् अपनी राजनीतिक सूझ – बूझ के बल पर उसने 'चान्सरी' में सचिव पद प्राप्त हुआ। इस पद की बदौलत उसे राजनायकि कार्यों से सम्बन्धित मामलों में फलारेन्स का प्रतिनिधित्व करने के लिए यूरोप के कई देशों में जाने का अवसर प्राप्त हुआ जहाँ बड़े राजनेताओं के सम्पर्क में आने पर उसने व्यावहारिक राजनीति का ज्ञान प्राप्त किया। लुई बारहवें, विशप सोडेशी, सीजर बोर्गिया के साथ सम्बन्धों ने उसे महत्त्वाकांक्षी बना दिया और वह अवसरवादी राजनीति का प्रणेता बन गया। 1498 से 1512 ई० तक 14 वर्षों तक उसने 'Council of Ten for War' का सदस्य बनकर फलारेन्स के सुरक्षा विभाग की सेवा की लेकिन 1512 ई० में स्पेन समर्थकों द्वारा फलोरेन्स पर अधिकरार कर लेने के बाद उसका पद छिन गया और उसे जेल भेज दिया गया। अब

उसको सक्रिय राजनीतिक जीवन से छुटकारा मिल गया अर्थात्उसके राजनीतिक जीवन का अन्त हो गया। अब फलोरेन्स पर मेडिसी परिवार का आधिपत्य हो गया। जीवन के शेष 15 वर्ष उसने 'सैन कैशिसनो' नामक गाँव में समाज सेवा और लेखन कार्य करते हुए व्यतीत किए। उसने मेडिसी परिवार के तत्कालीन प्रशासक लोरेंजो अर्थात् 'ड्यूक ऑफ बोर्जिया' के कहने पर ही अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'The Prince' लिखकर भेंट की। लेकिन उसे षड्यन्त्रकारी मानकर निर्वासित कर दिया गया और उसने इस दौरान 'इटली का इतिहास' लिखा। 1527 ई० में 58 वर्ष की अल्पायु में ही उसकी मृत्यु हो गई।

महत्त्वपूर्ण रचनाएँ (Important Works)

मैकियावली ने अपने जीवनकाल में दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की जिससे उसका नाम राजनीतिक दर्शन के इतिहास में अमर हो गया :–

1. **दॉ प्रिन्स (The Princ) :** यह पुस्तक 1513 में लिखी गई। यह मैकियावली की प्रमुख रचना है। यह रचना राजतांत्रिक व्यवस्था पर प्रकाश डालती है। इसमें राज्य का निर्माण व विस्तार के बारे में बताया गया है। इस ग्रन्थ में 26 अध्याय हैं जिन्हें तीन भागों में बाँटा गया है। प्रथम अध्याय राजतन्त्र का, दूसरा किराये की सेनाओं व राष्ट्रीय सेनाओं का तथ अन्तिम अध्याय राजदर्शन की व्याख्याएँ प्रस्तुत करता है। इस ग्रन्थ में एक सफल शासक के लिए दिए गए उपदेश विस्तारपूर्वक समझाए गए हैं। इसलिए यह रचना मैकियावली की सबसे महत्त्वपूर्ण रचना है।
2. **डिस्कोर्सेज :** यह रचना 1520 ई० में लिखी गई। इसमें मैकियावली ने गणतन्त्रीय व्यवस्था का वर्णन किया है। यह रोमन राजतन्त्र और तत्कालीन शासकों के लिए कुछ नियमों की आदर्श रूपरेखा प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक में गणराज्य को राजतन्त्र की अपेक्षा अधिक कल्याणकारी, सबल और जन आकांक्षाओं के अनुकूल बताया गया है।

इनके अतिरिक्त मैकियावली ने 'The Art of War' तथा 'History of Florence' नामक दो अन्य ग्रन्थ भी लिखे । इनके अतिरिक्त उसने अनेक उपन्यास, कहानियाँ तथा कविताएँ भी लिखीं।

5.4 अध्ययन की पद्धति (Method of Study)

मैकियावली ने अपने पूर्ववर्ती विचारकों से भिन्न पद्धति को अपनाकर पूर्ववर्ती विचारकों की अध्ययन पद्धति की जटिलताओं को दूर करने का प्रयास किया है। उसे पोप और सम्राट से कोई लगाव नहीं था। उसने नीति, न्याय आदि के अमूर्त सिद्धान्तों पर आधारित निगमनात्मक पद्धति को त्यागकर वैज्ञानिक तटस्था की निति अपनाई। समकालीन परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए अपनी नई अध्ययन पद्धति विकसित की जिसकी विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :–

1. **ऐतिहासिक पद्धति (Historical Method) :** मैकियावली ने अनुभाविक विधि को अपनाते हुए ऐतिहासिक विधि से उसकी पुष्टि की। उसने समकालीन राजनीति का अध्ययन किया, विश्लेषण किया, अपने निष्कर्ष निकाले और उसके बाद इतिहास की घटनाओं की आधार पर उनकी पुष्टि की। उसने प्राचीन रोम इतिहास से बहुत सी घटनाएँ और सत्यों के उदाहरण प्राप्त किए। वह इतिहास को ही आधार मानता था। उसका विश्वास था कि "जो व्यक्ति पहले से यह जानना चाहता है कि भविष्य में क्या होने वाला है, उसे इस बात पर विचार करना चाहिए कि क्या हो चुका है।" अपनी पुस्तक 'डिसकोर्सज' (Discourses) में उसने प्राचीन इतिहास के अनेक दृष्टान्त दिए हैं। ऐतिहासिक विधि एक व्यावहारिक राजनीतिज्ञ की हमेशा मदद करती है। हमें वर्तमान में समस्याओं का हल किस प्रकार करना चाहिए तथा भविष्य में क्या करना है ? इस तरह के प्रश्नों का उत्तर भूतकाल के अध्ययन द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। इतिहास का अवलोकन करने से ही हमें समस्याओं के कारण तथा उनका समाधान मालूम हो सकता है। मैकियावली के अनुसार हम इतिहास की सफलताओं व असफलताओं के कारणों को जानकर उन्हें वर्तमान में लागू कर सकते हैं। इस प्रकार पूर्वजों के गलत तथा सही कार्यों व उनके परिणामों का लाभा प्राप्त किया जा सकता है। मैकियावली ने इतिहास का उपयोग पूर्वकल्पित निष्कर्षों की पुष्टि में

किया है। इतिहास का अध्ययन वर्तमान राजनीतिक दर्शन की समस्याओं को हल करने में पूर्ण सहायक सिद्ध हुआ है।

प्रो० डनिंग का विचार है कि मैकियावली की पद्धति देखने में जितनी ऐतिहासिक लगती है, यथार्थ में उतनी नहीं है। उसके सिद्धान्त पर्यवेक्षण पर आधारित थे। उनकी पुष्टि करने के लिए उसने ऐतिहासिक विधि अपनाई थी। उसने पूर्व – कल्पित सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए ही इतिहास के प्रमाणों की तलाश की थी। इसी प्रकार सेबाइन भी मैकियावली की पद्धति को ऐतिहासिक कहना भ्रमपूर्ण मानता है। उनका कहना है कि उनकी पद्धति पर्यवेक्षणात्मक थी। उसने अपने तर्कों को सत्य सिद्ध करने के लिए ही इतिहास का आश्रय लिया।

इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजनीतिक समस्याओं के प्रति मैकियावली का दृष्टिकोण अनुभव प्रधान था एवं उसकी भावना ऐतिहासिक थी।

2. **निरीक्षणात्मक पद्धति** : सेबाइन के अनुसार मैकियावली की अध्ययन पद्धति निरीक्षणात्मक अथवा पर्यवेक्षणात्मक थी। उनकी पुस्तक 'दा प्रिंस' इस पद्धति पर ही आधारित है। उसका उद्देश्य अपने समय की समस्याओं का हल करना था जिसके लिए उसमें घटनाओं को यथार्थवादी धरातल पर परखकर निष्कर्ष प्रस्तुत किए। इस प्रकार उनकी पद्धति वास्तविक घटनाओं पर आधारित निरीक्षणात्मक पद्धति थी। उसने निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए घटनाओं का ऐतिहासिक अवलोकन किया था।
3. **तुलनात्मक पद्धति :** मैकियावली ने अपनी इटली की तत्कालीन दुर्दशा को देखा था। उसने विभिन्न टुकड़ों में बँटी इटली के राज्यों की समस्याओं का अलग – अलग पता लगाकर उनका तुलनात्मक अध्ययन किया था। उसकी यह पद्धति अरस्तू की तरह व्यापक तुलनात्मक निष्कर्षों पर आधारित थी।
4. **विश्लेषणात्मक पद्धति :** मैकियावली ने निष्कर्षों तक पहुँचने के लिए सबसे पहले किसी घटना के मूल कारणों का पता लगाया था। उसके बाद कारणों को घटना के

क्रम के आधार पर विश्लेषण करके अपना मत या निष्कर्ष प्रस्तुत किया था। इसलिए उनकी पद्धति विश्लेषणात्मक थी।

5. **वैज्ञानिक पद्धति :** मैकियावली ने वैज्ञानिक तटस्थता की नीति को अपनाते हुए अपनी समकालीन परिस्थितियों का बड़े ध्यान से अध्ययन किया। उसने सबसे पहले समस्याओं को समझा और फिर परिणाम पर पहँचा। मैकियावली ने मध्यकाल के विचारकों के विपरित जिस पद्धति को अपनाया उसमें मध्ययुग की भ्रामक विचारधाओं जैसे 'दो तलवारों का सिद्धान्त', प्राकृतिक कानून के सिद्धान्त के लिए कोई स्थान नहीं है। फिर भी उसने कहीं – कहीं अपनी कुछ धाराणाएँ बना ली थीं जिनको सत्य मानकर व चलता है। इस प्रकार मैकियावली वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर दार्शनिक तत्त्व भी ग्रहण कर लेता है।

इस प्रकार उसने केवल ऐतिहासिक पद्धति का ही प्रयोग नहीं किया बल्कि तुलनात्मक, निरीक्षणात्मक, वैज्ञानिक दृष्टिकोण गुणों आदि पर आधारित पद्धति का प्रयोग किया। परन्तु आलोचकों का कहना है कि यह पद्धति ऐतिहासिक नहीं थी। उसने इतिहास के दृष्टांतों का प्रयोग केवल कल्पित – निष्कर्षों को सिद्ध करने के लिए ही किया था। प्रो० डनिंग के अनुसार – "मैकियावली की पद्धति ऊपर से जितनी ऐतिहासिक लगती है, यथार्थ में उतनी ऐतिहासिक नहीं है।" सेबाइन ने भी उसी पद्धति को ऐतिहासिक कहना भ्रमपूर्ण माना है।

इन आलोचनाओं के बावजूद यह कहना पड़ेगा कि उसने धार्मिकता, अन्धविश्वास व गूढ़ताओं से मुक्त अध्ययन पद्धति राजनीतिक दर्शनशास्त्र को प्रदान की। उसने ऐतिहासिक, यथार्थवादी, पर्यवेक्षणात्मक व वैधानिक विशेषताओं से युक्त पद्धति अपनाकर इतिहास की सहायता से उसे वैज्ञानिक और यथार्थवादी बनाने का प्रयास किया। उसने अपने सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए धार्मिक दृष्टान्तों का सहारा न लेकर, इतिहास, तर्क और पर्यवेक्षण की ऐसी पद्धति ग्रहण की जिसमें चातुर्य और सहज वृति की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी। उसने अपनी राजनीतिक पद्धति से इतिहास और अनुभव का समन्वय करके आगमनात्मक पद्धति

का प्रारम्भिक रूप पेश किया। अपनी हठवादिता और एकांगी दृष्टिकोण के अवगुण से युक्त यह पद्धति मैकियावली की राजनीति विज्ञान को एक महत्त्वपूर्ण देन है।

5.5 मैकियावली अपने युग के शिशु के रूप में (Machiavelli as the Child of His Time)

प्रो० डंनिग का कथन है कि प्रतिभासम्पन्न फलोरेन्स निवासी मैकियावली सही अर्थ में अपने युग का शिशु था। इसी तरह डब्लू०दी० जोंस ने मैकियावली को पुनर्जागरण काल का शिशु कहा है। इसी तरह सेबाइन का भी मानना है कि मैकियावली का सम्पूर्ण दर्शन समकालीन परिस्थितियों पर आधारित है और मैकियावली यदि किसी दूसरे देश या युग का होता तो राजनीति के बारे में उसके विचार कुछ और होते। इस प्रकार का मन्तव्य मैकियावली के बारे में इसलिए दिया गया है क्योंकि मैकियावली एक यथार्थवादी राजनीतिज्ञ तथा दार्शनिक थे और स्वभाव से बहुत ही संवेदनशील तथा देशभक्त थे। उन्होनें अपने सम्पूर्ण लेखन कार्य को उस समय के इटली तथा यूरोप की परिस्थितियों पर आधारित किया है। ऐसे तो प्रत्येक विचारक अपनी समकालीन परिस्थितियों से प्रभावित होता है, अपने युग को सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं के सन्दर्भ में विचार व्यक्त करता है, लेकिन ऐसा लगता है कि मैकियावली पर अपने युग का कुछ ज्यादा ही प्रभाव पड़ा था। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :–

1. मैकियावली स्वभाव से बहुत ही संवदेनशील (Sensitive) था।
2. मैकियावली एक राजनीतिज्ञ और यथार्थवादी था जिसका प्रमुख उद्देश्य इटली का एकीकरण एवं इटली को एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में विकसित करना था।

मैकियावली पर पड़ने वाले प्रभाव को हम निम्न शीर्षकों में बाँट सकते हैं :–

1. **पुनर्जागरण (Renaissance) :** मैकियावली का युग पुनर्जागरण का युग था। 15 वीं शताब्दी के अन्त तक इटली में यह आन्दोलन चरम सीमा पर पहुँच गया था। इस आन्दोलन का उद्देश्य मध्यकालीन यूरोप को आधुनिक यूरोप में परिवर्तित करना था। यह युग इटालियन पुनरूत्थान का युग भी था। इस युग में धर्म का स्थान भौतिकता,

ईश्वर को स्थान पुरूषार्थ, आदर्शों का स्थान यथार्थता और मध्यकालीन मूल्यों का स्थान अवसरवादिता और विलासिता ले रही थी। ज्ञान, तर्क, विज्ञान एवं बुद्धिजन्य सिद्धान्तों का सृजन इस युग में शुरू हो गया था। मैकियावली के लेखों और विचारों में इसी पुनर्जागरण की विचारधारा का प्रभाव लक्षित होता है। मैकियावली का साहित्य सर्वथा नए युग का अहसास करता है। मैकियावली ने पुनर्जागरण की बढ़ती हुई भावना के अनुरूप ही स्वतन्त्र बौद्धिक चिन्तन को युग की शुरूआत की। प्राचीन ईसाइयत के विचारों का पतन होने लग गया। अब मध्ययुगीन दैवीय विचारधारा का अन्त होने लग गया और व्यक्ति को ज्यादा महत्त्व दिया जाने लगा। अब इस जीवन पर, व्यक्तित्व को समृद्ध बनाने और हर रूप में सौन्दर्य का आनन्द प्राप्त करने की प्रवृति पैदा हुई। व्यष्टिवाद की भावना का विकास हुआ जिसने प्राकृतिक और मानवीय दोनों दृष्टियों से मनुष्य की गरिमा पर बल दिया गया। पुनर्जागरण ने तर्क – बुद्धि को जन्म दिया। भौगोलिक खोजों के परिणामस्वरूप उत्पन्न अन्तराष्ट्रीय संघर्ष ने राष्ट्रवाद और राष्ट्र राज्य की भावनाओं को जन्म दिया जो कि चर्च और राज्य के मध्युगीन स्वार्थ की विरोधी थी। पुनर्जागरण के फलस्वरूप जीवन के एक नवीन आदर्श की उत्पत्ति हुई जिसका लक्ष्य इस जीवन में व्यक्ति को सफलता दिलाना था। शक्ति की नए देवता के रूप में पूजा की जाने लगी। मैकियावली ने भी इस दौरान पुस्तक लिख डाली जिसमें तत्कालीन इटली का राजनीतिक वातावरण स्पष्ट झलकता है।

मैकियावली का फलोरेन्स नगर उस समय पुनर्जागरण का प्रधान नगर था तथा इटली की संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र था। यह पुनर्जागरण केवल ज्ञान से सम्बन्धित ही नहीं था बल्कि यह साहित्य, कला, संस्कृति, व्यापार एवं वाणिज्य आदि क्षेत्रों में भी पुनरूद्धार का युग था। फोस्टर के अनुसार – "गैर ईसाई प्राचीनता में दिलचस्पी का यह पुनरूत्थान का पांडित्यापूर्ण अथवा शैक्षिक आन्दोलन से बढ़कर था। वह यूरोपीय जनता में गैर – ईसाई भावनाओं के भी पुनरूत्थान का संकेत करता था जिन्हें मध्यकालीन ईसाई – संस्कृति ने कुचल तो डाला था परन्तु

बिल्कुल समाप्त नहीं किया था। लोगों ने प्राचीनकाल के लेखकों की कृतियों में एक नई दिलचस्पी खोजी थी क्योंकि ये कृतियाँ ऐसे कुछ तत्वों के अनुकूल थीं जिनका उन्हें अपने आदर ही विद्यमान होने का बोध था।" 15 वीं सदी के अन्त तक लोगों को ईसाई धर्म के निकम्मेपन का पूरा अहसास हो गया था। धर्म का यह सिद्वान्त था कि पारलौकिक सुख के लिए लौकिक सुख का त्याग कर देना चाहिए। मैकियावली के विचारों ने इस विचारधारा को पूरी तरह पलट दिया। पुनर्जागरण के विचारकों के लिए व्यक्ति ही अध्ययन का प्रमुख मुद्दा बन गया। इसके परिणामस्वरूप लोगों के जीवन ने एक नई चेतना का सूत्रपात हुआ। लोगों में स्वतन्त्रता और अपने जीवन के प्रति लगाव की भावना बढ़ी। आत्मा और परमात्मा के तथा पाखण्डतापूर्ण विचारों और अन्धविश्वासों के स्थान पर ज्ञान की नवीन ज्योती का संचार हुआ।

यह आन्दोलन शारीरिक सुख, आनन्दमय जीवन और बौद्धिक विकास से सम्बन्धित था। यह धर्मनिरपेक्षता का युग था। 'मानव सभी वस्तुओं का मापदण्ड है' का उद्देश्य चारों ओर परिलक्षित होने लग गया। पुनर्जागरण ने मध्ययुगीन व्यवस्थाको तहस – नहस कर दिया। इसने बाईबलवाद, देववाद, चर्चवाद, सामन्तवाद आदि को पूरी तरह दफन कर दिया। मेयर के नए संसार की नींव रखी; एक ऐसा संसार जिसने सदैव के लिए मध्ययुग का अन्त कर दिया।" जोंस का कथन है कि – "मैकियावली फलोरेंस और पुनर्जागरण का शिशु है।" यह उक्ति पूरी तरह चरितार्थ होती है, क्योंकि मैकियावली पर पुनर्जागरण आन्दोलन का जितना प्रभाव पड़ा उतना अन्य किसी पर नहीं। उसकी रचनाएँ 'दा प्रिन्स' और 'डिसकोर्सज' समाकालीन परिस्थितियों के विश्लेषण पर ही आधरित हैं। इस बारे में सेबाइन लिखता है – "इटली को जितना अधिक मैकियावली जानता था उतना अधिक कोई नहीं जानता था।" जोन्स का कथन है कि "उसकी कृतियों में उसके युग की वास्तविक स्थिति के दर्शन होते हैं। व्यक्ति का महत्त्व और उसका सौन्दर्य, बौद्धिक तर्कवाद और सांसरिक मर्यादा का निरूपण, उद्‌गमनात्मक पद्धति का अनुसरण, राष्ट्रीयता की भावना का नेतृत्व तथा पारलौकिक के स्थान पर लौकिक उद्देश्यों की उपलब्धि का

औचित्य आदि इतने सारे तथ्य हैं जिनका समर्थन मैकियावली ने अपने विचारों और कृतियों में किया है।" अतः मैकियावली अपने युग की इन सारी घटनाओं के गवाह थे जिनकी उनके राजनीतिक चिन्तन में अमिट छाप देखी जा सकती है। इसलिए वह पुनर्जागरण का प्रतिनिधि था।

2. **इटली की राजनीतिक परिस्थिति (Political situation of Italy)** : मैकियावली एक संवेदनशील व्यक्ति होने के कारण इटली की राजनीतिक दुर्दशा से काफी चिंतित थे। उस समय इटली पाँच राज्यों में बँटा हुआ था। ये पाँच राज्य थे – नेपल्स, मिलान, रोमन, चर्च, वेनिस, और फलोरेन्स। इन राज्यों का आपस में सदैव संघर्ष रहता था। इटली के इस राजनीतिक विभाजन और संघर्ष ने इटली को बहुत कमजोर बना दिया था। फ्रांस और स्पेन जैसे राष्ट्रीय राज्यों के उदय से इटली के हितों को नुकसान पहुँचाने का खतरा पैदा हो गया था। इन राष्ट्रों की नजरें इटली पर थीं। मैकियावली एक विलक्षण बुद्धि का व्यक्ति था। वह फ्रांस, स्पेन तथा ब्रिटेन की महत्त्वकांक्षाओं से भली–भाँति परिचित था। उसने सोचा था कि यदि इटली को संगठित व एकीकृत नहीं किया गया तो पड़ोसी राष्ट्र उसे अवश्य ही हड़प लेंगे। मैकियावली एक यथार्थवादी व्यक्ति थे। उनका इटली की राजनीति का व्यावहारिक अनुभव उनकी सहायता कर सकता था। अतः मैकियावली चाहता था कि राष्ट्रीय राज्यों की तरह इटली का भी राष्ट्रीय आधार पर एकीकरण हो तथा इटली भी किसी शक्तिशाली शासक के अधीन अपने को स्वतन्त्र करने में सफल हो सके। मैकियावली ने इसे इटली की प्रथम आवश्यकता मानकर एक ऐसा शक्तिशाली इटली राष्ट्र का स्वप्न संजोया जो इटली को वर्तमान दुर्दशा से निकाल सके। इसलिए व्याकुल होकर मैकियावली ने 'दा प्रिन्स' तथा 'डिसकोर्सज' जैसे ग्रन्थों की रचना की ताकि विभाजित इटली को फिर से एकीकृत व संगठित राष्ट्र के रूप में खड़ा किया जा सके। इसलिए उसे इटली के राष्ट्रवाद का अग्रदूत कहा गया है। सेबाइन का मानना है – "मैकियावली के अतिरिक्त और कोई व्यक्ति इटली को नहीं

पहचान सका। उसके अतिरिक्त अन्य किसी को भी सम्पूर्ण यूरोप में चलने वाले इस विकास – क्रम का स्पष्ट ज्ञान नहीं हो पाया।"

इस प्रकार मैकियवली ने अपनी समस्त रचनाएँ अपने व्यावहारिक राजनीतिक अनुभव का प्रयोग करते हुए लिखीं। उसने अपनी रचनाओं में इटली की फूट, गृहयुद्ध, विदेशी शासकों के हस्तक्षेप की परिस्थितियों तथा इटली के एकीकरण के उपायों का वर्णन किया। उसने अपनी रचनाओं का सृजन इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया कि इटली में एक ऐसा राजनीतिक वातावरण तैयार हो सके जिससे इटली का एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में पुनर्जन्म हो और जो विदेशी व अपने देश के विघटनकारी तत्त्वों से निपटने में सक्षम हो। अतः डनिंग द्वारा उसे दी गई 'युग शिशु' की संज्ञा सर्वथा उचित है।

3. **इटली का सामाजिक वातावरण (Social Situation of Italy)** : उस समय इटली के समाज में नीतिपरायणता ईमानदारी और देशभक्ति का सर्वथा अभाव था समाज में भ्रष्टाचार, दलबन्दी और स्वार्थप्रियता का सर्वत्र बालबाला था। यद्यपि लोगों में इन समस्याओं को दूर करने के लिए प्रतिभा की कमी नहीं थी लेकिन उनकी नैतिकता मर चुकी थी। पोप का जीवन भी पापमय था। सर्वत्र भ्रष्टाचार रूपी दानव पैर पसार चुका था। पैसे लेकर माफीनामें बेचे जाते थे। बेकसूर को सजा दी जाती थी और अपराधी रिश्वत देकर बच निकलते थे। इस सामाजिक दुर्दशा ने मैकियावली के संवेदनशील मानस – पटल पर अमिट छाप छोड़ी। उसने इटली को एक शक्तिशाली व मजबूत राष्ट्र के रूप में खड़ा करने के लिए शक्ति का प्रयोग का सुझाव दिया। उसका ग्रन्थ 'The Prince' शासक को सभी कूटनीतिक व दण्डात्मक उपायों का सुझाव देता है। उसने इटली के लिए एक शक्तिशाली राष्ट्रीय सेवा की आवश्यकता पर जोर दिया। उसने इटली को इस अराजकता की स्थिति से निकालने के लिए निरंकुश राजतन्त्र का समर्थन किया जो देश में गृहयुद्ध की स्थिति पैदा करने वाले व राष्ट्रीयता की भावना में बाधक तत्त्वों से लोहा ले सके और एक एकीकृत व संगठित इटली राष्ट्र राज्य का निर्माण कर सके। उसने एक ऐसे

सार्वभौम का सुझाव दिया जो इटली को संगठित कर सके व देश में शान्ति कायम कर सके। उसने अपनी रचनाओं में शक्ति एवं छलकपट दोनों साधनों द्वारा जनताको इस दुर्दशा से मुक्ति दिलाने वाले शासन को कायम करने की बात कही। उसने अपने इस स्वप्न को पूरा करने के लिए बुद्धि व बल के समुचित समन्वय पर बल दिया। उसके इटली के एकीकरण के स्वप्न को उसकी मृत्यु के बाद कॉवूर तथा गेरिबाल्डी आदि ने पूरा किया। अतः कहा जा सकता है कि प्रतिभावन मैकियावली 'अपने युग का शिशु था।'

4. **इटली के एकीकरण में बाधक होना (Pope as an Obstacle in the Unity of Italy) :** उस समय इटली की एकता में सबसे बाधा पोप था। पोप सारे इटली में अपना धर्मतन्त्र स्थापित करना चाहता था, परन्तु उसके पास सैनिक शक्ति का अभाव होने के कारण उसका स्वप्न पूरा नहीं हो सकता था। उसे स्पेन और फ्रांस से पूरी सहायता मिलती थी, इसलिए वेनिस जैसे राज्य उसका कुछ नहीं बिगाड़ सके। पोप के कुकर्मों तथा जीवन के कारण लोगों के हृदय से श्रद्धा और विश्वास कम हो गया था। पोप का विश्व साम्राज्य का स्वप्न नष्ट हो चुका था। कुछ सन्तों व समाज – सुधारकों ने चर्च व पोप की बुराइयों से जनता को अवगत कराया। इससे जनता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। लोगों की धर्म में आस्थाकम हुई किन्तु जब फ्रांस ने फलोरेन्स पर अधिकार करके पोप को खुश करने के लिए सेवानोशला को बन्दी बनाकर जला दिया तो लोगों ने सारे नैतिक आदर्शों को त्याग दिया और अनैतिकता की राह पर चल पड़े।

इससे मैकियावली बहुत प्रभावित हुआ और उसने अपने ग्रन्थ में राजा को कठोर उपायों द्वारा शासन चलाने की सलाह दी। उसने कहा कि राज्य का अस्तित्व बनाए रखने के लिए धर्म व नैतिकता का भी त्याग कर देना चाहिए। लोक कल्याण के लिए ऐसा करना राजा का सबसे बड़ा धर्म होता है। उसकी यह विचारधारा उसके युग के अनुरूप थी क्योंकि यूरोप के राष्ट्रीय राज्य राजधर्म तथा नैतिकता को छोड़कर केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति में लीन थे। इसलिए मैकियावली पर इन

परिस्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ा और उन सभी परिस्थितियों का जिक्र उनके साहित्य में परिलक्षित होता है। अतः वह अपने 'युग का शिशु' था।

5. **राजतन्त्र की पुनर्स्थापना (Restoration of Monarchy)** : पुनर्जागरण काल में यूरोप में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। यूरोप में परिषदीय आन्दोलन समाप्त हो चुका था और शक्तिशाली शासकों ने अपने निरंकुश राजतन्त्र स्थापित कर लिए थे। आर्थिक परिवर्तनों ने भी निरंकुशवाद का मार्ग प्रशस्त किया। पश्चिमी यूरोप के लगभग सभी राज्यों में समान्तों के हाथ से शक्तियाँ छीनकर राजाओं ने अपने हाथों में ले ली थीं। पुरानी व्यावसायिक श्रेणियाँ निरन्तर बढ़ते व्यापार का संचालन कर पाने में असमर्थ थी, इसलिए नए व्यापारी वर्ग के उदय ने अपने व्यापार से स्थायित्व और सुरक्षा के लिए शक्तिशाली राजतन्त्रों की स्थापना में सहायता दी। इससे सामन्तवाद तथा कुलीनतन्त्र का पतन होने लगा और उसकी जगह नए व्यापारी वर्ग का प्रभुत्व बढ़ा। राजा लोगों को व्यापारियों की सहायता तथा सरंक्षण में ही देश की समृद्धि व वृद्धि नजर आने लगी और शक्तियाँ शक्तिशाली राजतन्त्रों के हाथों में केन्द्रित हो गई।

यूरोप की इन प्रचलित राजनीतिक प्रवृत्तियों से मैकियावली की विलक्षण प्रतिभा अछूती न रह सकी। उसने अपने ग्रन्थ 'The Prince' में एक ऐसे शक्तिशाली निरंकुश राजतन्त्र की कल्पना की है जो इटली को एक संगठित व शक्तिशाली राष्ट्र – राज्य के रूप में उभार सके। उसने आशा प्रकट की है कि इटली विदेशी दासता से मुक्त हो, पोप की तानाशाली समाप्त हो और इटली में शान्ति का युग प्रारम्भ हो ताकि इटली भी अन्य राष्ट्र राज्यों की तरह समृद्धि, सुख व विकास के रास्ते पर चल सके। इसलिए उसने एक ऐसे राष्ट्र की आकांक्षा व्यक्त की जो सम्पूर्ण जनता को एकता के सूत्र में बाँध सके। उसने अपने ग्रन्थ 'The Prince' में धर्म, नैतिकता और राजनीति सभी को राज्य को गौरव व शक्ति बढ़ाने के साधन मात्र माना है। उसने राज्य के विस्तार व सुरक्षा के उपाय अपने ग्रन्थों में सुझाए हैं। चर्च इस युग में वीर पुरूषों के हाथों में था और पोप की सत्ता का पतन हो चुका था। सेबाइन लिखता है – "शक्ति के रूप में पोप का लोप हो गया था और चर्च या तो ऐच्छिक समुदाय

बन गया था या राष्ट्रीय साधन का सांझेधार।" फिगिस ने भी लिखा है – "चर्च – भक्ति का स्थान नागरिक सत्ता की भक्ति ने ले लिया।" इस प्रकार शक्तिशाली निरंकुश राजतन्त्रों की पुनर्स्थापना की घटनाओं का भी मैकियावली पर व्यापक प्रभाव पड़ा और उसने अपनी रचनाओं में तत्कालीन परिस्थितियों को पूरा स्थान दिया।

इस प्रकार मैकियावली ने अपने युग में विद्यमान प्रवृतियां को अपनी रचनाओं में पूरा स्थान दिया। उसने अपने युग की घटनाओं से प्राप्त निष्कर्षों का एतिहासिक पद्धति के आधार पर पुष्टिकरण किया। उसने अपने ग्रन्थों में तत्कालीन घटनाओं को स्थान देकर अपने ऊपर पड़े प्रभाव से अपने आपको 'युग शिशु' की उपाधि से विभूषित कराया। अतः निस्संकोच कहा जा सकता है कि वह अपने युग का शिशु था।

4.6 मानव – स्वभाव की अवधारणा

मैकयावली ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'दा प्रिन्स' (The Prince) तथा डिसकोर्सेज' (Discourses) में मानव – प्रकृति तथा स्वभाव सम्बन्धी विचारों का वर्णन किया है। मैकियावली को आज भी मानव – प्रकृति की दुष्टता का प्रवक्ता माना जाता है और उनका तिरस्कार किया जाता है। उनके ग्रन्थ 'दा प्रिंस' (The Prince) में वर्णित घटनाओं की लोगों ने गलत व्याख्याएँ करके उन्हें आलोचना का पात्र बना दिया। इस ग्रन्थ में उन्होनें मानव – प्रकृति का जो चित्रण किया है वह मनुष्य का पशुओं के समान लाकर खड़ा कर देता है। जोन्स ने लिखा है – "मैकियावली अपने ग्रन्थ 'डिसकोर्सेज' में यहाँ तक कह देते हैं कि मनुष्य एकदम दुष्ट हैं और न एकदम अच्छा। इससे उनके मानव – स्वभाव के बारे में दिए गए विचारों में पेचीदगी उत्पन्न होती है। मैकियावली मानव को अपनी प्रकृति से ही पापी एवं अनैतिक प्राणी स्वीकार करता है।

वह काल्विन और हॉब्स की तरह 'मानव का स्वभाव बुनियादी तौर पर सच्चा होता है' को स्वीकार नहीं करता। उसका विचार था कि मनुष्य कमजोरियों, मूर्खता और दुष्टता का एक विचित्र मिश्रण है और उसे धोखे में रखा जाना चाहिए और उस पर

शासन किया जाना चाहिए। उसका मानना था कि मनुष्य विवेकहीन होते हैं और आवेगों के वशीभूत होकर कार्य करते हैं। हॉबस की तरह उसका यह भी मानना था कि मनुष्य स्वभाव से ही दुष्ट और स्वार्थी होता है। स्वार्थ और अहम् मानव व्यवहार की दो प्रेरक शक्तियाँ हैं।। मनुष्य कृतघ्न, चंचलवृत्ति वाले, धोखेबाज, कायर और लोभी होते हैं। वे तभी अच्छा काम करते हैं जब उन्हें लाभ होता है। मनुष्यों का अच्छाई की तरफ कोई सामान्य रूझान नहीं होता। उन्हें सुधारने की बजाय भ्रष्ट जल्दी किया जा सकता है। वे बाध्य होकर ही समाज के नियमों का पालन आराम से रहने के लिए ही करते हैं। भय उनके जीवन का प्रमुख तत्त्व है जो प्यार से ज्यादा शक्तिशाली है। उसका मानना है कि प्रजा के मन में राजा का भय होना चाहिए ताकि शासन सुचारू रूप से चलता रहे। वह घृणा या अपमान की भावना जानता में पैदा करने का विरोध करता है। वह कहता है कि भय के कारण शत्रुता बढ़ती है और युद्ध होते हैं। जब मनुष्य स्वार्थी होकर दूसरे की सम्पत्ति छीनने की चेष्टा करते हैं और दूसरे सम्पत्ति छीने जाने के भय से ग्रस्त रहते हैं तो भय की भावना अधिक बढ़कर संघर्ष को जन्म देती है। धन का लोभ, ईर्ष्या और महत्त्वाकांक्षा मनुष्य के कार्यों की शक्तिशाली प्रेरक शक्तियाँ हैं। मनुष्य की संग्रह – प्रवृति उसे दूसरे के नियन्त्रण से मुक्ति पाने के लिए प्रेरित करती है और दूसरों पर अपना वर्चस्व कायम करने के लिए उकसाती है। मनुष्य की महत्त्वकांक्षाएँ कभी पूरी नहीं होतीं। उसमें अपनी वर्तमान स्थिति के प्रति सदैव असंतोष रहता है। इस कारण मनुष्य और समाज के मध्य संघर्ष होता है।

इस प्रकार मैकियावली ने शासन, स्वभाव और राज्य के सन्दर्भ में दो शक्तियों का वर्णन किया है – प्रेम और भय। मैकियावली का कहना है कि मनुष्य प्रेम के बन्धन को तो तोड़ सकता है लेकिन मानव मन भय की जंजीर को नहीं तोड़ सकता। मैकियावली कहता है कि – "बुद्धिमान राजा को भय का सहारा लेना चाहिए।" मनुष्य स्वभाव से दुष्ट व स्वार्थी होने के कारण विवश होकर ही सद्व्यवहार करते हैं। इस प्रकार वह मानव को पूर्णरूपेण स्वार्थी मानता है। इस दृष्टि से वह हॉबस

के समान है। उसके मानव स्वभाव सम्बन्धी विचारों पर ही नैतिकता, धर्म और राजनीति सम्बन्धी विचारा आधारित हैं।

मैकियावली के मानव – स्वभाव पर विचारों से निम्न विशेषताएँ उभर कर आती हैंः–

1. मनुष्य पूर्णतः आत्मकेन्द्रित, लोभी और स्वार्थी है। वह सदैव अपने हित को पूरा करने की ही सोचता है। वह सामाजिक न होकर समाज विरोधी है।
2. मैकियावली के अनुसार मनुष्य आक्रामक है। वह स्वहित साधना की आड़ में किसी प्रकार की भी अति कर सकता है। इस प्रवृत्ति के कारण समाज में सदा संघर्ष की स्थिति बनी रहती है। मैकियावली के अनुसार – "मानव प्रकृति अत्यन्त आक्रमक एवं धनपिपासु तथा धनलोलुप है। मनुष्य के पास जो कुछ है, उसे वह सुरक्षित रखना चाहता है और अधिक दावे की कोशिश करता हैं मनुष्य की इच्छा की न कोई अधिकार सीमा है और सम्पत्ति में। चूँकि प्राकृतिक वैभव सीमित है मनुष्य की इच्छा असीमित है इसलिए मनुष्य – मनुष्य में संघर्ष अराजकता का मार्ग प्रदर्शित करता है जिसका राज्य की निरंकुश शक्ति ही नियन्त्रण कर सकती है।
3. अधिकांश लोग मूर्ख व मनचले हैं। मनुष्य की भावनाएँ ही उनके हितों केा निश्चित करती हैं। जानवरों की तरह मनुष्य भावना द्वारा शासित है, युक्ति द्वारा नहीं।
4. मानव प्रकृति में दो सशक्त अंग होते है – प्रेम तथा भय। उसके अनुसार जिसमें भय उत्पन्न करने की क्षमता है। उसका प्रभाव दूसरों पर अवश्य पड़ता है। भय प्रेम से बढ़कर है। लोग प्रेम के बन्धन को तोड़ सकते हैं, भय को नहीं। शासन का प्रमुख आधार भय ही होता है।
5. धन के प्रति आकर्षण की भावना संघर्ष पैदा करती है। प्रत्येक व्यक्ति आधिकाधिक सम्पत्ति का अर्जन करना चाहता है। मैकियावली का कहना है कि – "व्यक्ति अपने पिता के हत्यारे को माफ कर सकता है, अपनी सम्पत्ति छीनने वाले को नहीं।"
6. नई वस्तुओं की चाह या इच्छा धनवान और दरिद्र दोनों में समान रूप से पाई जाती है।

7. मनुष्य स्वभाव से महत्त्वाकांक्षी होता है। वह सदैव हर वस्तु पर अपना अधिकार पाने की चेष्टा करता है। साधन सीमित होने के कारण उसका यह प्रयास असफल ही रहता है।
8. मनुष्य स्वाधीन रहने की कामना करता है। परन्तु वह अपनी स्वाधीनता कायम रखने के लिए दूसरों की स्वतन्त्रता छीनने का प्रयास करता है।

मानव स्वभाव सम्बन्धी विचारों के निष्कर्ष

मैकियावली द्वारा प्रस्तुत मानव – प्रकृति के बारे में अध्ययन के पश्चात् निम्नलिखित बातें उभर कर हमारे सामने आती हैं :–

1. **राजनीति और धर्म का पृथक्करण (Separation of Politics from Religion) :** मैकियावली के अनुसार मनुष्य जन्म से ही स्वार्थ और धर्म की अपेक्षा पाप की ओर प्रवृत है। वह विवश किए जाने पर ही बिना इच्छा के काम करता है। धर्म का समबन्ध मानव के व्यावहारिक जीवन से है, राजनीति से नहीं। मैकियावली का मानना है कि नैतिकता तथा परामर्श की भावना मनुष्य को क्रियाशील नहीं बनाती बल्कि भय तथा स्वार्थ की भावना उसे क्रियाशील बनाती है। अतः शासक को सर्वशक्ति सम्पन्न होना चाहिए ताकि प्रजा को सुरक्षा व शान्ति प्रदान कर सके। जनता शक्ति के अस्त्र को ही समझती है। नैतिकता द्वारा अराजकता की स्थिति नहीं मिटाई जा सकती। इसलिए राजनीति में नीति या धर्म का कोई महत्त्व नहीं है। इसलिए मैकियावली ने यह स्पष्ट कर दिया है कि राजनीति में नैतिकता और धर्म – गठबन्धन अव्यावहारिक और उपहासास्पद है। इसलिए मैकियावली की आधुनिक राजनीतिशास्त्र को सबसे महत्त्वपूर्ण देन राजनीति और धर्म व नैतिकता का पृथक्करण है।
2. **राज्य एक स्वाभाविक संस्था नहीं (State is not a Natural Institution) :** मैकियावली के अनुसार राज्य का उद्‌भाव एक आकस्मिक घटना है। सुरक्षा की माँग को पूरा रकने के लिए ही इसका प्रादुर्भाव हुआ। मानव एक असामाजिक, निर्बल तथा अकुशल प्राणी है। जीवन तथा सम्पत्ति सुरक्षा तथा दुसरों को आक्रमणों स बचने के लिए

शासन का उदय हुआ। राज्य – सत्ता के अभाव में मानव को सुरक्षा सम्भव नहीं है। वह अरस्तु की भाँति राज्य को स्वाभाविक संस्था नहीं मानता है। इसलिए मैकियावली के मानव स्वभाव के अध्ययन से यह बात उभरकर आती है कि राज्य एक आकस्मिक घटना है।

3. **मानव स्वभाव अपरिवर्तनीय (Unchangeable Human Nature) :** मैकियावली के अनुसार व्यक्ति में सद्‌गुण नाम की कोई वस्तु नहीं है। जिन्हें हम सामाजिक सद्‌गुण की संज्ञा देते हैं वे केवल स्वार्थ के बदले हुए रूप हैं। मनुष्य को समस्त प्रेरक संज्ञा देते हैं वे केवल स्वार्थ के बदले हुए रूप है। मनुष्य की समस्त प्रेरक शक्तियाँ स्वयं अहम्‌पूर्ण और स्वार्थपूर्ण हैं। अरस्तू, प्लेटो आदि विचारक शिक्षा को मानव – व्यवहार में परिवर्तन करने वाले तत्त्व के रूप में देखते हैं। लेकिन मैकियावली के अनुसार मानव स्वभाव की बुराइयों की शिक्षा के द्वारा नहीं मिटाया जा सकता। उन पर केवल दमन या शक्ति द्वारा ही नियन्त्रण किया जा सकता है।

4. **राज्य के उद्देश्य (Aims of the State) ::** मैकियावली के अनुसार राज्य का लक्ष्य भौतिक सम्पदा है। उसका मानना हैं – "भौतिक सम्पदा की इच्छा का मुख्यतः प्रत्येक मानवीय क्रिया के पीछे हाथ होता है।" इस प्रकार वह अरस्तू, प्लेटो तथा मध्ययुगीन विचारकों के इन विचारों का खण्डन करता है कि राज्य का उद्देश्य व्यक्ति को सद्‌गुणी बनाना है।

5. **नरेश के गुण (Qualities of Prince) :** मैकियावली ने मनुष्य को स्वार्थी, लोभी और कपटी मानते हुए उस पर नियन्त्रण के लिए निरंकुश राजा या शासक की अनिवार्यता को सिद्ध करता है। वह शासक में कठोरता, बर्बरता तथा निर्ममता जैसी विशेषताओं को आवश्यक मानता है। वह अपनी पुस्तक 'दॉ प्रिंस' में शासक के लिए कुछ आवश्यक नियमों का वर्णन करता है जिनका पालन करके शासक जनता को वश में कर सकता हे। वह भय को शासक का अनिवार्य हथियार मानता है। उसका कहना है कि जनता प्रेम की अपेक्षा भय की भाषा जल्दी समझती है। भय प्रेम से अधिक प्रभावशाली व अनुशासन का प्रमुख साधन है। लेकिन यह आवश्यक है कि

जनता शासक से भय खाए और घृणा नहीं करे। शासक को जनता की सम्पत्ति की सदैव रक्षा करनी चाहिए। उसे अराजकता की स्थिति को नष्ट करके शान्ति स्थापना का प्रयास सदैव करते रहना चाहिए। उसमें लोमड़ी जैसी चालाकी होनी चाहिए। ऐसा व्यक्ति ही प्रजा पर शासन करने योग्य है।

आलोचनाएँ (Criticism)

मैकियावली के मानव स्वभाव सम्बन्धी विचारों की निम्नलिखित आलोचनाएँ की गई है :

1. **एकपक्षीय विचार (One Sided View)** : मैकियावली भी हॉब्स की तरह मनुष्य को स्वार्थी व दुष्ट प्राणी मानता है। वह मनुष्य के सामाजिक होने के विचार का भी खण्डन करता है। सत्य तो यह है कि मनुष्य स्वार्थी होने के साथ – साथ परोपकारी भी होता है। उसमें सहयोग, त्याग, अनुशासन आदि गुण भी पाए जाते हैं। यदि वह इतना पापी और स्वार्थी है तो राज्य की कल्पना का विचार गलत है क्योंकि राज्य तो सहयोगी भावनाओं का परिणाम है। इस प्रकार उसको मानव स्वभाव पर विचार एकपक्षीय है। मनुष्य बुरे व अच्छे दोनों का मेल है। अतः मैकियावली केवल एकपक्षीय विचार का ही प्रतिपादन करके मानव स्वभाव का दोषपूर्ण चित्रण करता है।

2. **अवैज्ञानिक पद्धति (Unscientific Method)** : मैकियावली द्वारा दिया गया मानव – स्वभाव सम्बन्धी विश्लेषण अपर्याप्त है क्योंकि वह मनुष्य को केवल बुरा और स्वार्थी बताता है। वह मनुष्य के बुरा होने का कोई कारण बताने में असमर्थ है। अतः उसका विश्लेषण अवैज्ञानिक है।

3. **राज्य का आधार शक्ति नहीं इच्छा है (Will not Force is the Basis of State)** : मैकियावली शासक के लिए शक्ति को एक अनिवार्य गुण मानता है। वास्तव में सच्चाई तो यह है कि निरंकुश शासक को जनता अधिक दिनों तक सहन नहीं कर सकती। वह क्रान्ति द्वारा उसका तख्ता पलट देती है। फ्रांस व ब्रिटेन की क्रान्तियाँ, रूस की

क्रान्ति इसका प्रमुख उदारण हैं। आधुनिक प्रजातन्त्र के युग में तो जनइच्छा ही शासन का आधार होती है, शक्ति नहीं। अतः यह सिद्धान्त असंगत है।

4. **निष्कर्ष केवल स्थानीय परिस्थितियों पर आधारित है (Inferences are Drawn from Local Conditions only)** : मैकियावली के चिन्तन पर अपने युग की अमिट छाप है। उस समय इटली में व्याप्त भ्रष्टाचार उसके लिए प्रमुख उदाहरण था। उसने मानव स्वभाव का चित्रण तत्कालीन इटालियन समाज की राजनीतिक, सामाजिक व धार्मिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ही किया है। अतः उसका मानव स्वभाव का चित्रण सार्वभौमिक न होकर इटालियन समाज तक ही सीमित है।

5. **मानव का सुधार व उत्थान हो सकता है (Man is subject to Reformation and Improvement)** : मैकियावली के अनुसार मानव इतना गिरा हुआ है कि उसका सुधार नहीं किया जा सकता। उसका यह विचार सही नहीं है प्लेटो तथा अरस्तू के अनुसार मनुष्य शिक्षा द्वारा सद्गुणी बन सकता है। यदि व्यक्ति का पूर्ण सुधार सम्भव नहीं है तो भी कुछ न कुछ सुधार अवश्य किया जा सकता है।

6. **विरोधाभासी (Contradictory) :** मैकियावली एक तरफ तो मनुष्य को स्वार्थी और लोभी कहता है, दूसरी ओर वह कहता है कि मनुष्य अपने पिता के हत्यारों को माफ कर सकता है, परन्तु पैतृक सम्पति के अपहरणकर्ता को नहीं। जब व्यक्ति इतना दुष्ट व स्वार्थी है तो क्षमा जैसा गुण उसमें कहाँ से आ सकता है। दुष्टता और क्षमा परस्पर विरोधी गुण हैं। अतः मैकियावली की मानव स्वभाव सम्बन्धी धारणा परस्पर विरोधी विचारों से भरी पड़ी है।

7. **तार्किक दोष** : मैकियावली ने तत्कालीन इटालियन समाज के व्यक्तियों के स्वभाव के आधार पर समस्त मनुष्यों के सर्वकालीन स्वभाव का चित्रण किया है। अतः उसके इस सिद्धान्त में तार्किक दोष विद्यमान है।

मैकियावली के मानव स्वभाव सम्बन्धी विचारों से यह निष्कर्ष निकलता है कि उनका चिन्तन स्वयंसिद्ध सत्यों, मूल – तत्त्वों या परिकल्पना के अभाव से ग्रस्त था। वे प्रणालीबद्ध विचारक नहीं थे। उन्होंने इटली की सामाजिक, राजनीतिक वातावरण से

उत्पन्न बुराइयों को अपने विचारों में स्थान देकर अपनी अवधारणा को खड़ा किया था। वह मानव स्वभाव की दृष्ट प्रवृति का सामन्यीकरण करने की दिशा में प्रयासरत थे। यदि इनका जन्म अन्य किसी काल में हुआ होता तो उनकी मानव प्रकृति की अवधारणा का स्वरूप भिन्न होता। सत्य तो यह है कि खुले में मैकियावली की जिन नीतियों या विचारों की आलोचना की जाती हैं, गुप्त रूप से सभी राजनयिक व राजनीतिज्ञ उनका अनुसरण करते हैं, उनके मानव – स्वभाव पर विचार तत्कालीन वातावरण का सम्पूर्ण लेखा – जोखा प्रस्तुत करने में सक्षम है। उनकी इस बारे उनकी राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण देन है।

5.7 राजनीति का नैतिकता और धर्म से पृथक्करण का सिद्धान्त (Theory of Separation of Politics from Morality and Relgion)

मैकियावली की सबसे महत्त्वपूर्ण देन उनका राजनीति को धर्म व नैतिकता से अलग करने का सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त मैकियावली को आधुनिक राजनीतिक चिन्तक के रूप में प्रतिष्ठित करता हे। यह हम राजदर्शन के इतिहास का अवलोकन करते हैं तो हम यह पाते हैं कि प्राचीन यूनान में और किसी भी दार्शनिक ने यह कार्य नहीं किया। महान् यूनानी विचारक प्लेटो राजनीति को नीतिशास्त्र का एक भाग मानते थे। उनके बाद अरस्तू ने इन दोनों में भेद करने का प्रयास किया और कहा कि राजनीतिशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र राज्य है, जबकि नीतिशास्त्र का व्यक्ति का आचरण है। उन्होनें राजनीति और नीतिशास्त्र के ऊपर दो अलग – अलग ग्रन्थ लिखे। लेकिन फिर भी अरस्तू राजनीति और नीतिशास्त्र में पूर्णतः अन्तर नहीं कर सके। वे दोनों को एक सिक्के के दो पहलु मानते थे। इस तरह प्राचीन यूनानी राजनीतिक दर्शन नैतिकता पर आधारित था। इसी तरह मध्ययुग में राजनीतिक दर्शन धर्मशास्त्र पर आधारित था।

राजनीतिशास्त्र को नैतिकता व धर्म से अलग करने का पूरा श्रेय मैकियावली को ही जाता है। उसने कहा कि नैतिकता और राजनीति अलग – अलग वस्तुएँ हैं जिनके अनुसंधान – क्षेत्र भी अलग – अलग हैं। राजनीति राज्य के आरचरण से तथा नीतिशास्त्र व्यक्ति के

व्यवहार से सम्बन्धित है। व्यक्ति के सभी व्यावहारिक कार्यों के लिए राज्य है, जनता से ऊपर है। शासक समाज के सभी वर्गों के हितों का प्रतिनिधित्व करता है। अतः शासन एवं एक मामूली व्यक्ति के आचरण का मूल्यांकन करने की कसौटी भी भिन्न ही होगी। यह भेद राजनीतिक चिन्तन के लिए मैकियावली का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है।

व्यक्ति तथा शासक के आचरण के नियमों में इस भेद को अन्तिम छोर पर ही रहने दिया जा सकता है। शासक के आचरण के नियम उसकी प्रजा से अभिन्न होते हैं। यदि वह अपनी प्रजा के हितों को अपना हित नहीं मानता है तो वह सफलता नहीं पा सकेगा। राजा का मुख्य हित जनता का कल्याण है। राज्य में स्थायित्व और व्यवस्था कायम करने के लिए शासक से बढ़कर कोई नहीं है। राज्य के हित में सभी तरह का अत्याचार, विश्वासघात और पाश्विक व्यवहार न्यायसंगत होता है। यदि राज्य के हितों की रक्षा करना शासक का ध्येय है तो उसके लिए हत्या, कपट, हिंसा की छूट है। मैकियावली ने इटली की दुर्दशा को देखकर एक शक्तिशाली शासक की आवश्यकता महसूस की जो राज्य में विघटनकारी ताकतों से निपट सके। उसने देश की एकता में बाधक शक्तिशाली तत्त्व 'पोप की सर्वोच्चता' का खण्डन किया और अपनी पुस्तक 'The Prince' में शासक को अपने शासन को सुदृढत्र बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण उपदेश दिए। उन्होंने शासक को सभी अनैतिक साधनों का प्रयोग करने की छूट दी। उनके धर्म, नैतिकता व राजनीति के पृथ्क्करण का निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है :–

1. **राजनीति में साध्य ही साधन का औचित्य है (In Politics Ends Justify Means)** : मैकियावली ने 'Discourses' में लिखा है – "मैं विश्वास करता हूँ कि जब राज्य का जीवन संकट में हो तो राजाओं और गणराज्यों की रक्षा के लिए विश्वासघात तथा कृतघ्नता का प्रदर्शन करना चाहिए। उसका स्पष्ट मत था कि सांसारिक सफलता ही सबसे बड़ा साध्य है, जिसे प्राप्त करने के लिए सभी अनैतिक साधन आवश्यक हैं। साध्य की सफलता साधन को औचित्यापर्ण ठहरा सकती है। देश की सुरक्षा के लिए न्याय – अन्याय, दयापूर्ण – क्रूर, लज्जास्पद – सराहनीय का भेद छोड़ देना चाहिए। हमें वही नैतिकता जीवन की नैतिकता नहीं हो सकती। यदि किसी की

हत्या से समाज के सामान्य कल्याण में वृद्धि होती हो तो वह उचित है। राज्य की सुरक्षा के लिए शासक अपने वचन का उल्लंघन कर सकता है। उसके अनुसार – "उन वचनों का, जिन्हें आप पर बलपूर्वक थोप दिया गया है, पालन न करने में कोई अपमान नहीं है और जो वचन बरबस देने पड़ते हैं और जो सार्वजनिक हित से सरोकर रखते हैं, यदि उनमें लागू करने की शक्ति नहीं है तो उन्हें तोड़ना ही उचित है। मैकियावली ने नैतिकता को व्यक्तिगत और जन नैतिकता में बाँटकर व्यक्तिगत में शासक के दृष्टिकोण और मापदण्ड को रखा। उसने जन – नैतिकता के बारे में कहा कि जनता का कल्याण इसी में है कि वह अपने शासक की आज्ञाओं का पालन करे। उसके अनुसार शासक स्वतन्त्र है, उस पर कोई बन्धन नहीं है और न ही वह नैतिकता के बन्धन में बँधा है। अपनी शक्ति और प्रभाव के विस्तार में जो कुछ उपयुक्त हो, वह न्यायपूर्ण और नैतिक है। वह राज्य को एकीकृत करने व शक्तिशाली बनाने के लिए प्रयुक्त होने वाले साधनों की नैतिकता पर कोई ध्यान न देकर केवल उद्देश्य पूर्ति को देखता है। उसके अनुसार "राजा को तो राज्य की सुरक्षा की चिन्ता रखनी चाहिए, साधन तो हमेशा आदरणीय ही माने जाएँगे और सामान्यतः उसकी प्रशंसा की जाएगी। राजा का काम आम खाना है गुठलियाँ गिनना नहीं। इसलिए उसका उद्देश्य यहीं हो होना चाहिए कि अपने काम में नैतिक या अनैतिक साधन का प्रयोग करके सफलता प्राप्त कर ली जाए।" राजसत्ता को बनाए रखने के लिए शासक दाम, साम, दण्ड़, भेद, बेईमानी, हत्या, प्रवचना, आडम्बर, छल – कपट आदि उपायों का प्रयोग कर सकता है। यही राजा वही हैं जो शेर की तरह ताकतवर और लोमड़ी की तरह चालाक हो। साध्य की प्राप्ति हेतु नैतिकता के चक्कर में पड़ना मूर्खता है।

इस प्रकार मैकियावली का राजनीतिशास्त्र को नितिशास्त्र को निति – विज्ञान से अलग करने के सिद्धान्त का सार यही है कि अच्छा कार्य वही है जो समाज कल्याण के हित में है और सिवाय उसके कोई कसौटी नहीं है। सार्वजनिक कल्याण में वृद्धि के लिए अनैतिक कार्यों का समर्थन किया जा सकता है। अतः उपर्युक्त

विवेचन से यह स्पष्ट है कि साध्य प्राप्ति के लिए प्रयुक्त अनैतिक साधन भी उचित ठहराए जा सकते हैं यदि उनसे सार्वजनिक हित में वृद्धि होती हो तो।

2. **नैतिकता का दोहरा मानदण्ड (Double Standards of Morality)** : मैकियावली ने व्यक्ति तथा राज्य के लिए अलग – अलग मानदण्डों की व्याख्या की है। यही सिद्धान्त उनकी आलोचना का प्रमुख कारण बना। उन्होनें अत्याचार, छल–कपट, हत्या या अन्य बुरे कार्यों की छूट दी है। इनके प्रयोग से राज्य हित को बढ़ाया जा सकता है। वह इस परिणाम पर पहुँचा है कि – "राजा राज्य को बनाए रखने के लिए और उसका कार्य सुचारू रूप से चलाने का उद्देश्य रखे, उसके साधन हमेशा सम्मानपूर्वक मने जाएँगे और उन्हें सार्वजनिक स्वीकृति भी प्राप्त हो जाएगी।" वे गणतन्त्र पर भी विचार करते हैं तब भी उनके निष्कर्ष वे ही हैं जो 'The Prince' में थे। उनका कहना है – "मेरा विश्वास है कि जब राज्य के जीवन को भय है, तब उसे सुरक्षित रखने के लिए राजा तथा गणतन्त्रवादी दोनों ही विश्वास भंग करेंगे और कृतघ्नता प्रकट करेंगे।" नैतिकतावादी सभी कालों में उसकी आलोचना करते आए हैं। यदि उनके विचारों को सूक्ष्मतापूर्वक विश्लेषण करे तो यह विदित होगा कि वह न तो नैतिक थे और न अनैतिक पर सदाचार – निरपेक्ष थे। सेबाइन का विचार है – "परन्तु अधिकतर वे उतने अनैतिक नहीं हैं जितने कि सदाचार – निरपेक्ष। वे राजनीति को अन्य विचारों से अलग कर देते हैं और उसके विषय में ऐसा लिखते हैं मानों वे अपने आप में एक पूर्ण ध्यये हों।" उसी प्रकार डनिंग ने भी कहा है – "वे राजनीति में अनैतिक नहीं परन्तु सदाचार – निरपेक्ष है।" मैकियावली के कथन का सारांश यही है कि राज्य जो कुछ करता है, वह नैतिक दृष्टि से ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि व्यक्तियों के विपरीत वह नैतिक प्राणी नहीं है और जो कुछ वह करता है, वह गलत भी नहीं हो सकता। शासन कला के क्षेत्र में परिणाम ही कार्यों की कसौटी हैं। यदि परिणाम अच्छे हों तो कार्य बुरा नहीं होगा। इस प्रकार उनका नैतिकता का दोहरा मापदण्ड राजनीति को धर्म व नैतिकता से अलग करने का तीव्र प्रयास है। यहाँ उनका सिद्धान्त दोनों में पृथक्करण स्पष्ट तौर पर दर्शाता है।

3. **राजनीति और धर्म (Politics and Relitio)**: जो बात मैकियावली ने नैतिकता के लिए कही है वही बात धर्म के लिए भी कही है। धर्म अपने आप में अच्छी बात है यदि लोग धार्मिक होते और राज्य के प्रति आस्थावान होते। धर्मभीरू प्रजा शासन संचालन के लिए बहुत अनुकूल होती है। इसलिए राज्य को चाहिए कि वह जनता को अपने प्रति आस्थावान बनाने के लिए धार्मिक बनाये। लेकिन मैकियावली ने मानवीय गुण के रूप में धर्म को मान्यता नहीं दी है। उसके विचारों में यदि धर्म राज्य के मार्ग में बाधा बने तो उसे कुचल देना चाहिए। वह तभी तक उचित है जब तक वह राज्य का साधन बना रहता है। धर्म राज्य की अधीनता में है उससे ऊपर नहीं। धर्म के साथ खिलवाड़ करके राजा हमेशा प्रजा को अपने पक्ष में रख सकता है। उनका मानना है कि – "यदि राज्य की सुरक्षा को खतरा हो तो न्याय और अन्याय, दयालुता और निर्दयता पर विचार किये बिना धार्मिक मान्यताओं को रौंद देना ही उचित है।" इस प्रकार उसने धर्म व राजनीति का पृथक्करण किया है। राजनीति का दायरा शक्ति है और धर्म का आध्यात्मिक। उसने राजनीति के क्षेत्र में धर्म को अनुचित माना है। उसने मध्ययुग से चली आ रही धर्म व राजनीति के गठबन्धन की परम्परा को तोड़कर धर्म और राजनीति का पृथक्करण किया है। वह धर्म – विरोधी नहीं है और न ही नैतिकता विरोधी। इस सन्दर्भ में डनिंग का कथन है – "मैकियावली अनैतिक नहीं, नैतिकता के प्रति उदासीन है, वह धर्म विरूद्ध नहीं, बल्कि धर्म के प्रति उदासीन है।"

मैकियावली ने राजनीति को धर्म व नैतिकता से अलग क्यों किया ?

(Why did Machiavelli Separate Politics from Morality and Reglion)

मैकियावली ने राजनीति को धर्म व नैतिकता से पृथक् करने के लिए निम्नलिखित तीन कारण बताए हैं :

1. वह यूनानी दार्शनिकों की तरह मनुष्य की रक्षा और कल्याण के लिए राज्य को अत्यावश्यक, सर्वोत्तम और सर्वोच्च संगठन मानते हुए राज्य के हित को व्यक्तिगत

हितों से ऊपर मानता था। इसलिए उसने लिखा है – "जब राज्य की सुरक्षा संकट में हो तो उस पर नैतिकता के वे नियम लागू नहीं होते जो नागरिकों के व्यवहार को विनियमित करते हैं।" उसने सार्वजनिक कल्याण व जनसुरक्षा के मुद्दे पर राजा को कायम रखने के लिए सभी अनैतिक साधनों द्वारा उनको पूरा करने की छूट प्रदान की है।

2. वह यथार्थवादी विचारक था। उस समय के ईसाइयत जीवन के स्वयं पोप के जीवन के पापमय आचरण को देखकर उसने निष्कर्ष निकाला कि धार्मिक सत्ता व्यक्ति को अकर्मण्य व अन्धविश्वासी बनाती है, जिसके कारण वे परिस्थितियों का सामना करने से घबराते हैं। अतः उनका यह सिद्धान्त बनाना स्वाभाविक था कि मनुष्य को दुर्बल बनाने वाली धार्मिक सत्ता का राजनीति में कोई स्थान न हो।

3. वह शक्ति को बहुत महत्त्व देता थ। वह शक्तिशाली पुरूषों को ही वंदनीय समझता था। उसे भली – भाँति यह याद था कि किस प्रकार फ्रांस ने फलोरेंस पर कब्जा कर लिया था और पोप ने फलोरेंस में अपना धार्मिक प्रभुत्व कायम कर रखा था लेकिन वेनिस जैसा शक्तिशाली राज्य भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ पाया था, क्योंकि पोप को फ्रांस, ब्रिटेन आदि शक्तिशाली राष्ट्रों का समर्थन प्राप्त था। उसने शक्ति के महत्त्व को भली – भाँति पहचान लिया था। उसने राजा के लिए शक्ति का प्रयोग जनता को भयभीत करने को उचित ठहराया। मृत्यु के बाद मोक्ष लाभ प्राप्त करना उतना ही आवश्यक था जितना उसके लिए इस लोक में ख्याति लाभ प्राप्त करना। इसलिए उसने राजनीति को धर्म व नैतिकता से अलग रखने का विचार अपनाया।

इसके अतिरिक्त उसने सीजर बोर्जिया के साथ रहकर यह भी सीखा कि किस प्रकार इस निरंकुश शासक ने अनैतिक साधनों का प्रयोग करके इटली के एक बड़े भग में एक शक्तिशाली शासन की स्थापना की। उसके कुटनीतिक अनुभव ने भी राजनीति में धर्म व नैतिकता के सिद्धान्तों का महत्त्व स्वीकार न करने की बात सिद्धा की।

आलोचनाएँ (Criticisms)

मैकियावली का राजनीति को धर्म व नैतिकता से अलग करने का सिद्धान्त निम्न आधारों पर अमान्य प्रतीत होने लगा ओर आलोचनाओं का शिकार हुआ :

1. यह सिद्धान्त राजनीतिज्ञों द्वारा किए गए गलत कार्यों का समर्थन करता है। इसकी आड़ में इटली में भी शासक – वर्ग द्वारा जनता और अपने विरोधियों पर अत्याचार किए गए। इटली को संगठित व एकीकृत करने के नाम पर किए गए नरसंहार सर्ववदित हैं। यह राजनीतिज्ञों की काली करतूतों को पुरस्कृत करता है।
2. मैकियावली ने साध्य को साधन की अपेक्षा ज्यादा महत्त्व दिया है। महात्मा गाँधी का मानना है कि यदि साधन पवित्र है तो साध्य भी अच्छा ही होगा लेकिन मैकियावली ने इसके विपरित साध्य को साधन का औचित्य बताया है। महात्मा गाँधी ने कहा है कि "Means justify the Ends" अर्थात् "साधन ही साध्य का औचित्य है।"
3. यह सिद्धान्त सार्वजनिक हित के नाम पर राजा को व्यक्तिगत हितों को पूरा करने की खुली छूट देता है। उसका मानना है कि शासन व जनता के हित एक ही होते हैं। वास्तव में ऐसा नहीं होता। जनता व शासक के हित अलग – अलग होते हैं। यदि इनको एक ही मान लिया जाए तो शासक अपनी व्यक्तिगत सनकों तथा पूर्व धारणाओं को भी राज्य की नीतियों के नाम पर बढ़ावा दे सकता है।
4. उन्होनें धर्म व नीति की घोर उपेक्षा की है। उसने धर्म व नीति का महत्त्व न आंकने की भारी भूल की है। इसलिए डॉ० मूरे ने कहा है – "वे स्पष्टदर्शी थे पर दूरदर्शी नहीं। उन्होनें चालाकी को राजनीतिज्ञ की कला मान लेने की भूल की है।" वास्तव में धर्महीन राजनीति मृत्यु के समान होती है। आधुनिक युग में नैतिक मूल्यों पर आधारित राजनीति की माँग जोर पकड़ रही है।

उपर्युक्त त्रुटियों के बावजूद भी यह कहा जा सकता है कि मैकियावली का धर्म व नैतिकता का राजनीति से पृथक् करने का विचार तत्कालीन परिस्थितियों की माँग था। उसने इटालियन समाज को अराजकता की स्थिति से निकालने के लिए तथा पोप की इटली समाज को मजबूत बनाने में बाधा के रूप में निवारण करने के लिए अपने इस सिद्धान्त का

प्रतिपादन किया। उत्तरकालीन विचारक इस बात से सहमत हो गए कि व्यक्तियों तथा राज्य की नैतिकता एक ही नियमों में नही बँध सकती। मैकियावली के लिए इससे बढ़कर श्रद्धांजलि नहीं हो सकती कि आधुनिक युग में सभी राज्य अपने राजनयिक तथा राजनीतिक व्यवहार में उन्हीं के सिद्धान्तों पर चल रहे हैं। गांधी जी के विचार सैद्धान्तिक तौर पर ही सही हैं लेकिन व्यावहारिक पहलू से मैकियावली ही सही है। उनकी यह राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में अमूल्य देन है।

5.8 मैकियावली के शासन कला के बारे में विचार

(Machiavelli's Ideas on the Art of Government)

राजदर्शन के इतिहास में मैकियावली एक विवादास्पद विचारक रहे हैं। उनके बारे में यह मन्तव्य दिया गया है कि मैकियावली ने शासन कला (Art of Government) पर लिखा है, न कि राज्य के सिद्धान्त पर। मैकियावली को कई लेखक एक दार्शनिक की बजाए एक राजनीतिज्ञ तथा कूटनीतिज्ञ मानते हैं। यदि हम 'प्रिंस' की प्रस्तावना को पढ़ते हैं तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मैकियावली न तो स्वयं दार्शनिक होने का दावा करता है और न ही एक दार्शनिक बनना चाहता था। वह मुख्य रूप से एक यर्थावादी राजनीतिज्ञ थे। उन्होनें फलोरेन्स की राजनीति में सक्रिय भाग लिया था। उनका उद्देश्य इटली की एकीकरण करके एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उसे प्रतिष्ठित करना था। इसलिए उनकी दो प्रमुख रचनाओं में राज्य के सैद्धान्तिक पहलू पर लिखने की अपेक्षा शासन कला पर लिखा गया। अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'The Prince' में उन्होनें शासन कला पर लिखा। इसमें उसने अपने कल्पित राजकुमार को शासन कला पर उपदेश दिए हैं। इसलिए उनके इस ग्रन्थ में प्रिंस के बार में पड़कर यह लगता है कि यह राज्य सिद्धान्त पर नहीं बल्कि शासन कला पर लिखा गया सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। (A book on the Art of Government rather than on the Theory of State)। शायद यह ग्रन्थ राजा और राजकुमार के लिए लिखा गया ग्रन्थ है। उनका दूसरा प्रमुख ग्रन्थ 'Discourses' भी मुख्य रूप से शासन कला से ही सम्बन्धित है।

अन्तर केवल इतना है कि इसमें मैकियावली ने गणतन्त्रीय सरकार (Republic Government.) पर लिखा है।

उपर्युक्त मन्तव्यों से हमें यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि मैकियावली केवल शासन कला के बारे में ही लिखा है और राज्य के बारे में कोई विचार प्रस्तुत नहीं किया है। यदि ऐसा होता तो मैकियावली को राजदर्शन के इतिहास में इतना प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त नहीं होता और उसे प्रथम आधुनिक राजनीतिक दार्शनिक नहीं कहा जाता। वास्तविकता तो यह है कि मैकियावली ने नियोजित व क्रमबद्ध तरीके से राज्य के बारे में कोई सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया, फिर भी राज्य के बारे में उनके विचार बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, ये विचार पहले उनके भाषणों और लेखों में बिखरे पड़े थे। उनके परवर्ती लेखकों और अनुयायियों ने इन बिखरे हुए विचारों को एकत्रित किया और राज्य के सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत किया।

राज्य का विचार (Views on State)

मैकियावली ने राज्य को एक सर्वोच्च संस्था माना है। उसके राज्य सम्बन्धी विचारों को निम्नलिखित तरीके से समझा जा सकता है :–

राज्य की उत्पत्ति और प्रकृत्ति (Origin and Nature of State)

यद्यपि मैकियावली ने राज्य की उत्पत्ति को कोई सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं किया है तथापि उसकी मान्यताओं के अनुसार राज्य मनुष्य के अवांछित आचरणों और स्वार्थी प्रकृति का परिणाम है। वह राज्य को अरस्तू की तरह प्राकृतिक संस्था न मानकर एक मानवकृत संस्था मानता है जो मनुष्य की आवश्यकता का परिणाम है। उसके अनुसार शक्ति की चाह और स्वार्थी प्रवृति राज्य को जन्म देती है। एतएव राज्य को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए इस इच्छा और प्रवृति का हमेशा पोषण करते रहना चाहिए। राज्य अन्य सभी संस्थाओं से श्रेष्ठ है और सभी अन्य संगठन उसके अधीन ही रहने चाहिए। यद्यपि मैकियावली ने सम्प्रभुता के सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया परन्तु उसका राज्य की शक्ति का निरूपण

करने का तरीका राज्य में सम्प्रभु शक्ति को निहित मानता है। जिसका प्रयोग राजा (राजतन्त्र में) या प्रजा (गणतन्त्र) करती है। वह राज्य को लोककल्याण में वृद्धि का साधन मानता है। उसने राज्य की उत्पत्ति का आधार मनुष्य की दृष्टता और स्वार्थपरता को बताकर राज्य को अपरिहार्य संस्था बना दिया। उसने स्वीकार किया कि सर्वोत्तम कल्याण का साधन मनुष्य के लिए राज्य के अतिरिक्त कोई नहीं हो सकता। उसने कहा कि स्वस्थ राज्य वह है जो विस्तार के द्वारा तथा जनता के प्रति अपने कार्यों द्वारा हमेशा गतिशील रहता है। यदि यह गतिशीलता समाप्त हो जाए तो राज्य का भी अन्त हो जाता है। वह राज्य के उत्थान और पतन का एक लम्बा इतिहास मानता है। वह राज्य का एकता का प्रतीक मानता है। वह सामान्य हित और सार्वजनिक कल्याण की भावना के संयुक्तिकरण को राज्य की उत्पत्ति का आधार बताता है। वह परिवर्तन को राज्य के विकास का आधार मानता है।

राज्य का विस्तार (Expansion of State)

मैकियावली यह मानता है कि राज्य परिवर्तनशील है और उसके उत्थान एवं पतनका एक लम्बा इतिहास है। इस परिवर्तन का अपना निश्चित क्रम है। वह राज्य को स्वस्थ व अस्वस्थ दो भागों में बाँटकर स्वस्थ राज्य का समर्थन करता है। जो सदैव संघर्ष में लगा रहता है। वह अस्वस्थ राज्य का विरोध करता है क्योंकि इसके निवासी छोटे – छोटे स्वार्थों के लिए परस्पर संघर्षरत रहते हैं। वह रोम साम्राज्य के पतन का कारण उसकी यथास्थिति को बनाए रखना बताता है। रोमन शासकों ने उसके विस्तार का प्रयास नहीं किया। वह 'प्रिन्स' तथा 'डिसकोर्सेज' में राज्य के अधिकृत प्रदेश को निरन्तर बढ़ाते रहने की आवश्यकता पर जोर देता है। उसके सामने इटली के एकीकरण का लक्ष्य था, इसलिए उसने राज्य के विस्तार के बारे में ऐसे विचार प्रस्तुत किये।

मैकियावली के मतानुसार राज्य में क्रमशः प्रसरणशील होना चाहिए और अपनी सीमा रेखा बढ़ाकर दूसरे राज्यों को आत्मसात् करना चाहिए। इसके लिए साम, दाम, दण्ड़, भेद की कुटनीतिक नीतियों का पालन करना चाहिए। यदि राज्य अपना विस्तार नहीं करेगा तो वह

अवश्य ही पतन की ओर जाएगा। उसकी राज्य के रोग का लक्षण है, वहाँ मैकियावली के लिए राज्य का विस्तार राज्य के स्वस्थ का लक्षण है।

राज्यों का वर्गीकरण (Classification of States)

मैकियावली ने अरस्तू की तरह राज्य के 6 प्रकार बताये हैं। उसके अनुसार राजतन्त्र, वर्गतन्त्र और संवैधानिक जनतन्त्र राज्य के सही रूप हैं। निरंकुशतन्त्र, धनिकतन्त्र और जनतन्त्र भ्रष्ट रूप हैं। मैकियावली ने राज्य और सरकार के मध्य कोई अन्तर नहीं माना है। इसलिए इन्हें सरकार का स्वरूप भी माना जा सकता है। उसने राजतन्त्र और संवैधानिक जनतन्त्र या गणतन्त्र को सबसे श्रेष्ठ माना है। उसने इनके मिश्रित रूप का समर्थन किया है। उसके मिश्रित शासन प्रणाली को सर्वश्रेष्ठ बताकर उसका समर्थन किया। उसने 'Prince' में राजतन्त्र का तथा 'Discourses' में गणतन्त्रीय व्यवस्था का समर्थन किया है। उसने शासन के अन्य रूपों का घोर विरोध किया है।

कानून के शासन का महत्तव 'Importance of Rule of Law)

मैकियावली विधि के शासन को बहुत महत्त्व देता है, लेकिन उसके विचार कानून के शासन के बारे में अत्यन्त संकुचित है। वह विधि को शासक के प्रभाव का माध्यम मानता है। वह नागरिक विधि की कल्पना करता है जो शासक द्वारा बनाई जाती है। इटली में उस समय विधियाँ न होने से पूर्ण अराजकता का महौल था। यद्यपि उसने विधि का कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं किया फिर भी शासक को सर्वोच्च शक्ति में उसकी कल्पना निहित है। कानून या विधि के शासन का प्रमुख उद्देश्य समन्वय व समानता कायम करना है। वह कानून के शासन को सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च मानता है। सारी विधियाँ शासन द्वारा राज्य राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुरूप पारित की जाती है। उसके अनुसार राज्य की स्थापना से पहले विधि के शासन का अभाव था। कानून का शासन स्थापित होने पर ही अराजक व्यवस्था का अन्त हुआ और समाज की एकता के सुत्र में बाँधा गया। राज्य का संरक्षण विधि की श्रेष्ठता पर ही आधारित होता है और स्थायी शासन की अनिवार्य शर्त

कानून का शासन है। कानून के शासन का निर्माण करने के लिए एक सर्वशक्तिशाली विधि निर्माता की भी आवश्यकता होती है जो कानून के शासन की स्थापना द्वारा समाज में स्थायी शांति व समानता का गुण पैदा करता है। अतः कानून का शासन राज्य व इसके बिखरे हए अंगों के मध्य सामंजस्य और समन्वय की स्थापना करता है।

सम्प्रभुता पर विचार (View on Sovereignty)

यद्यपि मैकियावली ने इस अवधारणा का कहीं स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया है किन्तु उसने राजा की शक्तियों के बारे में जो कुछ भी लिखा है हमें उससे सम्प्रभुता का आभास होता है। वह शासक की आन्तरिक इच्छा तथा विजेता की भावना को अविभाज्य मानता है। उसके अनुसार शासक किसी भी आन्तरिक या बाह्य शक्ति के प्रति उत्तरदायी नहीं होता और न ही वह अपने कार्यों के लिए कर्त्तव्यबद्ध है। वह स्वयं परिवर्तनवादी था इसलिए उसने स्थायी या अखण्ड प्रभुसत्ता की बात नहीं की। वह सम्प्रभुता की विशेषताओं जैसे सम्प्रभुता की शाश्वता, अदेयता, संवैधानिकता आदि पर कुछ नहीं लिखा। उसकी सम्प्रभुता एकात्मक, लौकिक , धर्मनिरपेक्ष और स्वतन्त्र चेतना से युक्त है। वह अन्तराष्ट्रीय मामलों में सीमित सम्प्रभुता को स्वीकार करता है। अतः उसके सम्प्रभुता पर विचार परोक्ष है ।

मैकियावली के राज्य के बारे में इन महत्त्वपूर्ण विचारों के बारे में कुछ आलोचनाएँ भी हुई। अनेक विचारकों ने राज्य को कृत्रिम संस्था न मानकर एक स्वाभाविक माना है। उनका मानव स्वभाव का चित्रण एकांगी है और उसके विचारों का कोई वैज्ञानिक आधार भी नहीं है। उसकी राज्य सम्बन्धी धारणा साम्राज्यवाद की पोषक है और जो पाशविक शक्ति पर आधारित है। आधुनिक प्रजातन्त्र के युग में तो उनका कोई महत्त्व नहीं है। उसने कभी भी प्लेटो, अरस्तू हॉब्स की तरह नियोजित और क्रमबद्ध (Planned and Systematic) सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया। फिर भी उसके राज्य सम्बन्धी विचार शासन कला के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी देते हैं। उसका पहला ग्रन्थ 'The Prince' इटली की तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में शासन कला पर लिखा गया ग्रन्थ है। वह इसमें शासन की कला और राज्य के हितों की रक्षा के लिए शासक को कुछ उपदेश देता है।

मैकियावली के राजकुमार को उपदेश (Machiavelli's Tips to Prince)

मैकियावली ने 'The Prince' में राजकुमार या शासक को शासन कला के बारे में जो उपदेश या सुझाव दिए हैं, वे निम्नलिखित हैं :–

1. शासक का रूप उदार होना चाहिए तथा उसे अपने व्यक्तिगत आचरण को इस प्रकार ढालना चाहिए कि जनता के समक्ष दया, धार्मिकता तथा शुभचिन्तकता आदि गुणों से उदार रूप प्रकट हो परन्तु उसका मन इतना अनुशासित होना चाहिए कि आवश्यकतानुसार इन गुणों के प्रतिकूल भी आचरण करने में समर्थ हो सके।
2. मैकियावली भय तथा शक्ति को राज्य निर्माण के लिए महत्तवपूर्ण मानते हुए भी राज्य के अरितत्व के लिए विधि के शासन पर बल देता है। वह पदाधिकारियों की शक्ति दुरूप्योग रोकने के लिए वैधानिक उपचारों की व्यवस्था होने को जरूरी मानता है। उसका दर्शन मानव द्वेषी होते हुए भी उदार और वैधानिक शासन के इस पहलु के कारण हेरिंगटन जैसे संविधानवादियों की प्रशंसा का पात्र रहा है।
3. वह शासक के लिए राज्य की स्थापित संस्थाओं और परम्पराओं का सम्मान करना आवश्यक मानता है। यदि इन संस्थाओं और परम्पराओं से राज्य की सुरक्षा को खतरा हो तो उस दशा में उसमें परिवर्तन किया जा सकता है।
4. किसी भी सफल शासक को देशभक्तों, नागरिकों और सेनाओं का सहयोग लेना आवश्यक है। किराए की सेनाएँ शासक का अपमान कराती हैं। प्रिंस में उसने लिखा है – "ये अंसगठित, इच्छुक, अनुशासनहीन, अकृत, मित्रों में बहादुर परन्तु शत्रुओं में बुजदिल होते हैं। उन्हें ईश्वर से कोई भय नहीं होता और ये विश्वासपात्र नहीं होते।" वह कहता है – "दूसरों के अस्त्र या तो असफल होते हैं या अतिभार डालते हैं या बाधा पैदा करते हैं।" वह कहता है कि दूसरों के सैनिकों के साथ जीतने की अपेक्षा अपने सैनिकों के साथ हारना अच्छा है।
5. एक सफल शासक के लिए अवसरवादी होना अनिवार्य है। शासक को कोई धर्मसंकट नहीं होना चाहिए। उसका कोई स्थायी मित्र या शत्रु नहीं होता। यदि

उसका अपने मित्र के हितों से टकराव हो तो उसे अपने मित्र को शत्रु घोषित करने में देर नहीं करनी चाहिए।

6. राज्य का अस्तित्व बनाए रखने के लिए शासक को व्याघ्र–लोमड़ी नीति का पालन करना चाहिए। शासक को अपने विरूद्ध रचे गए षड्यन्त्रों को असफल बनाने तथा अपने विरोधियों का अन्त करने के लिए शेर की तरह निर्दयी तथा लोमड़ी की तरह चालाकी का प्रयोग करना चाहिए। मैकियावली के शब्दों में – "जालों (षड्यन्त्रों) को मापने के लिए नरेश को लोमड़ी और भेड़ियों को भयभीत रखने के लिए शेर होना चाहिए।"

7. मन्त्रियों के चयन में शासक को अत्याधिक सतर्कता का परिचय देना चाहिए क्योंकि उनकी योग्यता, अच्छाई और वफादारी ही शासक की योग्यता और कुशलता का प्रथम परिचय है। यदि मन्त्री लोभी और स्वार्थी हैं तो वे शासक के प्रति कभी वफादार नहीं रह सकते।

8. शासक को पाखण्डी होना चाहिए। उसे बहुरूपिया और दिखावटी भी होना चाहिए। देखने में वह कृपालु, दयालु, सत्यप्रिय और धार्मिक होना चाहिए परन्तु आवश्यकतानुसार इन गुणों के विपरीत कार्य करने की योग्यता व क्षमता भी होनी चाहिए। "शासक का लोगों की धार्मिकता, नैतिकता और भोलेपन का पूरा लाभ उठाना चाहिए।"

9. शासक को युद्ध में जीते गए राज्य की प्रजा के विश्वास तथा मित्रता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि वह विजित राज्य के कानूनों, प्रथाओं, रीति – रिवाजों, एवं धार्मिक रीति – रिवाजों में कोई परिवर्तन न करें और जनता के प्रति सद्व्यवहार एवं मित्रता की नीति का पालन करें।

10. एक अच्छे राजा के मितव्ययी होना चाहिए। राज्य के धन को भोग – विलास में खर्च नहीं करना चाहिए, परन्तु लड़ाई में लूट का माल चुपचाप अपने कोष में न रखकर उदारतापूर्वक प्रजा और सैनिकों में बाँटना चाहिए।

11. शासक को चापलूसों से सावधान रहना चाहिए। शासक को योग्य और विश्वासपात्र मन्त्रियों से ही सलाह लेनी चाहिए। उसक अनुसार – "परामर्श शासक की बुद्धिमत्ता का परिणाम होना चाहिए न कि शासक की बुद्धिमत्ता परामर्श का परिणाम हो।"
12. राज्य के कार्यों का संचालन तथा योजनाएँ आदि बनाने में परम गोपनीयता का पालन करना चाहिए। मैकियावली के अनुसार लोग उन सभी योजनाओं का जो राज्य के हित में है, अनुमोदन करेंगे यदि उनको पर्याप्त व्यवहार कौशल तथा गोपनियता से लागू किया जाए।
13. मैकियावली के अनुसार जनता के साथ समानता का व्यवहार तो होना चाहिए परन्तु आवश्यकतानुसार भेद की नीति को भी अपनाया जा सकता है। इसी प्रकार शत्रुओं को कड़े दण्ड देने चाहिए परन्तु यदि आवश्यकता पड़े तो धन का लालच देकर लोगों को नियन्त्रण में रखने का प्रयास किया जा सकता है। अतः शासकों को साम, दाम, दण्ड भेद की नीति का आवश्यकतानुसार प्रयोग करना चाहिए।
14. व्यापार, वाणिज्य का प्रोत्साहन देश की समृद्धि व उन्नति के लिए लाभदायक सिद्ध होता है। अतः राजा को इस ओर ध्यान देना चाहिए। यदि राजा वाणिज्य व्यवसाय, कृषि आदि की उपेक्षा करेगा तो देश निर्धन और अशक्त हो जाएगा।
15. मैकियावली का विचार है कि शासक को कला और साहित्य में रूचि लेनी चाहिए तथा साहित्य का संरक्षण तथा कलाकारों का सम्मान करने के गुण होने चाहिए।
16. मैकियावली का विचार है कि शासक को अपने राज्य की जनसंख्या में वृद्धि होने देनी चाहिए ताकि राज्य के लिए मात्रा में सैनिक उपलब्ध हों। वह राज्य के उत्थान व विस्तार के लिए मानव – शक्ति को विशेष महत्त्व देता है।
17. शासक को गम्भीर परिस्थितियों में निस्संकोच निर्णय लेना चाहिए। अतः उसमें दृढ़ निश्चय की क्षमता व योग्यता होनी चाहिए। शासक को साहसी, सहनशील और शानो – शौकत वाला होना चाहिए। लोग तभी शासक से घृणा करते हैं जब वह दुर्बल, बुजदिल तथा अनिश्चित होता है।

18. शासक में ऐसे गुणों का समावेश होना चाहिए कि लोग उससे भय खाएं घृणा नहीं करें। शासक को अपना यश बनाए रखने के लिए हर प्रयास करना चाहिए। जिस प्रकाश शस्त्रों की शक्ति से बाह्म आक्रमाणों से रक्षा की जा सकती है, उसी प्रकार शासक के यश तथा जन – सद्भावना के शासक आन्तरिक षड्यन्त्रों से सुरक्षित रहता है। शासक को जनता की सम्पत्ति तथा नारी जाति का सम्मान करना चाहिए।

19. मैकियावली राजा को अन्तराष्ट्रीय क्षेत्र में शक्ति संतुलन बनाए रखने की ओर बल देता है। उसे पड़ोसी राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप की नीति को अपनाना चाहिए तथा शक्ति व लालच द्वारा अपना मित्र बनाना का प्रयास करना चाहिए। साथ पड़ोसी राज्यों को आपसी सन्धि में नहीं बँधने देना चाहिए।

20. शासक को लोगों को राजनीतिक शिक्षा देने का प्रयास करना चाहिए तथा उन्हें राज्य के कार्यों में भाग लेने का मौका नहीं देना चाहिए। उसका मानना है कि व्यक्ति और राज्य के हित एक ही हैं। उसका निरंकुश राज्य स्वयं के लाभ के लिए न होकर सार्वजनिक हित के लिए है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वह एक यथार्थवादी दार्शनिक न होकर विचारक था। उसने शासन कला पर जो कुछ लिखा वह आज की शासन प्रणालियों में सर्वत्र देखने को मिलता है।

इसी तरह उनका दूसरा ग्रन्थ 'डिसकोर्सेज' (Discourses) भी गणतांत्रिक व्यवस्था में शासन कला के बारे में बताया है। मैकियावली के बारे में कहा जाता है कि उसने सरकार के दो सिद्धान्तों का वर्णन किया है – एक सिद्धान्त उन राज्यों के लिए जहाँ शान्ति और व्यवस्था है और दूसरा उनके लिए जहाँ अराजकता या भ्रष्टाचार है। अपनी प्रवृति से वह राजतन्त्र की अपेक्षा गणतन्त्रवादी अधिक था। उसका विचार था कि ऐसे राजनीतिक समुदाय के लिए जहाँ सामान्य आर्थिक समानता हो, गणतन्त्रीय सरकार सर्वाधिक उपयुक्त नहीं बल्कि एकमात्र उपयुक्त सरकार है। एक भावुक राजा की तुलना में एक गणतन्त्र सरकार अच्छी तरह से अपनी संस्थाओं और परम्पराओं के बनाये रख सकती है और बदलती हुई

परिस्थितियों के अनुसार उनमें परिवर्तन कर सकती है। यह सरकार भौतिक समृद्धि और अधिक समानता सुनिश्चित कर सकती है। क्रांति द्वारा किसी नए राज्य की स्थापना अथवा किसी भ्रष्ट राज्य में सुधार करने के लिए निरंकुश शासन लोकतन्त्र से अधिक प्रभावी है। अतः उसके अनुसार क्रान्तिकाल में निरंकुश शासन और शान्तिपूर्ण व्यवस्थित राज्यों के लिए लोकप्रिय सरकार उपयुक्त होती है। 'Discourses' में मैकियावली ने गणतन्त्रीय व्यवस्था के कुछ गुण बताए हैं –

1. गणतन्त्र में सभी लोगों को शासन में भाग लेने का अधिकार प्राप्त होता है।
2. इसमें निर्णय एक व्यक्ति की बजाय कई व्यक्ति मिल – जुलकर लेते हैं, जिसके कारण निर्णय अधिक परिपक्व और बेहतर होते हैं।
3. गणतन्त्र का समर्थन करते हुए मैकियावली कहता है कि इसमें विधि के शासन का महत्त्व होता है।

गणतन्त्र के गुणों के साथ–साथ उसके दोषों से भी मैकियावली भली–भाँति परिचित था। उसने उन दोषों के साथ–साथ उनकें निवारण के उपाय भी बताए हैं :–

1. गणतन्त्र में संकटकालीन परिस्थिति का मुकाबला करने की क्षमता नहीं होती।

2. दूसरा दोष यह है कि गणतन्त्र में अधिकारी अन्याय और भ्रष्ट होते हैं, क्योंकि उन पर किसी एक का नियन्त्रण नहीं होता। इस दोष को दुर करने के लिए वह कठोर दण्ड की व्यवस्था का सुझाव देता है।

3. तीसरा दोष गणतन्त्र में दलबन्दी का है।

इसको दूर करने के लिए प्रत्येक दल को अपने विचार रखने की स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए। मैकियावली का यह भी सुझाव है कि राज्य में संविधान और कानून लचीला होना चाहिए और सामाजिक परम्पराओ के अनुकूल होने चाहिएं। जहाँ तक हो सक राज्य में एक ही धर्म और संस्कृति के लोग होने चाहिएं।

इस तरह मैकियावली ने मुख्य रूप से अपने दोनों ग्रन्थों में शासन कला पर लिखा है। उसकी यह राजदर्शन को एक महत्त्वपूर्ण देन है। यह कहना उचित नहीं होगा कि वह केवल राजनीतिज्ञ या दार्शनिक नहीं। यद्यपि व कोई क्रमबद्ध सिद्धान्त नहीं दे सका फिर भी उसके राज्य व शासन पर विचार बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

5.9 मैकियावली : आधुनिक राजनीतिक चिन्तन के पिता के रूप में

(Machiavelli : As Father of Modern Political Thought)

मैकियावली आधुनिक राजनीति का जनक माना जाता है। वह मध्ययुग और आधुनिक युग को परस्पर जोड़ने वाली प्रमुख कड़ी है। डनिंग के अनुसार – "मैकियावली मध्ययुग और आधुनिक युग का सम्बन्ध – विच्छेद करने वाला प्रथम विचारक है।" प्रो० जोन्स ने उसे आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्तों के पिता की संज्ञा दी है। मैकियावली को आधुनिक राजनीतिक विचारधारा की शुरूआत करने का श्रेय प्राप्त है। उसने मध्ययुग की मान्यताओं और परम्पराओं की उपेक्षा करने के साथ – साथ राजनीति को नवीन व्यावहारिक रूप दिया। डनिंग के अनुसार – "यह कहना कि वह आधुनिक युग का प्रारम्भ करता है, उसी प्रकार सही है जैसे यह कहना कि वह मध्ययुग को समाप्त करता है।" उसे आधुनिक युग का पिता कहने का तात्पर्य यही है कि आधुनिक युग मैकियावली से ही प्रारम्भ होता है तथा इस युग को शुरू होते ही मध्ययुग का अन्त हो जाता है।

यद्यपि कुछ विचारक बोदां को आधुनिक युग का पिता मानते हैं क्योंकि उसने आधुनिक राष्ट्रीय राज्यों की मूल विशेषता 'सम्प्रभुता' को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया था, परन्तू मैकियावली ने सर्वप्रथम जिस व्यावहारिक राजनीति का बिगुल बजाया, वह आज भी मान्य है। परन्तु बोदां स्वयं को मध्ययुगीन प्रभाव से मुक्त नहीं कर सका। मैकियावली ने मध्ययुग से पूर्ण नाता तोड़कर नए युग की शुरूआत की। उसने मध्ययुगीन मान्यताओं जैसे सामन्तावाद, पोपतन्त्र, पवित्र रोमन साम्राज्य, दैवी कानून, परलोक की महत्ता, नैतिकता, ईश्वरीय भक्ति आदि को खण्डित करके सर्वथा नवीन विचारधारा को प्रतिष्ठित किया। आधुनिक युग की सभी मान्यताएँ उसके ग्रन्थों से विद्यमान हैं। वही एक ऐसा विचारक है

जिसने मध्ययुग का अन्त करके आधुनिक युग की शुरूआत की। वहीं सर्वप्रथम लेखक है जिसने धर्म और राजनीति का पृथक्करण करके धर्मनिरपेक्षता को जन्म दिया। उसने राज्य की श्रेष्ठता, शक्ति की राजनीति और वैज्ञानिक अध्ययन पर बल देकर राजनीति को व्यावहारिक रूप दिया। सेबाइन के अनुसार – "मैकियावली ने राज्य को वह अर्थ प्रदान किया जो आधुनिक राजनीतिक व्यवहार में राज्य के साथ जुड़ा हुआ है।" उसकी रचनाएँ में किए गए कार्यों के आधार पर निस्संकोच कहा जा सकता है कि वह 'आधुनिक युग का पिता' था। इसको निम्नलिखित आधारों पर प्रमाणित किया जा सकता है :–

1. **राजनीति और नैतिकता व धर्म के बीच पृथक्करण (Propounder Separatoin of Politics from Morality and Religion)** : मैकियावली के राजनीति को धर्म और नैतिकता से अलग करने का महत्त्वपूर्ण कार्य करके धर्मनिरपक्षता की अवधारणा का प्रतिपादन किया। उसने कहा कि व्यक्ति की नैतिकता का राज्य की नैतिकता से कोई सरोकार नहीं है। व्यक्ति की दृष्टि में घोर अनैतिक कार्य राज्य के लिए सम्माननीय हो सकते हैं। उसके अनुसार राज्य के लिए निरंकुशता, हिंसा, निर्दयता, सामूहिक हत्याएँ, आक्रमण आदि भी आवश्यक हो सकते हैं। आधुनिक राजनीति में जिन अनैतिक साधनों का प्रयोग किया जाता है, वे सभी मैकियावली के राजनीतिक शब्दकोश में पहले से ही विद्यमान हैं। उसने 'प्रिंस' में शासक को कुछ उपदेश दिए हैं जो व्यक्ति की दृष्टि में गलत हो सकते हैं, परन्तु शासन कला की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। आज भी यह माना जाता है कि राजनीति और नैतिकता एक साथ वहीं चल सकती, इसलिए उनका अलगाववाद आवश्यक है। धर्म और नैतिकता का सम्बन्ध व्यक्तिगत जीवन से है जबकि राजनीति का सार्वजनिक क्षेत्र से है। राज्य की सुरक्षा सर्वोपरि वस्तु है। उसने साध्य को साधन का औचित्य बताते हुए अनैतिक कार्यों द्वारा भी राज्य की सुरक्षा को सही ठहराया है। वह धर्म और नैतिकता को ऐसे साधन के रूप में प्रयोग करना चाहता था जो राज्य में शान्ति और व्यवस्था कायम करने में सहायक हो। उसने 'प्रिंस' में कहा है – "यदि राज्य का निर्माण करने के लिए पूरे गणराज्य के नागरिकों की हत्या करनी पड़े, लोगों से विश्वासघात करना पड़े, उनकी हत्या छल

– कपट से करनी पड़े, अपनी वायदों से दूर हटा जा सके – तो ऐसा करना सफल राजा की पहचना होगी।" इस प्रकार राजनीति को धर्म व नैतिकता से पृथ्क करने वाला प्रथम विचारक मैकियावली ही था और वह धर्मनिरपेक्ष राजनीति का जनक कहलाने का पूरा अधिकारी है।

2. **राष्ट्र राज्य की धारणा का पोषक (Supporter of Nation - State)** : मैकियावली की रचनाओं में राष्ट्रीय राज्य की अवधारणा का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। आधुनिक युग राष्ट्र – राज्यों का युग है। इटली की दुर्दशा उसके राष्ट्रवाद का आधार थी। उसने स्पेन, फ्रांस, ब्रिटेन के राष्ट्रीय राज्यों से प्रेरणा लेकर एक इटालियन राष्ट्र का स्वप्न संजोया था। उसकी यह इच्छा थी कि इटली एक सृदृढ़ राष्ट्र के रूप में एकीकृत हो। वह राष्ट्र राज्य की स्थापना के लिए सभी अधार्मिक व अनैतिक कार्यों की छूट देता है। उसने प्रादेशिकता के आधार पर इटली के एकीकरण का समर्थन किया। इस तरह उसने इटली के एकीकरण के माध्यम से आधुनिक राष्ट्रीय राज्यों के विकास का मार्ग प्रशस्त किया।

3. **यथार्थवादी राजनीति की अवधारणा (Conception of Practical Politics)** : मैकियावली ने जिस राजनीति का समर्थन किया है, वह यथार्थवादी है। उसने वर्तमान के वैभव और सत्ता के इर्द–गिर्द घूमने वाली चीजों को प्राप्त करना व्यक्ति और प्रशासक दोनों का उद्देश्य माना। उसने राष्ट्र के निर्माण के लिए सारी नैतिकताएँ दाँव पर लगा दी। उसने कहा कि राष्ट्र के व्यक्तित्व में सार्वजनिक कल्याण की भावना निहित होती है। इसलिए शक्तिशाली राष्ट्र अपने आप में बहुत बड़ी उपलब्धि है। मैक्सी के अनुसार – "मैकियावली ने आचार और राजनीति को पृथ्क करके सरकार की सफलता की आवश्यकता के अनुसार आचरण करने का सुझाव दिया, यही उसकी धृष्टता थी लेकिन यही राजनीति के लिए उसकी बहुमूल्य सेवा थी।" उसने व्यक्ति को स्वभाव से दुष्ट बताकर उसे शक्ति के प्रयोग द्वारा सीधा रखने की बात कही है। वह शक्ति का पुजारी है। आधुनिक युग शक्ति राजनीति का युग है। शासक चाहे कोई भी ढंग रचें लेकिन उनकी यथार्थवादी नीति शक्ति पर ही आधारित होती है। शासन का

प्रमुख आधार शक्ति होती है। सम्भवतः मैकियावली ही वह प्रथम विचारक है जिसने शक्ति को राज्य का आधार बताकर यर्थाथवादी होने का परिचय दिया।

4. **सम्प्रभुता का पूर्वसूचक (Fore-Runner of Sovereignty)** : यद्यपि मैकियावली ने कहीं भी इस अवधारणा का उल्लेख नहीं किया है फिर भी जिस तरीके से उसने निरंकुश सम्प्रभु का वर्णन किया है। उससे स्पष्ट हो जाता है कि वह सम्प्रभुता का पोषक है। वह राज्य को सर्वोपरि संस्था मानता है जिसके आदर्शों और निर्णयों का पालन सभी को करना होता है। उसने राज्य को एक संगठित शक्ति माना है जो हर स्थिति से सर्वोच्च है। सम्प्रभुता की सैद्धान्तिक व्याख्या आगे चलकर बोदां और हॉब्स ने की, यह मैकियावली की ही देन है।

5. **प्रथम राजनीति वैज्ञानिक (First Politcal Scientist)** : मैकियावली ने राजा के लिए जिन गुरों या सुझावों को अपनाने की सलाह दी, उन्हें इतिहास के प्रमाणों के आधार पर उचित सिद्ध करने का प्रयास भी किया। उसने राजनीति के व्यावहारिक पक्ष पर जोर दिया। वह राज्य के लिए कल्पित साध्यों में विश्वास नहीं करता था। वह राजनीति दार्शनिक नहीं, राजनीतिक यथार्थवादी था। उसने राजनीतिक चिन्तन को जो वैज्ञानिक आधार दिया वह आज भी मान्य है।

6. **मध्युगीन विचारधारा पर प्रहार (Attack on Medieval Ideas)** : मैकियावली ने अपनी रचनाओं में दैवीय कानूनों को अस्वीकार करके केवल मानवीय कानूनों के अस्तित्व को ही स्वीकार किया और राज्य को सर्वोच्चता दी। उसने निरंकुश पोपतन्त्र की कटु आलोचना की और राज्य को प्रभुत्व – सम्पन्न तथा चर्च को उसका अनुगामी बताया। उसने मध्युगीन राज्यों की एकता में बाधक सामन्तवाद का खण्डन करते हुए उसे अपने राज्य में कोई स्थान नहीं दिया। इस प्रकार उसने मध्ययुगीन विचारधाराओं का खण्डन करने की पहल की। उससे पहले किसी अन्य विचारक ने ऐसा नहीं किया। इसलिए उसे आधुनिक राजनीति का जनक कहा जाता है।

7. **राज्य के आधुनिक स्वरूप का वर्णन (Description of the Nature of Modern State)** : मैकियावली द्वारा प्रस्तुत राज्य की रूपरेखा भी आधुनिक राज्यों की रूपरेखाओं से

बहुत कुछ मिलती जुलती है। उसने इटली के सम्बन्ध में जा चित्र प्रस्तुत किया है, वह आधुनिक राज्यों के समान है। आधुनिक राज्य प्रभुसत्तासम्पन्न, धर्मनिरपेक्ष, स्वतन्त्र, अस्तित्ववान और राष्ट्रीय राज्य है। मैकियावली ने शक्ति – संवर्धन राज्य तथा प्रभुत्व विस्तार को राजा के लिए आवश्यक माना है। गैटिल के अनुसार – "वह प्रथम आधुनिक राजनीतिक विचारक था जिसने एक प्रभुसत्तासम्पन्न, ऐकिक, धर्मनिरपेक्ष, राष्ट्रीय एवं स्वतन्त्र अस्तित्ववाद राज्य की कल्पना की थी। वह प्रथम आधुनिक यथार्थवादी था जिसने बताया कि राज्य को स्वयं के लिए जीवित रहना चाहिए तथा उसको सरंक्षण और हित का उद्देश्य ध्यान में रखना चाहिए।"

8. **संघ राज्य का प्रथम उद्घोषक (First Propounder of Union State)** : मैकियावली ने इटली के लिए एक ऐसे कॉमनवेल्थ का स्वप्न देखा था जो संघीय व्यवस्था पर आधारित हो। आधुनिक युग में मैकियावली को संघीय व्यवस्था का स्वप्न ही उपयुक्त माना जाता है। वह इटली को लोकतन्त्रात्मक गणराज्य में संगठित करना चाहता था उस समय इटली पाँच राज्यों में बँटा हुआ था। मैकियावली उनका एकीकरण करके शक्तिशाली इटली राष्ट्र राज्य का निर्माण करना चाहता था। उसने 'Discourses' में जिस कॉमनवेल्थ का ज़िक किया है, वह संघ राज्य ही था।

9. **अवसरवादी राजनीति का प्रवर्तन (Propounder of Opprtunistic Politics) :** मैकियावली शुरू से अन्त तक 'Prince' में शासन कला पर लिखते हुए अवसरवादी राजनीति का ही प्रवर्तन करता है। वह शासक को शेर की तरह शक्तिशाली और लोमड़ी की तरह चालक होने की बात कहता है। आधुनिक राजनीति 'प्रभाव या प्रभावशाली'का अध्ययन है, उचित या अनुचित कार्यों का नहीं। इसलिए वह अवसरवादी है। आधुनिक युग में राजनीति व्यवहार अवसरवादिता पर ही निर्भर है। अवसर पड़ने पर राजनीतिक व्यक्ति अनैतिक कार्यों को करने से भी नहीं चूकते। अतः उसे आधुनिक राजनीति का जनक कहना सर्वथा उचित है।

10. **ऐतिहासिक पद्धति का प्रयोग (Use of Historical Method) :** मध्यकाल की धार्मिकता से परिपूर्ण और अन्धविश्वासों तथा मूढ़ताओं से भरी अध्ययन पद्धति में प्रगति और

वास्वतिकता के लिए कोई स्थान नहीं था। मैकियावली ने सर्वप्रथम अनुभव प्रधान ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति को अपनाया। उसने अपने सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए धार्मिक दृष्टान्तों का सहारा न लेकर इतिहास, तर्क एवं पर्यवेक्षण का सहारा लिया जिसमें उसका चातुर्य तथा सहजबुद्धि काम करती थी। यद्यपि दोषरहित न होने पर भी उसने एक नवीन मार्ग प्रशस्त किया जो आगे चलकर आधुनिक राजनीतिक चिन्तन में उपयोगी सिद्ध हुई। अतः मैकियावली आधुनिक राजनीति विज्ञान का जनक था।

5.10 निष्कर्ष(Conclusion):-

राजनीतिक विज्ञान के अधिकांश विद्वान मैकियावली को आधुनिक युग का जनक मानते हैं। उसे मध्ययुग का अंतिम विचारक कहा जाता है तथा आधुनिक युग का प्रथम। उसने मध्ययुगीन मान्यताओं और परम्पराओं की न केवल उपेक्षा की बल्कि उनका खंडन कर राजनीति को एक नवीन यर्थाथवादी रूप प्रदान किया। यद्यपि बोंदा पहला विचारक था जिसने राष्ट्रीय राज्यों की सम्प्रभुता को स्पष्ट तौर पर परिभाषित किया। परन्तु फिर भी मैकियावली को ही आधुनिक युग का प्रवर्तक माने जाने का कारण यही है कि उसने व्यवहारिक राजनीति पर जो विचार प्रकट किए, उनका पालन आज भी लगभग सभी राजनीतिज्ञों द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। मैकियावली ही वह प्रथम विचारक था जिसने राजनीति को नैतिकता तथा धर्म से पूर्णतः पृथक किया तथा धर्मनिरपेक्ष राज्य का विचार दिया। गार्नर के अनुसार, ''वास्तविक रूप में आधुनिक राष्ट्रीय राज्य का विचार भी मैकियावेली ने ही दिया है।'' उसने इटली राज्य के सम्बन्ध में जो चित्र प्रस्तुत किए, वह बहुत कुछ आधुनिक राज्यों के समान हैं। आधुनिक राज्य भी मैकियावली के ही राज्य के समान प्रभुसत्ता सम्पन्न, धर्म निरपेक्ष, स्वतन्त्र अस्तित्ववान तथा राष्ट्रीय राज्य हैं। मैक्सी ने कहा है – "मैकियावली ने राजनीति दर्शन को मध्ययुगीन पांडित्यपूर्ण अस्पष्टवादिता से बचाने के लिए बहुत योगदान दिया और इसलिए उसे आधुनिक युग के महान् राजनीतिक चिन्तकों में सर्वश्रेष्ठ नही ंतो प्रथम राजनीतिक चिन्तक के रूप में तो

माना ही जाना चाहिए।" आधुनिक राजनीति में व्यवहारवादी अध्ययन उसकी एक महत्त्वपूर्ण देन है और 'Prince' आधुनिक शासन कला के तरीकों का एक सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। अतः मैकियावली को आधुनिक राजदर्शन का जनक होने का गौरव प्रदान करना ही चाहिए।

5.11 शब्दावली (Keywords)–

एकाकी– एक पक्षीय

पोपतन्त्र – पोप (चर्च का पादरी) का शासन

सम्प्रभुता– बिना किसी बाहरी व आंतरिक प्रतिबन्ध के स्वतंत्र निर्णय लेने की शक्ति

सामन्तवाद– सामंतों / बड़े भू–पतियों द्वारा चलाया जाने वाला शासन

5.12 स्व–मूल्यांकन (Self Assessment)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Question)–

(1) मैकियावली के समय इटली की राजनीतिक स्थिति का वर्णन करें।

(2) नैतिकता तथा धर्म पर मैकियावली के क्या विचार हैं?

(3) मैकियावली ने मानव–स्वभाव का चित्रण किस प्रकार किया है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Question)–

(1) ''मैकियावली अपने युग का शिशु था'', व्याख्या करें।

(2) मैकियावली के द्वारा शासन कला पर किए गए विचारों का आलोचनात्मक वर्णन करें।

(3) राजनीतिक चिन्तन में मैकियावली के योगदान की व्याख्या करें।

5.13 सन्दर्भ सूची–

1. प्रभुदत्त शर्मा, राजनीतिक विचारों का इतिहास (प्लेटो से मार्क्स), कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 1967.
2. बी.एल.फाड़िया, पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास (प्लेटो से मार्क्स), साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2018.
3. जे.पी.सूद, पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का इतिहास (भाग–प्राचीन व मध्यकालीन), जे.नाथ एण्ड कंपनी, मेरठ, 2008.
4. सेबाइन, ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल थ्योरी, न्यूयार्क, 1973
5. पुखराज जैन, राजनीतिक विज्ञान के सिद्धान्त, साहित्य भवन, आगरा, 1988.
6. रघुवीर सिंह, मध्यकालीन विश्व का इतिहास, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली
7. ब्रायन आर. नेल्सन, वेस्टर्न पॉलिटिकल थॉट, वेवलैंड प्रकाशन, 1996.
8. डी. बॉशर व पी. कैली, पॉलिटिकल थिंकरसः फ्रॉम सॉकरेटिज टू द प्रेजेंट, ऑक्सफोर्ड, 2009.
9. जे.कॉलमैन, ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल थॉटः फ्रॉम एंशियट ग्रीस टू अर्ली प्रिस्टियनीटी, ऑक्सफोर्ड, 2000.
10. सी.बी.मैकफर्सन, द पॉलिटिकल थ्योरी ऑफ पसैसिव इंडिवियुलिज्मः हॉब्स टू लॉक, 1962.
11. ली. स्ट्रॉस, हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल फिलॉस्फी, शिकागो यूनिवर्सिटी प्रैस, 1987.

अध्याय – 6

थॉमस हॉब्स (Thomas Hobbes)

6.1 प्रस्तावना (Introduction).

राजनीतिक चिंतन के इतिहास में हॉब्स का नाम माण्टेस्क्यू, मैक्यावेली, रूसो जैसे दार्शनिकों की प्रथम पंक्ति में लिया जाता है। मैक्सी के शब्दों में, ''अंग्रेजी भाषा–भाषियों ने जितने भी राजनीतिक दर्शन के लेखकों को जन्म दिया है, उन सभी में कदाचित हॉब्स महानतम् हैं।'' वह पहला राजनीतिक दार्शनिक था जिसने राजनीतिक चिंतन में निरंकुशतावाद एवं धर्म निरपेक्षतावाद के लिए एक वैज्ञानिक आधार बनाया तथा भौतिक विज्ञानों में प्रयुक्त होने वाली पद्धति को दर्शन तथा राजनीतिक चिंतन का आधार देकर राजनीतिक को विज्ञान का स्वरूप दिया। थॉमस हॉब्स के राजनीति शास्त्र के क्षेत्र में सामाजिक समझौता सिद्धान्त की नवीन परम्परा को विधिवत जन्म देने तथा विकसित करने का श्रेय प्राप्त है। यद्यपि सामाजिक समझौते का विचार प्राचीन तथा मध्ययुगीन विचारकों के द्वारा भी किया गया था, परन्तु इसे एक सिद्धान्त के रूप में विकसित करने का श्रेय हॉब्स को ही प्राप्त है। हॉब्स ने यद्यपि निरंकुशतावाद के सिद्धान्त का समर्थन किया है, परन्तु साथ ही उसने व्यक्तिवाद का भी समर्थन किया है। वेपर के शब्दों में, 'राजनीतिक दर्शन के इतिहास में हॉब्स जो प्रायः निरंकुश शासनवादी माने जाते हैं, शायद सबसे अधिक व्यक्तिवादी हैं'' इसी कथन की पुष्टि मैक्सी ने अपने शब्दों में की है, ''निरंकुशतावादी होते हुए भी हॉब्स आदि से अन्त तक व्यक्तिवादी हैं।''

6.2 उद्देश्य (Objectives)–

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य होगें–

- तत्कालीन इंग्लैंड की परिस्थितियों को समझनाजिसने हॉब्स के विचारों पर प्रभाव डाला।
- हॉब्स के द्वारा मानव –स्वभाव पर दिए गए विचारों को समझना।

- राज्य की उत्पति के समझौतावादी सिद्धान्त को विस्तार से समझना।

6.3 जीवन परिचय (Bibliography)

थॉमस हॉब्स का जन्म 5 अप्रैल, 1558 को विल्टरशायर (इंग्लैण्ड) में माम्सबरी (Malmesbury) नाम स्थान पर हुआ। उस समय इंग्लैण्ड के तट पर स्पेन के आरमेड़ा के आक्रमण के भय से त्रस्त हॉब्स की माँ ने उसे समय से पूर्व ही जन्म देकर उसमें जन्मजात डर की भावना डाल दी। हॉब्स ने स्वयं कहा है कि – "हॉब्स और भय जुड़वाँ बच्चों की तरह पैदा हुए।" हॉब्स के पिता को उसके जन्म के समय ही आत्म –सुरक्षा हेतु परिवार छोड़कर इंग्लैण्ड से भाग जाना पड़ा। इसलिए हॉब्स का पालन – पोषण उसके चाचा ने किया।

हॉब्स एक विलक्षण गुणों वाला बालक था। उसने चार वर्ष की अवस्था में शिक्षा प्रारम्भ की और छः वर्ष की आयु में ही उसने ग्रीक तथा लैटिन भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करके अपनी विलक्षण बुद्धि का परिचय दिया। उसने 14 वर्ष की आयु में ही यूरीपीडीज के 'मीडिया' नाटक का यूनानी भाषा से लैटिन भाषा में अनुवाद किया। 1603 में वह ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुआ और 1608 में मात्र 20 वर्ष की आयु में स्नातक परीक्षा पास करके, इंग्लैण्ड के एक उच्च परिवार में विलियम कैवेण्डिश को पढ़ाने लगा। हॉब्स ने इस परिवार से अपना आजीवन नाता जोड़े रखा। उसने कैवेण्डिश के बौद्धिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। यही विलियम कैवेण्डिश बाद में डिवोनशॉथर का अर्ल बना। 1610 में हॉब्स को अपनी इसी शिष्य के साथ यूरोप की पहली यात्रा का अवसर प्राप्त हुआ। अपने इसी शिष्य के कारण उनकी बेकन तथा बेन जॉनसन जैसे बुद्धिजीवियों से भेंट हुई। 1637 से 1637 तक उसे यूरोप की पुनः यात्रा का अवसर प्राप्त हुआ। इस बार इटली में गैलिलियों से और पेरिस में फ्रैंच दार्शनिक डेटकार्ट से उनका परिचय हुआ। जब 1637 में वह अपनी विदेश यात्रा पूरी करके वापस इंग्लैण्ड लौटा तो उस समय इंग्लैण्ड पर गृहयुद्ध के बादल मंडरा रहे थे। अपने देश के तत्कालीन राजनीतिक वातावरण से प्रभावित होकर, उसने राजतन्त्र के समर्थन में कुछ पुस्तकों की रचना की जिन्होनें उसके जीवन की सुरक्षा को खतरा पैदा हो गया और उसे इंग्लैण्ड छोड़कर वापिस पेरिस जाना पड़ा।

एक निर्वासित व्यक्ति के रूप में वह फ्रांस में मानसिक रूप से राजनीतिक चिन्तन में व्यस्त रहा और इसी दौरान उसने दो प्रसिद्ध ग्रन्थ 'डीसीवे' (Decive 1642) तथा 'लेवियाथन' (Leviathan 1651) की रचना की, जिसमें उसने निरंकुश राजतन्त्र को सही मानते हुए सामाजिक समझौते के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इन पुस्तकों के प्रकाशित होते ही फ्रांसीसी शासक उसके विरोधी बन गए। अपने खिलाफ इसी विरोध के चलते उसे वापिस इंग्लैण्ड आना पड़ा। 1652 में इंग्लैण्ड में आने के बाद वह पुनः डिवोनशॉपर के अर्ल के परिवार के साथ रहने लगा। यहाँ उसने 'डी कारपोर' (De Corpore 1655) तथा 1959 में 'डी होमाइन' (De Homine 1658) की रचना की। 1660 में कामनवेल की समाप्ति पर जब पुनः राजतन्त्र की स्थापना हुई तो हॉब्स का शिष्य चार्ल्स द्वितीय गद्दी पर बैठा। चार्ल्स द्वितीय के सत्तारूढ़ होते ही हॉब्स के जीवन के संकट का भय तो कम हो गया लेकिन उसके अधार्मिक विचारों से मठाधीश अब भी नाराज थे। इस कारण उसकी राजनीतिक गतिविधियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और चार्ल्स द्वितीय की कृपा से उसे सजा नहीं दी गई। उसने राजा की सलाह पर अपना जीवन शांति से व्यतीत करने का संकल्प किया और वह लन्दन छोड़कर कैटसवर्थ में रहने लगा। इस दौरान वह अध्ययनरत रहा और 84 वर्ष की आयु में उसने लैटिन भाषा में अपनी आत्मकथा लिखी और 87 वर्ष की आयु में यूनान के प्राचीन कवि होमर की प्रसिद्ध पुस्तकों 'इलियड' और 'ओडिसी' का अंग्रेजी में अनुवाद करके अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया। 1679 में 91 वर्ष 10 महीने की दीर्घायु में इस महान दार्शनिक की इस संसार में जीवन यात्रा समाप्त हो गई।

6.4 समकालीन परिस्थितियाँ (Contemporary Situations)

एक प्रबुद्ध राजनीतिक विचारक के रूप में हॉब्स ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के साथ – साथ हॉब्स ने निरंकुशतावाद तथा धर्मनिरपेक्षवाद के लिए वैज्ञानिक भूमिका तैयार की थी। भौतिक विज्ञानों के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली वैज्ञानिक पद्धति को दर्शन तथा राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में प्रयुक्त कर उन्हें वैज्ञानिक रूप प्रदान करके, हॉब्स ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। हॉब्स ने राजनीतिशास्त्र के क्षेत्र में सामाजिक संविदा (समझौते) के सिद्धान्त की

नवीन परम्परा को जन्म देकर व उसे विकसित करके महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। हॉब्स ने वैज्ञानिक पद्धति की स्थापना करके राजनीतिशास्त्र को एक नया आधार प्रस्तुत किया।

हॉब्स के चिन्तन पर जिन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा वे निम्नलिखित हैं :–

1. **इंग्लैण्ड में गृह–युद्ध (Civil War in England) :** हॉब्स के युग में इंग्लैण्ड में गृहयुद्ध के कारण अराजकता का माहौल था। सर्वोच्चता को लेकर राजा और संसद में संघर्ष छिड़ा हुआ था। इस अशांत वातावरण ने हॉब्स के चिन्तन पर गहरा प्रभाव डाला। वह स्थायी शांति की स्थापना का मार्ग तलाश करना चाहता था। इस अशांत वातावरण और अराजजकता की स्थिति से निपटने के लिए हॉब्स ने मानव स्वभाव का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला कि शांति की स्थापना शक्तिशाली राजतन्त्र की स्थापना द्वारा ही संभव है। उसने निष्कर्ष निकाला कि प्रभुसत्ता को राजा और संसद में बाँटने से इस समस्या का समाधान नहीं हो सकता। इसका समाधान तो पूर्ण प्रभुसत्ता सम्पन्न राजतन्त्र में ही सम्भव है।

   गृहयुद्ध के कारणों पर विचार करते हुए हॉब्स ने प्यूरिटन मत (ईसाई धर्म की एक शाखा) की धार्मिक मान्यताओं एवं मांगों को गृहयुद्ध का प्रमुख कारण बताया है। उन्होनें सुझाव दिया कि धर्मनिरपेक्ष राजनीति की अवधारणा ही गृहयुद्ध का सच्चा और स्थायी समाधान है। इसलिए उन्होनें धर्म को राजनीति से जोड़ते हुए, धर्म को राजनीति के अधीन रखने का सुझाव दिया है।

2. **विज्ञान का विकास (Development of Science)** : हॉब्स का युग विज्ञान का युग था। इस युग में वैज्ञानिक क्रांति का सुत्रपात व विकास हो रहा था। हॉब्स विज्ञान की अनदेखी नहीं कर सकता था। वह वही युग था, जब कैप्लर, गैलिलियो, पूक्लिड तथा डेकार्टे की खोजों ने यन्त्र विज्ञान की स्थापना करके मानव विकास को प्रभावित किया था। हार्वे तथा गिलबर्ट ने शरीर विज्ञान तथा चुम्बकत्व के बारें में खोजें प्रस्तुत की। हॉब्स ने इस वैज्ञानिक विचारधारा से प्रभावित होकर राजनीतिशास्त्र में इनके प्रयोग की स्वीकृति प्रदान कर दी। उसे ऑक्सफोर्ड के मध्ययुगीन दर्शन से घृणा हो गई और स्वाभाविक रूप से उसका चिन्तन विज्ञान की ओर मुडा। हॉब्स ने वैज्ञानिक

विचारधारा से प्रभावित होकर अपने चिन्तन का आधार गैलिलियो के गति के नियमों को बनाया। उसने महसूस किया कि विज्ञान व गणित के नियमों को अन्य शास्त्रों के अध्ययन के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है। इसलिए वैज्ञानिक क्रान्ति ने हॉब्स का चिन्तन ही बदल डाला और हॉब्स के चिन्तन को नई दिशा प्रदान की।

3. **सामन्तवाद का पतन (Decline of Feudalism)** : विज्ञान के आविष्कारों के कारण समाज के परम्परागत ढाँचे का पतन होने लग गया और एक शक्तिशाली नए सामाजिक वर्ग (व्यापारी वर्ग) का उदय हुआ। इस नए सामाजिक वर्ग ने सांमतवादी व्यवस्था को चुनौती दी। हॉब्स ने इस वर्ग के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की। हॉब्स ने अपनी चिन्तन के अन्तर्गत राज्य को एक कृत्रिम संस्था और मात्र एक साधन के रूप माना। उसने व्यक्तियों की पूर्ण समानता के अधिकार को स्वीकारा। उसने एक ऐसे निरंकुश राजतन्त्र का समर्थन किया जिसमें नवीन बुर्जुआ वर्ग के विकास की पूर्ण सम्भावनाएँ हों।

महत्त्वपूर्ण रचनाएँ

वास्तव में हॉब्स ही पहला अंगेज विचारक है जिसने राजनीतिक दर्शन पर विस्तार से लिखा और अपना अमूल्य एवं महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उसने राजनीतिशास्त्र के अतिरिक्त साहित्य तथा अन्य क्षेत्रों में भी लेखन कार्य किया है। बचपन से ही वह विलक्षण प्रतिभाओं का स्वामी था। वह जीवनपर्यन्त कुछ न कुछ लिखता ही रहा। उसकी प्रमुख रचनायें निम्नलिखित हैं :–

1. **दॉ ऐलिमैंटस ऑफ लॉ (The Elements of Law 1640)** : हॉब्स ने इस ग्रंथ की रचना 1640 में की। यह हॉब्स की प्रथम दार्शनिक कृति है। इस समय इंग्लैण्ड में गृहयुद्ध चल रहा था, इसलिए 1650 तक यह पुस्तक प्रकाशित नहीं हो सकी। हॉब्स ने इस कृति में विधि तथा उसके प्रकार की विस्तारपूर्वक विवेचना की है।
2. **डीसिवे (De Cive 1642)** : हॉब्स ने इस ग्रन्थ में सम्प्रभुता के सिद्धान्त का वर्णन किया है। इस पुस्तक ने हॉब्स ने सार्वभौमिक शासक की आवश्यकता पर जोर दिया है।

उन्होंने इस पुस्तक में सम्प्रभुता को परिभाषित कर उसकी सम्पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की है।

3. **लेवियाथन (Leviathan 1651)** : यह हॉब्स की सबसे महत्त्वपूर्ण रचना है। यह ग्रन्थ चार भागों में विभाजित है। इस ग्रन्थ में निरंकुशतावादी राजतन्त्र का समर्थन किया गया है। प्रथम भाग में प्राकृत्तिक अवस्था का दूसरे भाग में राज्य की उत्पत्ति तथा सम्प्रभुता सम्बन्धी विचारों का, तृतीय व चतुर्थ भाग में राज्य एवं धर्म के बीच सम्बन्ध का उल्लेख किया गया है। इस पुस्तक में हॉब्स की वैचारिक प्रौढ़ता एवं परिपक्वता का निर्वाह अन्य ग्रन्थों की तुलना में अधिक हुआ है।

4. **डी कारपोरे (De Carpore 1655)** : इस ग्रन्थ में हॉब्स ने प्रकृति की विवेचना करते हुए यह भी स्पष्ट किया है कि जनता को सम्प्रभु शासक का विरोध क्यों नही करना चाहिए। हॉब्स ने इस ग्रन्थ में सार्वभौम धार्मिक सहिष्णुता का वर्णन करते हुए यह स्पष्ट किया है कि प्रजा का अधिकार है कि वह अपनी इच्छानुसार अपने धर्म के मार्ग पर चलती रहे और अपने सम्प्रभु का सम्मान करती रहे।

5. **डी होमाइन (De Homine 1658)**

6. **बिहेमोथ (Behemoth 1668)** : इस पुस्तक में हॉब्स ने गृहयुद्ध के कारण ओर प्रसरण की आलोचनात्मक समीक्षा की है।

6.5 अध्ययन की पद्धति : वैज्ञानिक भौतिकवाद (Method of Study : Scientific Materialism)

हॉब्स के युग में राजनीतिक विचार विवाद का प्रमुख विषय बने हुए थे। हॉब्स ने अपने विचारों को सुनिश्चित कर ऐसा निर्विवादित रूप प्रदान किया जो सर्वमान्य हो। हॉब्स प्रथम आधुनिक दार्शनिक है जिसने राजनीतिक सिद्धान्त को वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। उसने अपने समय में प्रचलित ऐतिहासिक तथा धर्मवादी पद्धतियों से हटाकर वैज्ञानिक भौतिकवाद तथा सहायता के रूप में भौतिक मानोविज्ञान पद्धति को स्वीकार किया। हॉब्स का राजनीतिक दर्शन वैज्ञानिक भौतिकवाद पर आधारित उसके सामान्य दर्शन का ही अंग है। हॉब्स ने सम्पूर्ण सृष्टि की भौतिकवादी प्रकृति को स्पष्ट रूप

में प्रकट करते हुए मानव प्रकृति की भी व्याख्या की। उसने अपने राजनीतिक दर्शन का निर्माण करते समय प्रकृति के समस्त तथ्यों सहित मानव आचरण के व्यक्तिगत व सामाजिक दोनों पक्षों पर विचार किया है। हॉब्स ने विशुद्ध प्राकृतिक विज्ञानों के धरातल पर मनोविज्ञान तथा राजनीति को प्रतिष्ठित करने पर बल दिया। यह पद्धति हॉब्स के राजनीतिक दर्शन की आधारशिला है।

हॉब्स का वैज्ञानिक भौतिकवाद वस्तुतः दो पद्धतियों का सम्मिश्रण है। वैज्ञानिक शब्द का अर्थ कार्य – कारण सम्बन्ध तथा व्यवस्था एवं निष्कर्ष निकालने की प्रवृति है। हॉब्स ने अपने दर्शन का निर्माण इन्हीं आधारों पर किया है। वह मानव स्वभाव तथा उसके चरित्र का पूर्ण अध्ययन करके इस परिणाम पर पहुँचता है कि मानव व्यवहार तथा कार्यों को नियन्त्रित करने में राज्य को कैसा होना चाहिए। हॉब्स ने स्पष्ट किया है कि मनुष्य का स्वभाव एक मूल नियम से अनुशासित होता है और राजनीति में भी यही नियम कार्य करता है। हॉब्स का मानना है कि सामाजिक समझौते द्वारा राज्य की उत्पत्ति हुई परन्तु इसके पूर्व वह एक प्राकृतिक अवस्था का चित्रण भी करता है जिसके पश्चात् नागरिक समाज का निर्माण आवश्यक हुआ। इस प्रकार हॉब्स ने व्यवस्थित आधार पर सर्वप्रथम मानव स्वभाव का विश्लेषण कर प्राकृतिक कानून, उसके बाद प्राकृतिक अवस्था तथा अन्त में समझौते द्वारा राज्य निर्माण की बात कही है।

भौतिकवाद का अर्थ वास्तविकता वस्तु जगत् है। वह वातावरण में विश्वास करने के साथ व्यक्ति को वातावरण पर महत्त्व देता है। उसके इस मनोविज्ञान पर आधारित विचारधारा के कारण सामाजिक समझौते एवं निरंकुश सम्प्रभुता की स्थापना होती है। हॉब्स प्रकृति अथवा पदार्थ को ही संसार मानता है। ऐसा कोई पदार्थ या प्रकृति जो अपना सार खो देता है, संसार का अंग नही बन सकता। इसलिए सभी भौतिकवादियों ने हॉब्स को पूर्णतः भौतिकवादी माना है। हॉब्स सम्पूर्ण संसार को एक यांत्रिक व्यवस्था कहता है। हॉब्स का मानना है कि इसमें घटित समस्त क्रियाएँ एक – दुसरे से सम्बन्ध रखने वाले पदार्थों की गतिशीलता के कारण घटित होती हैं। हॉब्स का विश्वास है कि मनुष्य विशाल विश्व का एक सूक्ष्म प्रतिबिम्ब है। इसलिए भौतिक जगत् की तरह मनुष्य भी एक यन्त्र है। हॉब्स के

अनुसार सामाजिक जीवन का स्वरूप भी गतिशीलता के सिद्धान्त के आधार पर ही समझाा जा सकता है। इसी आधार पर उसने सम्पूर्ण संसार को गतिशील पदार्थ या प्रकृति का परिणाम माना है। इसलिए वह पूर्ण रूप से भी भौतिकवादी है। सेबाइन के अनुसार – "हॉब्स पूर्णतः भौतिकवादी था और उसके लिए आध्यात्मिक सत्ता केवल काल्पनिक वस्तुमात्र है।"

अतः हॉब्स की सम्पूर्ण प्रणाली संसार के तीनों भाग – प्रकृति, पदार्थ और मनुष्य एवं राज्य की व्याख्या भौतिक सिद्धान्तों के आधार पर करता है। भौतिक वातावरण उसके मानव विज्ञान का आधार और आरम्भ बिन्दु है। हॉब्स के इस वैज्ञानिक भौतिकवाद की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :–

1. हॉब्स ने भौतिक मनोविज्ञान की सहायता से वैज्ञानिक भौतिकवाद के अन्तर्गत मानव स्वभाव का व्यापक विश्लेषण किया है। हॉब्स का मानना है कि मनुष्य आत्मरक्षा को सर्वाधिक महत्त्व देता है। हॉब्स के विचार में मस्तिष्क निरंतर परिष्कृत होने वाला पदार्थ है। यह कारण और परिणाम के नियमों में अनुशासित होता है। मनुष्य आत्मरक्षा का विचार सदैव अपने साथ रखता है। इसलिए वह आत्मरक्षा हेतु कुछ भी करने को तैयार रहता हैं हॉब्स ने मानव स्वभाव का विस्तारपूर्वक विश्लेषण करके निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य मूलतः स्वार्थी एवं अहंकारी है तथा उसमें भय, साहस, संघर्ष, शक्ति अर्जन की इच्छा सदैव बलवती रहती है। मनुष्य की मूल प्रकृति वैज्ञानिक सत्य तथा मानवीय नैतिकता का एकमात्र आधार है जिस पर सभी एकमत हो सकते हैं। इसी के अन्तर्गत व्यक्ति, सामाजिक, राजनीतिक मूल्यों, साध्यों एवं साधानों का निश्चय किया जाना चाहिए। तथा इसी के संदर्भ में समस्त राजनीतिक संगठनों एवं उनकी कार्यप्रणालियों व सीमाओं का निर्धारण किया जाना चाहिए। भौतिकवादी फ्रांसिस बेकन के अनुसार यांत्रिकी के नियम ही जगत् के नियम हैं। यही नियम सामाजिक परिवेश में लागू होते हैं। हॉब्स ने यह प्रमाणित करने का

प्रयास किया है कि भौतिक जगत् के यान्त्रिकी के नियम किस प्रकार सामाजिक जीवन में प्रकट होते हैं। यही हॉब्स की सबसे महत्त्वपूर्ण देन है।

2. हॉब्स ने वैज्ञानिक गैलिलियों के सिद्धान्तों को आधार बनाकर स्पष्ट किया है कि इस संसार में हर एक पदार्थ एक – दूसरे से सम्बन्धित है। किसी भी पदार्थ का संसार में स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। प्रत्येक पदार्थ की पहचान पारस्परिक सम्बन्धों के आधार पर ही होती है। इस सृष्टि का मूल तत्त्व कण है जो स्वयं में गतिशील होता है। कणों की गति में अन्तर के अनुसार ही पदार्थों में भी अन्तर होता है। एक पदार्थ के रूप परिवर्तित होते रहते हैं। सम्पूर्ण सृष्टि एक पिण्ड है। हॉब्स ने गैलिलियो का इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए, इस संसार को एक भौतिक यन्त्र जैसा माना है जो यान्त्रिक नियमों के अनुसार कार्य करता है। इस सृष्टि में सारी घटनाएँ भौतिक जगत् में निहित पारस्परिक गतियों की क्रिया – प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप होती रहती हैं।

3. हॉब्स के अनुसार व्यक्ति एक भौतिकयन्त्र है जो स्वयं पदार्थ का एक पिण्ड है। उसका संचालन भी यान्त्रिक नियमों के अनुसार ही होता है। व्यक्ति का शरीर एक संवेदनशील भौतिक मशीन है। हॉब्स व्यक्ति के शरीर की कार्यप्रणाली समझाने के लिए जीव विज्ञानी विलियम हार्वे के रक्त संचार के नियम और गैलिलियों के गति के नियमों का मिश्रण करता है। वह हृदय की विशिष्ट गति को व्यक्ति की तीव्र अभिलाषा मानता है। हॉब्स के शब्दों में – "मनुष्य अथवा हृदय सदैव अपनी विशिष्ट गति बनाये रखना चाहता है। वह सदैव जीवित रहना चाहता है।

4. प्रत्येक व्यक्ति में निरन्तर शक्तिशाली बनने की इच्छा होती है। क्योंकि व्यक्ति सदैव आत्मरक्षा के ऊपर आए संकटों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में भयभीत रहता है। आत्मरक्षा की भावना उसके स्वभाव का मूल रूप बन जाती है। जब उसके अस्तित्व का संकट पैदा होता है तो व्यक्तियों के बीच संघर्ष की भावना पैदा होती है। इस संकट से बचने के लिए व्यक्ति एकाकी जीवन व्यतीत करना उचित समझता है। आत्मरक्षा या अपने अस्तित्व को बनाये रखने की मूल प्रवृत्ति से व्यक्तियों में

सर्वसम्मति से अपने सभी प्राकृतिक अधिकार किसी एक व्यक्ति को देने की भावना जागृत होती है जिससे यह व्यक्ति समस्त व्यक्तियों के बाह्य या भौतिक सम्बन्धों का इस प्रकार नियम व नियन्त्रण करे कि प्रत्येक व्यक्ति की आत्मरक्षा पूर्णतः सुनिश्चित हो जाए अर्थात् मनुष्य को आत्मरक्षा के अधिकार की गारण्टी मिल जाए।

हॉब्स मूल प्रकृति को ही मानवीय भौतिकता का आधार मानता है। वह वैज्ञानिक भौतिकवाद को आधार बनाकर मानव की मूल प्रकृति या स्वभाव की व्यापक व्याख्या प्रस्तुत करता है। हॉब्स राज्य को एक कृत्रिम संस्था मानता है। वह सभी मनुष्यों में समानता के तथ्य को स्वीकार करता है। हॉब्स के राजदर्शन में वैज्ञानिक भौतिकवाद का केन्द्रिय स्थान है। यह वैज्ञानिक भौतिकवाद ही उसकी विचारधारा को तर्कपूर्ण एवं व्यवस्थित बनाता है। हॉब्स ने वैज्ञानिक भौतिकवाद के आधार पर ही मानव स्वभाव की व्याख्या की और प्राकृतिक अवस्था का अनमान राज्य की स्थापना हेतु सामाजिक समझौते का सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

वैज्ञानिक भौतिकवाद की दृष्टि से हॉब्स का राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में महत्त्वपूर्ण एव विवादास्पद स्थान है। हॉब्स की पुस्तक 'लेवियाथन' नास्तिकवाद एवं वैज्ञानिक भौतिकवाद के कारण घोर निन्दा का निशाना बनी। हेनरी, मोर तथा कडवर्थ जैसे दार्शनिकों, कम्बरलैण्ड जैसे धर्मशास्त्रियों तथा फिल्मर जैसे राजनतिक विचारकों ने इन सिद्धान्तों की घोर आलोचना की है।

हॉब्स से पहले राजनीतिक पद्धति की आवश्यकता के प्रति कोई चेतना नहीं थी। हॉब्स ने महसूस किया कि एक विकसित पद्धति के आभाव में राजनीति विज्ञान नही बन सकता। इसलिए उसने राजनीति शास्त्र को अन्य विज्ञानों की तरह ही विशुद्ध वैज्ञानिक आधार पर परखने का बेड़ा उठाया। उसने आधार रूप में यह स्वीकार किया कि राजनीति पद्धति भी भौतिक विज्ञान की पद्धतियों से कुछ ग्रहण कर सकती है। इसलिए हॉब्स ने वैज्ञानिक भौतिकवाद का सिद्धान्त पेश किया जो आगे चलकर राजनीतिशास्त्र के अध्ययन व पद्धति विकास में मील का पत्थर साबित हुआ। आलोचनाओं के बावजूद यह कहा जा सकता है कि हॉब्स ने सामाजिक विज्ञानों में वैज्ञानिक पद्धति का विकास करने में अपना अमूल्य समय

व श्रम लगा दिया जिसके आज हम ऋणी है। हॉब्स के विचारों की अमिट छाप देखी जा सकती है। उपयोगितावाद का आरम्भ यहीं से होता है। हॉब्स ने अपने वैज्ञानिक भौतिकवाद के दर्शन से राजनीतिक इतिहास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

सामाजिक समझौते का सिद्धान्त :राज्य की उत्पत्ति (Theory of Social Contract : Origin of State)

6.6 मानव प्रकृति की अवधारणा (Conception of Human Nature)

मानव प्रकृति की अवधारणा हॉब्स के सम्पूर्ण राजनीतिक चिन्तन का आधार है। हॉब्स ने अपनी सभी सिद्धान्त मानव स्वभाव के आधार पर ही विकसित किये हैं। हॉब्स के लिए ब्रह्माण्ड एक यन्त्र है। यह यन्त्र उन पुर्जों से बना है जो यान्त्रिक नियम के अनुसार चलते हैं। यही संचालन विश्व का सिद्धान्त है। मानव ब्रह्माण्ड का एक छोटा सा नमूना है। हॉब्स उस नियम की खोज करता है जिससे मानव – स्वभाव संचालित होता है। हॉब्स मानव मस्तिष्क को निरन्तर परिष्कृत होने वाला पदार्थ मानता है। मनुष्य एक चैतन्य प्राणी है। उसके मस्तिष्क में कुछ ऐसा नहीं हो सकता जिसकी अनुभूति न हुई हो। हॉब्स ने मानव स्वभाव का वास्तवित ज्ञान प्राप्त करने के लिए गैलिलियों के पदार्थ एवं गति के नियमों तथा विलियम हार्वे की रक्त संचार सम्बन्धी धारणा को मिश्रित कर मानव प्रकृति की व्याख्या की है। मानव पर बाह्य पदार्थों एवं पिंडो का प्रभाव, उनकी गतियों का प्रभाव ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से पड़ता है। यही गतियाँ हृदय तक पहुँच कर संवेदना का रूप ले लेती हैं। मानव हृदय गतिवान है। जब बाह्य गतियाँ मानव हृदय से मेल खाती हैं तो उस पदार्थ के प्रति मनुष्य में आकर्षण पैदा होता है और जब ये गतियाँ मेल नहीं खातीं, तो उस पदार्थ के प्रति मनुष्य में अरूचि और विरोध उत्पन्न होता है। इस प्रकार मनुष्य में सुख व दुःख दो प्रकार की अभिरूचियाँ पैदा होती हैं। वास्तविक सुख या दुःख की अनुभूति के कारण होने वाली अभिरूचि अथवा रूचि ही मौलिक इच्छा होती है। कुछ रूचि या अभिरूचियाँ मनुष्य में जन्मजात होती हैं तथा शेष बाद में उपलब्ध हो जाती हैं तथा शेष बाद मं उपलब्ध हो जाती हैं। वह अपनी रूचि की वस्तुओं को प्राप्त करना चाहता है और अरूचिकर को छोड़ना चाहता है। मानव हृदय की इन विशिष्ट गति को जीवन जीने की

तीव्र अभिलाषा कहा जाता है। हॉब्स ने इस मानव की प्रकृति का केन्द्रिय तत्त्व और लक्षण माना है। हॉब्स ने इसे सिद्ध करने के लिए मनोविज्ञान का सहारा लिया है। हॉब्स का पुस्तक 'लेवियाथन' से पूर्व 'डी कॉरपोरे पालिटिको' (De Corpare Politico) में मनुष्य की प्रकृति का वर्णन मिलता है। हॉब्स ने अपने दर्शन के अनुसार मानव की प्रकृति और स्वभाव के बारे में निम्नलिखित निष्कर्ष प्रस्तुत कियो हैं :–

1. **असुरक्षा की भावना (Feeling of Insecurity)** : प्रत्येक मनुष्य जीने की इच्छा रखता है। मनुष्य प्रत्येक परिस्थिति में अपने जीवन की रक्षा चाहता है। वह आत्मरक्षा के लिए कुछ भी करने को तैयार रहता है। उसमें आत्मरक्षा की भावना सदैव बलवान होती है और उसका सम्पूर्ण व्यवहार आत्मरक्षा के सिद्धानत से निर्देशित होता है।
2. **भय (Fear)** : प्रत्येक मनुष्य चिन्तित रहता है। यह चिंता उसमें आत्मरक्षा की भावना के कारण उत्पन्न होती है। उससे भय का जन्म होता है। भय से अविश्वास की भावना पैदा होती है। दुर्बल व्यक्ति भी समूह बनाकर शक्तिशाली का अन्त कर सकते हैं।
3. **स्वार्थ की भावना (Feeling of Selfishness)** : मनुष्य एक स्वार्थी प्राणी है। स्वार्थ की प्रबल भावना ही उसके समस्त क्रिया – कलापों का आधार होती है। वह सदैव स्वार्थ – सिद्धि में लगा रहता है। यदि कोई उसकी स्वार्थ – सिद्धि में बाधा बनता है तो उस पर राक्षस की तरह हमला बोल देता है और उसके विनाश का प्रयास करता है।
4. **अतृप्त अभिलाषाएँ (Unsatisfied Desires)** : हॉब्स के अनुसार मनुष्य अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए हमेशा बेचैन और क्रियाशील रहता है। प्रत्येक मनुष्य में अतृप्त इच्छाएँ होती हैं। इनका अन्त मनुष्य के स्वंय के अन्त के साथ ही होता है। मनुष्य सदैव शक्ति प्राप्त करने की प्रबल अभिलाषा रखता है। जब मनुष्य इन अभिलाषा को दास बन जाता हैं तो वह इस इच्छा पूर्ति के रास्ते में बाधक सभी व्यक्तियों को कुचलना चाहता है। लेकिन उसकी यह इच्छा कभी पूरी नहीं होती। वह सदैव अतृप्त ही बना रहता है।

5. **अहम्भाव (Ego)** : हॉब्स के अनुसार मनुष्य में अहम्भाव प्रबलता होती है। सारे संवेग और आवेग इस भाव से पनपते हैं और निर्देशित होते हैं। यही भाव मानव व्यवहार का आधार होता है। हॉब्स ने कहा है कि मानव स्वार्थ की भावना के कारण अहम्वादी और घमण्डी होता है। मनुष्य कभी दूसरों पर यह विश्वास नहीं करता कि वे उससे अधिक बुद्धिमान हैं। वह सदैव अपने को अधिक गुणवान समझता है। इसी भावना के कारण वह अपने को शक्तिशाली समझने लगा है और अहम्वादी बन जाता है।

6. **इच्छा और अनिच्छा (Desire and Aversion)** : हॉब्स के अनुसार मानव स्वभाव में दो विरोधी तत्त्व पाए जाते हैं – आकर्षण और विकर्षण। मनुष्य का स्वभाव है कि जो पदार्थ आकर्षक होता है। वह प्रिय लगता है और जो पदार्थ विकर्षक होता है, उससे घृणा होती है। किसी वस्तु को प्राप्त करने पर उसे प्रसन्नता, आशा और उल्लास की प्राप्ति होती है। जबकि किसी दूसरे पदार्थ को प्राप्त करने पर उसे दुःख, निराशा और विषाद मिलता है। इस प्रकार मनुष्य के सभी कार्यों और प्रयासों के मूल में विरोधी तत्त्व जैसे सुख और दुःख, आशा और निराशा, साहस और भय विद्यमान रहते हैं।

7. **दुःख – सुख (Pain and Pleasure)** : हॉब्स का मानना है कि मनुष्य सुख की इच्छा और दुःख से बचने के लिए उपाय करता है। उसका आचरण सुख और दुख के सिद्धान्त पर आधारित होता है। हॉब्स को इसी सिद्धान्त के कारण उपयोगिता दर्शन का प्रथम प्रस्तुतकर्ता माना जाता है।

8. **समानता (Equality)** : हॉब्स सभी मनुष्यों को समान मानता है। उसका मत है कि मनुष्यों की शारीरिक और मानसिक योग्यता में काफी समानता होती है। सभी मनुष्यों की मूल प्रवृति आत्म–रक्षण है और वे इसे केन्द्र बनाकर अपनी प्रतिक्रिया करते हैं। शारीरिक रूप से कमजोर व्यक्ति छल और गुटबाजी के माध्यम से शक्तिशाली मनुष्यों से अपनी रक्षा करते हैं। हॉब्स के अनुसर मानसिक शक्ति का आधार अनुभव होता है जो समय के साथ सारे मनुष्यों को लगभग समान प्राप्त होता है। हॉब्स के

अनुसार सारे मनुष्य लगभग समान होते हैं और इसी समानता के कारण इनमें आपसी संघर्ष पैदा होता है। हॉब्स लिखता है – "सामान्यतः मनुष्यों में अपना लक्ष्य प्राप्त करने की समान योग्यता होती है। इस समानता के कारण उनमें अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आशा का उदय होता है। अतः यदि दो मनुष्यों का लक्ष्य एक ही वस्तु को प्राप्त करना है तो वे एक – दूसरे के शत्रु बन जाते है। उनमें संघर्ष आरम्भ हो जाता है और वे एक– दूसरे को नष्ट करने या अपने अधीन करने का प्रयास करते हैं।

मानव स्वभाव पर विचार की आलोचनाएँ (Criticisms of Views on Human Nature)

हॉब्स के मानव स्वभाव विचारों की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की गई है :

1. यह विश्लेषण मानव स्वभाव का एकपक्षीय दृष्टिकोण ही कहा जा सकता है। हॉब्स मनुष्य को घोर स्वार्थी, कपटी, डरपोक, दंभी और झगडालू मानता है। किन्तु जहाँ एक ओर मनुष्य में पाशविक प्रवृत्तियाँ हैं, तो दूसरी ओर उसमें दया, क्षमा, प्रेम व परोपकार की भावना भी पाई जाती है। हॉब्स केवल पाश्विक प्रवृत्ति पर जोर देता है। इसलिए मानवीय सद्‌गुणों की अवहेलना के कारण यह विश्लेषण एकांगी, दोषपूर्ण और निराशावादी है।

2. हॉब्स का यह कथन एकदम सत्य नहीं है कि मानसिक दृष्टि से कमजोर व्यक्ति शारीरिक रूप से शक्तिशाली होते हैं।

3. हॉब्स ने मनुष्य के स्वभाव के चित्रण में परस्पर संघर्ष और अविश्वास की भावना को उजागर किया है। वास्तविकता तो यह है कि मनुष्य अपनी सुख – सुविधा और शान्ति सुरक्षा को दृष्टिगत रखते हुए दूसरे सभी व्यक्तियों को अपनी माँग के अनुकूल ढालने का प्रयास करता है।

4. हॉब्स का यह कहना सही नहीं है कि मनुष्य के सारे क्रिया–कलाप स्वार्थ – पूर्ति हेतु होते हैं। मनुष्य अपनी स्वार्थ – सिद्धि के साथ – साथ दूसरों की सुख –

सुविधा का भी ध्यान रखकर व्यवहार करता है। सारे मानव – व्यवहार एक समान नहीं हो सकते।

5. हॉब्स ने मनोविज्ञान के सिद्धान्तों को राजनीति विज्ञान में प्रवेश कराने का अनावश्यक प्रयास किया है। मनुष्य का सामाजिक व्यवहार राजनीतिक क्रिया–कलापों के सन्दर्भ में बदल जाता है। इसलिए राजनीतिक क्रियाकलापों के सन्दर्भ में मानव – व्यवहार एक अलग तरह का ही होता है।

हॉब्स के बारे में जॉन्स की यह उक्ति सही है – "हॉब्स की गलती उन बातों में नहीं है जिन्हें वह स्वीकार करता है, बल्कि उन बातों में है जिन्हें वह स्वीकार नहीं करता।" हॉब्स का यह कहना ठीक है कि मनुष्य स्वार्थी, अहम्वादी और संघर्षशील होता है। हॉब्स ने मनुष्य के सद्गुणों जैसे दया, क्षमा, सहानुभूति, उदारता, परोपकार आदि का समावेश नहीं करके बहुत बड़ी गलती की है। यही गलती उसकी मानव स्वभाव सम्बन्धी विचारों की आलोचना का प्रमुख व केन्द्रिय आधार है।

6.7 प्राकृतिक अवस्था की अवधारणा (Conception of State of Nature)

हॉब्स प्राकृतिक अवस्था को समाज से बाहर की अवस्था मानता है। यह अवस्था सामाजिक और राजनीतिक जीवन प्रारम्भ होने से पूर्व की अवस्था थी। हॉब्स के अनुसार समाज की प्रारम्भिक अवस्था में सही ओर गलत का भेद नहीं था, क्योंकि कानून बनाने वाली शक्ति का अभाव था। इस अवस्था में कोई सर्वोच्च शक्ति नहीं थी। किसी वस्तु पर अपना स्वामित्व दिखाना शक्ति पर आधारित था हॉब्स का मानना है कि मनुष्य के स्वार्थीपन के करण वह तीन प्रधान कामनाओं – आत्मरक्षा की भावना, लाभ की भावना तथा आत्म प्रसिद्धि की भावना सके समान रूप से प्रभावित होता है। उसमें निरन्तर शक्ति ग्रहण करने की इच्छा है। इन्हीं भावनाओं के कारण उनमें सन्देह या अविश्वास की प्रवृत्ति जागृत होती है जिसके कारण संघर्ष की स्थिति पैदा होती है। हॉब्स का मानना है कि मनुष्य में मूलतः काफी असभ्यता विद्यमान है। प्राकृतिक अवस्था में न तो समाज था और न सरकार। इस युग में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' (Might is Right) का सिद्धान्त प्रचलन में था। यह अवस्था

निरंतर भय तथा घातक मृत्यु की दशा थी जहाँ मनुष्य का जीवन एकाकी, निर्धन, घृणित, पाशविक और अल्प था। हॉब्स के अनुसार यह दशा मनुष्यों के दोषों का परिणाम न होकर उनकी प्रकृति का परिणाम थी। इस अवस्था में मानव का जीवन अत्यधिक कठिनाई से भरा हुआ था। हॉब्स प्राकृतिक अवस्था का निम्नलिखित चित्र अंकित करता है – "ऐसी अवस्था में उद्योग के लिए कोई सम्भावना नहीं है, क्योंकि उसका फल अनिश्चित है। अतः पृथ्वी पर किसी प्रकार की सभ्यता का होना सम्भव नहीं है। किसी प्रकार की जहाजरानी नहीं होती और न ही किसी प्रकार की चीजें समुद्री मार्ग से मंगाई जा सकती हैं। कोई आरामदायक भवन नहीं है तथा न ही भारी वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता है। पृथ्वी तल का कोई ज्ञान नहीं है, समय की गणना करना समीव नहीं है, कोई कला या साहित्य या लिपि नहीं है, कोई समाज नहीं है। सबसे अधिक तो यह कि लड़ाई – झगड़े में मृत्यु होने का भय निरन्तर विद्यमान है तथा मनुष्य का जीवन एकाकी, दरिद्र, घृणित, असभ्यता से पूर्ण तथा लद्युकालीन है। इसके परिणामस्वरूप कोई अधिकार कोई राज्य, स्पष्ट रूप से कोई मेरा या तेरा नहीं है। केवल मनुष्य का वही है, वह जो प्राप्त कर सकता है जितने समय तक बलपूर्वक सुरक्षित रख सकता है। व्यक्तियों को नियन्त्रण में रखने के लिए किसी सर्वमान्य व्यक्ति के न होने के कारण निरन्तर गृहयुद्ध की सी स्थिति है जिसमें सभी सबके विरूद्ध हैं।"

हॉब्स के प्राकृतिक अवस्था सम्बन्धी विचारों का आधार उसका वैज्ञानिक भौतिकवाद है। हॉब्स की विचारधारा के अनुसार मानव प्रकृति में कुछ ऐसे दोष हैं जो मानव को असामाजिक प्राणी सिद्ध करते हैं। इस स्थिति में यदि राज्य का भय नहीं होगा तो मानव निरंकुश पशु के समान आचरण करेगा। उपर्युक्त चित्रण के आधार पर हॉब्स की प्राकृतिक अवस्था की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :–

1. **सही और गलत की धारणा का न होना (No Conception of Right and Wrong)** : हॉब्स के अनुसार समाज की प्रारम्भिक अवस्था में ठीक और गलत जैसा कोई भेद नहीं था। कानून व कानून निर्माता जैसी शक्ति समाज में नहीं थी। सहमति जैसी

अवधारणा लुप्त थी। प्रारम्भिक अवस्था में सर्वोच्च शक्ति कहीं केन्द्रित नहीं थी। अतः ऐसा कोई कानून नहीं था जो सबके लिए हो। कानून न होने की स्थिति में न्याय की कल्पना करना ही गलत है। निजी सम्पत्ति की अवधारणा व्यक्तिगत सामर्थ्य पर निर्भर थी। यह अवस्था सभ्य समाज के विपरीत थी। सरकार के न होने की स्थिति में कुछ ऐसी स्थिति होने की पूर्ण सम्भावना है। इस अवस्था में मनुष्य को गलत या सही, उचित व अनुचित, न्याय व अन्याय का कोई ज्ञान नहीं था। इस अवस्था में मनुष्य कुछ भी कर सकता था। सब कुछ मनुष्य की शारीरिक शक्ति पर निर्भर था। यह अवस्था समाज से पूर्व की अवस्था थी। अतः इस अवस्था में मनुष्य का जीवन अनैतिक और अविवेकपूर्ण था।

2. **न्याय की अनुपस्थिति (Absence of Justice)** : प्राकृतिक अवस्था में चूँकि राज्य ही नहीं था। इसलिए कानून होने का प्रश्न ही नहीं उठता। कानून के अभाव में न्याय की कल्पना ही नहीं की जा सकती। हॉब्स कहता हे कि न्याय रहित मानव जीवन कष्टपूर्ण था और मानव का जीवन तथा सम्पत्ति केवल व्यक्ति की शक्ति पर निर्भर थे। ये वस्तुएँ तब तक ही मनुष्य के पास थीं, जब तक वह पूर्ण रूप से बलवान था और अन्य उसकी तुलना में कम शक्तिशाली थे।
3. **असीमित स्वतन्त्रता (Unlimited Liberty)** : प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य की स्वतन्त्रता निर्बाध थी और वह पूर्ण स्वतन्त्रता का उपभोग करता था। मनुष्यों में सहमति कायम करने वाली कोई सर्वोच्च सत्ता नहीं थी। इसके अभाव में एक – दूसरे को बाँधकर रखना मुश्किल कार्य था। अतः कोई किसी के अधीन नहीं था। इस युग में पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रचलन था। व्यक्ति स्वतन्त्रता का पूर्ण आनन्द उठाता था।
4. **निरन्तर तनाव, संघर्ष, अराजकता तथा युद्ध की स्थिति (Situation of Continuous tension, Conflict, Anarchy and War)** : मानव स्वभाव का अध्ययन करके हॉब्स ने निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य की मूल प्रवृति आत्मरक्षा करने की है। आत्मरक्षा मानव व्यवहार का केन्द्र बिन्दु है। इस मूल प्रवृति के कारण सभी मानव आपस में स्वार्थ, अहंकार, शक्ति छल व भय से युक्त व्यवहार करने को विवश थे। इसलिए प्राकृतिक अवस्था

में मनुष्यों के बीच स्थाई तनाव, संघर्ष एवं युद्ध की स्थिति ही स्वाभाविक दशा थी। हॉब्स के अनुसार यह अवस्था – "प्रत्येक मानव की प्रत्येक मानव के साथ युद्ध की अवस्था थी। इस युद्ध में शक्तिशााली ही विजयी होते थे। ऐसी अवस्था में अराजकता व तनाव का माहौल चारों ओर था। ऐसी अवस्था में न्याय की आशा निर्मूल थी। चारों ओर 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का सिद्धान्त प्रचलन में था।

5. **व्यक्गित सम्पत्ति की अनुपस्थिति (Absence of Private Property)** : प्राकृतिक अवस्था में सब वस्तुओं पर शक्तिशाली का ही अधिकार होता था। उसक शक्तिशाली रहना ही उसके स्वामित्व का परिचायक था। जब वह निर्बल हो जाता था, तो उस सम्पत्ति से उसका अधिकार उठ जाता था और दूसरा शक्तिशाली व्यक्ति उसकी सम्पत्ति का मालिक बन जाता था। इसलिए अपने स्वामित्व को कायम रखने के लिए व्यक्ति को अपनी शक्ति कायम रखने के लिए निरन्तर संघर्ष करना पड़ता था। अतः प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य के पास निजी सम्पत्ति नहीं थी।

6. **नागरिक नैतिकता की अनुपस्थिति (Absence of Civic Morality)** : हॉब्स के अनुसार मनुष्य अपने स्वभाव से ही असामाजिक प्राणी है। राज्यविहीन अवस्था में मानव किसी भी प्रकार की नागरिक नैतिकता से अपरिचित था। उसे अच्छे या बुरे का ज्ञान नहीं था। वह स्वार्थपूर्ण व्यवहार हित की प्रधानता होने के कारण नागरिक नैतिकता का सर्वथा अभाव था। राज्य व समाज का विचार न होने के कारण सामान्य हित का अभाव था। सरकार जैसी कोई संस्था न होने के कारण व्यक्ति के कार्यों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। इस युग में व्यक्ति खुलकर स्वार्थ – सिद्धि के कार्य करता था। ऐसा करते समय व सही व गलत का कोई ध्यान नहीं रखता था, क्योंकि उसे इस बात का कोई ज्ञान नहीं था कि अनुचित क्या है तथा उचित क्या। वह सदैव स्वहित साधक बनकर कार्य करता था। इसलिए नागरिक नैतिकता का सर्वथा अभाव था।

7. **जीवन की असुरक्षा (Insecurity of Life) :** प्राकृतिक अवस्था में अविश्वास, हिंसा, संघर्ष तथा युद्ध की स्थिति निरन्तर बनी रहती थी। सभी व्यक्ति भयभीत रहते थे। कानून बनाने वाली तथा उसे लागू करने वाली संस्था का सर्वथा अभाव था। मनुष्य की

आत्मरक्षा का डर सदैव सताता था। इसलिए वह छल, कपट, धूर्तता और पाशविकता का आचरण करता था। इस अवस्था में मनुष्य का जीवन सदैव खतरे में रहता था। कमजोर को शक्तिशाली का डर सदैव लगा रहता था। इसलिए मनुष्य पूर्ण रूप से असुरक्षित था।

हॉब्स ने मनुष्य की प्राकृतिकत अवस्था की भयानक चित्रण पेश किया है जिसमें कोई अधिकार, कानून व्यवस्था, शान्ति और स्थायित्व नहीं था। प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य एक निकृष्ट प्राणी था। इस अवस्था में विवेक का अभाव था। सभी मनुष्य अपनी सुरक्षा को लेकर चिन्तित रहते थे। मनुष्यों में सम्पत्ति, सम्मान और शक्ति के लिए निरन्तर संघर्ष होता रहता था।

लेकिन हॉब्स द्वारा प्रस्तुत प्राकृतिक अवस्था को अनेक समाजशास्त्रियों और मानव – विज्ञान शास्त्रियों ने अनैतिहासिक मानते हुए इसे नागरिक समाज की परिकल्पना मात्र माना है। हॉब्स ने मनुष्य को मनोवेगों का दास माना है। लेकिन मनुष्य पूरी तरह से इच्छाओं का दास नहीं कहला सकता। हॉब्स ने मानव जीवन के एकांगी पक्ष का चित्रण करके यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि मनुष्य की प्रकृति स्वार्थपन की होती है। मनुष्य स्वहित को ही प्रधानता देता हे। हॉब्स ने मानव स्वभाव के प्रेम, दया, सहानुभूति, बलिदान, परोपकार आदि भावनाओं की अनदेखी जरूर की है। लेकिन उस समय जब मनुष्य प्राकृतिक अवस्था में रहता था तो इन भावनाओं का अभाव पाया जाना कोई अचरज की बात नहीं है। असभ्य नागरिक समाज में तो ये विशेषताएँ अवश्य मिलती हैं। हॉब्स द्वारा मानव सभ्यता के विकास के प्रारम्भिक चरण में उपर्युक्त वर्णित प्राकृतिक अवस्था का पाया जाना संभव है। जब आज के सभ्य नागरिक समाज में उस समय की प्राकृतिक अवस्था की सारी विशेषताएँ देखने को मिल सकती हैं तो हॉब्स के दर्शन को कोरी कल्पना कहना गलत है। सच्चाई चाहे जो भी हो लेकिन हॉब्स का प्राकृतिक अवस्था चित्रण सभ्य नागरिक समाज के विकास का प्रारम्भिक बिन्दु अवश्य है। उसका सम्पूर्ण दर्शन वैज्ञानिक भौतिकवाद पर आधारित होने के कारण सत्य के अधिक निकट है।

प्राकृतिक अधिकार और प्राकृतिक नियम (Natural Rights and Natural Laws)

प्राकृतिक विधि और प्राकृतिक अधिकारों के बारे में हॉब्स ने अपनी पुस्तक 'लेवियाथन' के 14 वें अध्याय में लिखा है। हॉब्स का विश्वास है कि मनुष्य दुःखदायी प्राकृतिक दशा से मुक्ति पा सकते हैं, क्योंकि मनुष्य में सिर्फ अभिलाषा ही नहीं, बल्कि भावना, कल्पना और विवेक भी होते हैं। यदि इच्छाओं के कारण मनुष्य एक – दूसरे से संघर्ष करते हैं तो भावना और कल्पना उन्हें मृत्यु के भय का पाठ पढ़ाती हैं एवं विवेक उन्हें प्राकृतिक विधि का पालन करना सिखाता है। विवेक के द्वारा मनुष्य प्राकृतिक स्थिति से निकलकर सभ्य और सामाजिक स्थिति में प्रवेश करता है। यह परिवर्तन प्राकृतिक विधियों द्वारा होता है। ये प्राकृतिक विधियाँ मानवीय व सामाजिक शांति की शर्तें हैं। ये बताती हैं कि सभ्य समाज का निर्माण कैसे हो सकता है। हॉब्स लिखता है कि – "प्राकृतिक विधियाँ प्राकृतिक नियम थी।" विवेक पर आधारित नियम प्राकृतिक विधि कहलाती है। हॉब्स इन नियमों को परिभाषित करते हुए लिखता है – "विवेक उद्‌भूत शान्ति के उपयुक्त नियमों को प्राकृतिक विधि कहा जाता है।" हॉब्स ने अपनी पुस्तकों 'लेवियाथन' तथा 'डी सिवे' में प्राकृतिक विधि को परिभाषित किया है। वह लिखता है – "प्राकृतिक विधि उचित विवेक का आदेश है। उचित विवेक उन चीजों से परिचित होता है जिन्हें जीवन की सतत रक्षा के लिए करना या छोड़ना पड़ता है।" 'लेवियाथन' में हॉब्स लिखता है – "प्राकृतिक विधि एक उपदेश अथवा सामान्य नियम है। विवेक इसे ढूँढ निकालता है। इसके द्वारा मनुष्य वह करना छोड़ देता है जो उसके जीवन के लिए विनाशकारी है या जो उसकी जीवन रक्षा के साधनों का हरण करता है।"

इस प्रकार हॉब्स ने प्राकृतिक विधियों को मनुष्य के प्राकृतिक जीवन में शान्ति स्थापना करने वाले तत्त्व के रूप में लिया है। विधियाँ प्राकृतिक अवस्था के मनुष्यों ने सुख से रहने के लिए बनाई थी। ये शान्ति धाराएँ या विवेक के आदेश हैं। ये कानून या विधि नहीं है। ये केवल नियम हैं।

हॉब्स लिखता है कि प्राकृतिक नियम वे निष्कर्ष या प्रमाण हैं जो मानव की सुरक्षा के लिए सहायक हैं जबकि कानून उस व्यक्ति के आदेश होते हैं जिसे दूसरों पर आदेश देने की शक्ति प्राप्त होती है। प्राकृतिक नियम में न तो बाध्यकारी शक्ति है, न ही दण्ड देने की शक्ति है, जब कि कानूनों में बाध्यकारी शक्ति होती है। उन्हें न मानने पर दण्ड का प्रावधान है। हॉब्स के अनुसार प्राकृतिक नियम आचरण के वे नियम हैं जिन्हें मानना या न मानना व्यक्ति की स्वेच्छा पर निर्भर करता है। हॉब्स प्राकृतिक नियम को सामाजिक नियम कहता है। इसका महत्त्व सभी द्वारा इसका पालन करने में है। यदि एक व्यक्ति समझौते या प्रतिज्ञाओं का पालन करता हो और दूसरे न करें तो वे स्वयं को नष्ट कर लेगा। इस प्रकार हॉब्स प्राकृतिक नियम व नागरिक कानून में अन्तर स्पष्ट करता है।

हॉब्स के अनुसार प्राकृतिक नियम मानव समाज और राजनीतिक समाज की तार्किक शर्तें हैं। अतः वे स्थिर और सतत हैं। उनकी स्थिरता और सततता इस बात पर निर्भर नहीं करती है कि वे नैतिक नियम हैं बल्कि इस बात पर निर्भर करती है कि वह समाज की शान्ति और व्यवस्था के लिए आवश्यक हैं। इसलिए इन नियमों में अनुरूपता, अच्छाई या सद्‌गुण हैं। हॉब्स लिखता है – "इन नियमों में अनुरूपता जितनी अधिक होगी उतना अधिक संतोष पैदा होगा।" हॉब्स इन प्राकृतिक नियमों के पालन को उपयोगिता की दृष्टि से देखता है। वह सामान्य हित में सम्प्रभु शक्ति का सुझाव देता है। वह कहता है कि प्राकृतिक नियमों को मनवाने के लिए उपयोगिता पर्याप्त नहीं।

हॉब्स लिखता है कि प्राकृतिक अधिकार वह व्यक्तिगत अधिकार है जिसके द्वारा मनुष्य उन कार्यों को करने के लिए स्वतन्त्र है जो उसके अस्तित्व के लिए आवश्यक है। यहाँ स्वतन्त्रता का अभिप्राय बाह्य रूकावटों की अनुपस्थिति से है। व्यक्ति की स्वतन्त्रता केवल वे सीमाएँ हैं जो परिस्थितियाँ लगाती हैं। जहाँ तक उसकी शक्ति है, वहाँ तक उसका पूर्ण अधिकार है। प्राकृतिक नियमों का अभिप्राय स्वतन्त्रता की अपेक्षा प्रतिरोध, बाध्यता या रूकावट है। यह वह नियम है जो उन कार्यों को करने की अनुमति नहीं देते जो मानव के अस्तित्व को बनाए रखने में प्रतिकूल हैं। इस प्रकार हॉब्स ने प्राकृतिक नियमों व प्राकृतिक

अधिकारों में स्पष्ट भेद किया है। हॉब्स के अनुसार प्राकृतिक नियम सुरक्षा एवं शान्ति के लिए बने थे। हॉब्स ने ऐसे 20 प्राकृतिक नियमों का वर्णन किया है। प्रथम तीन नियमों को हॉब्स ने बहुत महत्त्वपूर्ण बतलाया है। ये बीस नियम निम्नलिखित प्रकार से हैं –

1. प्रत्येक मनुष्य को शान्ति स्थापना के प्रयास करना चाहिए।
2. प्रत्येक व्यक्ति को शान्ति स्थापित करने के लिए तथा व्यक्तिगत सुरक्षा की दृष्टि से अपने समस्त अधिकारों का परित्याग करने के लिए तैयार रहना चाहिए बशर्ते अन्य व्यक्ति भी ऐसा करने के लिए सहमत हों।
3. व्यक्तियों को अपने समझौतों का पालन करना चाहिए

   उपर्युक्त तीनों को स्पष्ट करने के लिए हॉब्स का यह वाक्य पर्याप्त है – "दूसरों के साथ तुम वैसा ही करो जैसा अपने लिए उनसे चाहते हो।"
4. भविष्य का ध्यान रखते हुए प्रत्येक मनुष्य को उन दूसरे मनुष्यों की पिछली त्रुटियों को क्षमा कर देना चाहिए जो पश्चाताप करके क्षमा चाहते हैं।
5. प्राकृतिक रूप से प्रत्येक व्यक्ति को दूसरों को अपने समान समझना चाहिए।
6. मनुष्य को कृतघ्न नहीं होना चाहिए।
7. हर एक मनुष्य को दूसरों के साथ तालमेल स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए।
8. प्रतिशोध लेने में मनुष्य को पिछली बुराई की महत्ता को नहीं बल्कि भविष्य में उससे होने वाली अच्छाई की महत्ता देखनी चाहिए।
9. किसी भी व्यक्ति को शान्ति की शर्तों को मनवाते समय स्वयं के लिए ऐसे अधिकार सुरक्षित नहीं रखने देना चाहिए जिन्हें वह दूसरों के लिए सुरक्षित नहीं रहने देना चाहता।
10. कोई व्यक्ति अपने कार्यों, शब्दों या भावों द्वारा दूसरे के प्रति प्रतिशोध, घृणा या ईर्ष्या अभिव्यक्त न करे।
11. प्रत्येक व्यक्ति को शिष्टाचार का व्यवहार करना चाहिए।
12. गवाही को उचित महत्त्व दिया जाना चाहिए।
13. जब विवाद हो जो तो उसे निर्णय के लिए छोड़ दिया जाये।

14. मनुष्य व मनुष्य के बीच न्याय करने के लिए यदि किसी मनुष्य का विश्वास किया जाये तो उसे दोनों को समान समझना चाहिए।
15. दूसरों के लिए वह मत करो जिसे तुम अपने लिए करना पसन्द नहीं करते।
16. कोई भी व्यक्ति स्वयं अपना निर्णायक नहीं हो सकता। उसे अपना निर्णय दूसरों पर छोड़ देना चाहिए।
17. प्राकृतिक नियम के अनुसार किसी ऐसे व्यक्ति को निर्णायक नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए जिसके निर्णय से उसे कोई लाभ पहुँचता हो।
18. जिन वस्तुओं का बँटवारा नहीं किया जा सकता, उनका स्वभाव हो खुले हाथों उपयोग किया जाना चाहिए। परन्तु यह उपभोग उपभोग्य वस्तुओं की मात्रा पर आधारित है। अन्यथा जिन का अधिकार उन वस्तुओं पर है, संख्या के अनुपात में उनके बीच बँटवारा कर दिया जाये।
19. शान्ति की मध्यस्थता वाले लोगों के लिए सुरक्षा व्यवस्था होनी चाहिए।
20. जहाँ स्थिति ऐसी हो कि वस्तु न तो सामूहिक उपभोग समभव है और न ही समान बँटवारा हो सकता है तो प्राकृतिक नियम यह व्यवस्था करता है कि प्रथम प्रयोग हेतु अधिकार देने के लिए लाटरी निकाली जानी चाहिए।

उपर्युक्त बीस प्राकृतिक नियमों को हॉब्स के एक वाक्य में समेटा जा सकता है। "दूसरों से वैसा व्यवहार न करो जो आप स्वयं अपने आप से नहीं करेंगे।" अर्थात् जो कार्य हम अपने लिए अनुचित मानते हैं, दूसरों से भी ऐसी अपेक्षा रखनी चाहिए। जिस व्यवहार से हम क्षुब्ध होते हैं और हमार आत्म– सम्मान को ठेस पहुँचती हो, वैसा हम दूसरों के साथ न करें। यही हॉब्स के प्राकृतिक नियमों का सार है। प्रो० सेबाइन ने कहा है – "वे एक साथ ही दूरदर्शिता के सिद्धान्त और सामाजिक आधार के नियम हैं जो व्यक्तिगत कार्य के मनोवैज्ञानिक उद्देश्यों से आगे बढ़कर सभ्य कानून तथा नैतिकता के मूल्य तक पहुँचना सम्भव बनाते है।" हॉब्स के अनुसार प्राकृतिक नियमों को आधार बनाकर सभ्य समाज का निर्माण किया जा सकता है। प्राकृतिक नियमों की व्याख्या से उसका उद्देश्य समाज का निर्माण करना है। हॉब्स के अनुसार अपने विवेक शक्ति के आधार पर व्यक्ति यह अनुभव

करते हैं कि प्राकृतिक नियमों में वे सब तत्त्व विद्यमान हैं जो उसे युद्ध की स्थिति समाप्त करने और शासन को स्थापित करने को प्रेरित करते हैं। जैसे शान्ति स्थापित करना, सामान्य सत्ता समझौते को लागू करना, मानव समानता को स्वीकार करना आदि। हॉब्स लिखता है कि यद्यपि प्राकृतिक नियम प्राकृतिक दशा में लागू नहीं होते फिर भी वे शासन से पूर्व हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि प्राकृतिक नियमों का जन्म शासन के साथ होता है। प्राकृतिक नियम ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं जो उन्हें सार्थक बनाती हैं। जब तक मानव इस पृथ्वी पर निवास करता है तब तक मानव प्रशासन के अधीन रहना पसन्द करेगा क्योंकि हॉब्स के अनुसार प्राकृतिक नियम स्थिर और सतत हैं और वे मानव की अन्तरात्मा में निवास करते हैं।

हॉब्स पहला दार्शनिक है जो प्राकृतिक अधिकारों और प्राकृतिक नियमों में स्पष्ट अन्तर करता है। प्राकृतिक नियमों में स्पष्ट अन्तर करता है। प्राकृतिक नियमों तथा प्राकृतिक अधिकारों में मुख्य भेद निम्नलिखित हैं :–

1. प्राकृतिक अधिकार प्रत्येक कार्य को करने की स्वतन्त्रता देते हैं अर्थात् प्रत्येक वस्तु को प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करते हैं, जबकि प्राकृतिक नियम केवल उन कार्यों को करने की आज्ञा देते हैं जो जीवन सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं। ये व्यक्ति को कुछ अधिकार त्यागने के लिए कहते हैं।
2. प्राकृतिक अधिकार पशु शक्ति पर आधारित हैं विवेक पर नहीं। इन्हें शेर के अधिकार कहा जाता है, जबकि प्राकृतिक नियम विेक पर आधारित हैं जो मानव को दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करने की सलाह देते हैं जो वह स्वयं के साथ करवाना चाहता है।
3. प्राकृतिक अधिकारों का नागरिक समाज में कोई महत्त्व नहीं है, जबकि प्राकृतिक नियमों का नागरिक समाज में महत्त्व है। प्राकृतिक देशों में ही इनका महत्त्व नहीं है।
4. प्राकृतिक अधिकारों में नैतिकता का अभाव है, जबकि प्राकृतिक नियम नैतिकता पर आधारित है।

5. प्राकृतिक अधिकारों का उपयोग प्राकृतिक दशा को युद्ध की दशा बना देता है। इनका प्रयोग अराजकता की स्थिति पैदा करता है, जबकि प्राकृतिक नियमों के पालन करने से शान्ति और सुरक्षा की गारण्टी मिलती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राकृतिक अधिकार असीमित स्वतन्त्रता के तथा प्राकृतिक नियम प्रतिबन्धों की व्याख्या करते हैं। प्राकृतिक अधिकार शक्ति पर जबकि प्राकृतिक नियम विवेक पर आधारित हैं। नागरिक समाज की स्थापना के लिए हॉब्स बीस प्राकृतिक नियमों का पालन पर जोर देता है।

6.8 सामाजिक समझौता (Social Contract)

हॉब्स के अनुसार मनुष्य अपने स्वभाव से एक असामाजिक प्राणी है और मानव को केवल निरंकुश राजसत्ता द्वारा ही शासित किया जा सकता हे। मनुष्य अपने तर्क व विवेक द्वारा प्राकृतिक अवस्था से छुटकारा पा सकता है। चूँकि प्राकृतिक अवस्था में अधिकारों के अनियंत्रित प्रयोग के कारण संघर्ण की स्थिति पैदा होती है, इसलिए जब तक मनुष्य के अधिकारों पर नियन्त्रण नहीं होगा, शान्ति और सुरक्षा की स्थापना नहीं हो सकती। विवेक से प्रेरित होकर सभी मनुष्य आपस में समझौता करके अपने अधिकारों को किसी एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह को सौंप देते हैं। यह सामाजिक समझौता ही राज्य (कामनवैल्थ) की उत्पत्ति का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का आधार वैज्ञानिक भौतिकवाद है और यह सिद्धान्त इंग्लैण्ड की राजनीतिक अराजकता व सामाजिक स्थिति से भी प्रभावित हुआ है। हॉब्स के यहाँ राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दो प्रकार का उल्लेख मिलता है – प्रथम संस्था द्वारा तथा द्वितीय अर्जन द्वारा सामाजिक समझौते के सिद्धान्त में हॉब्स ने प्रथम प्रकार को मान्यता दी है। हॉब्स के अनुसार व्यक्ति ने आत्मरक्षा का स्थायी हल तलाशने के लिए पारस्परिक समझौते द्वारा प्रभत्व सम्पन्न राज्य की स्थापना की ताकि प्राकृतिक अवस्था के सारे दोषों से छुटकारा मिल सके। अतः हॉब्स एक सामाजिक समझौतावादी विचारक है। उसने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'लेवियाथन' में इसको प्रकाशित किया है। इस समझौते को निम्नलिखित विवरण द्वारा समझा जा सकता है :–

1. **मानव स्वभाव की व्याख्या** : हॉब्स सामाजिक समझौते के अन्तर्गत मानव प्रकृति एवं स्वभाव की व्याख्या करते हुए कहता है कि मानव एक सामाजिक प्राणी न होकर पूर्ण न होकर पूर्ण रूप से अकेला है। मनुष्य एक स्वार्थी प्राणी है। वह अपनी अभिलाषाओं को पूरा करने के लिए सदैव प्रयास करता रहता है। वह निर्बाध रूप से स्वतन्त्रता का उपभोग करता है। वह अपनी इच्छापूर्ति के लिए दूसरों को मारने से भी परहेज नहीं करता। वह पाशविक व हिंसक बनकर दूसरों से प्रतिशोध लेता रहता है। वह शक्ति प्राप्ति के लिए दूसरों को डराता है व उनका वध भी करता है। हॉब्स के अनुसार मानव में स्वार्थ, भय, शक्ति के प्रति प्रेम, अहंकार, संघर्ष आदि सभी दुर्गुण मौजूद हैं, परन्तु इन दुगुणों के साथ ही मानव में विवेका का तत्त्व भी पाया जाता है। अतः हॉब्स के अनुसार मनुष्य मूलतः एक असामाजिक प्राणी है जो सदैव आत्मरक्षा को मूल प्रवृत्ति से संचालित होता है। यही भावना या प्रवृत्ति उसे हिंसा करने के लिए तथा दूसरों को भयभीत करने के लिए उकसाती है।

2. **प्राकृतिक अवस्था (State of Nature)** : हॉब्स ने प्राकृतिक अवस्था को पूर्व सामाजिक अवस्था कहा है जो मानव की राज्य उत्पत्ति से पूर्व की अवस्था थी। इस अवस्था में कोई नियम नहीं था। उसका जीवन किसी भी तरह सुरक्षित नहीं था। 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस', 'जो छीन सकते हो छीन लो' या फिर 'जिसको मार सकते हो मार दो' आदि नियम लागू थे। मानव की स्वतन्त्रता तथा जीवन रक्षा उसके शक्ति बल पर निर्भर थी। अतः मनुष्य पशुओं से भी बदत्तर था। स्वार्थ हेतु मारकाट व खून – खराबा सब किया जा सकता था। परस्पर सन्देह व अविश्वास की भावना युद्ध की स्थिति बनाए रखती थी। ऐसी अवस्था में न तो कोई सर्वोच्च सत्ता थी जो सभी को को नियन्त्रित कर सके। उस अवस्था में उचित व अनुचित का ज्ञान नहीं था। उस युग में निजी सम्पत्ति का सर्वथा अभाव था। प्रत्येक वस्तु का स्वामित्व उसके बाहुबल पर निर्भर था। न कोई कानून था और न ही कोई न्यायकारी शक्ति। सरकार जैसी संस्था का अभाव था। इसलिए व्यक्ति निर्बाध स्वतन्त्रता का उपभोग करते थे। हॉब्स के अनुसार – "मनुष्य का जीवन एकाकी, दरिद्र, अपवित्र, पाशविक

तथा क्षणिक था। मानव को सदैव मृत्यु का भय सताता था। हॉब्स ने आगे लिखा है – "प्राकृतिक अवस्था में उचित तथा अनुचित, न्याय तथा अन्याय का कोई स्थान नहीं था। धोखा और शक्ति ही मुख्य गुण समझे जाते थे।

3. **समझौते का कारण (Causes of Social Contract) :** प्राकृतिक अवस्था में जब मनुष्य बहुत तंग आ गए तो उन्होंने दयनीय, भयपूर्ण तथा भ्रष्ट अवस्था से निकालने के लिए एक सर्वोच्च तथा निरंकुश सत्ता को अपने सारे अधिकार व स्वतन्त्रताएँ सौंप दीं। इस सत्ता द्वारा ही मनुष्य में शान्ति तथा उसकी आत्मरक्षा को स्थायित्व प्रदान किया जा सकता था। इस अराजकता के माहौल से निकलने के लिए सभी व्यक्तियों ने अपने को किसी एक या अनेक सर्वोच्च सत्ता को समस्त अधिकार दे दिए। ऐसा करना उस समय व्यक्तियों की मजबूरी थी। पाशविकता व दरिद्रता से निकलने के लिए तथा भय के निराकरण हेतु सामाजिक समझौता अपरिहार्य हो गया था।

4. **समझौते की प्रक्रिया (Procedure of Social Contract) :** मनुष्य ने इसमें अपने उस स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश स्वशासन का परित्याग किया जो उसे प्राकृतिक अवस्था में प्राप्त थे। साथ ही एक निरंकुश शासन के बन्धन का स्वीकार किया। हॉब्स ने मानव क समझौते की प्रक्रिया को इस प्रकार व्यक्त किया है – "मैं अपने ऊपर अपना शासन करने का अधिकार इस मनुष्य (राजा) या इस मनुष्य समूह (शासक वर्ग) को सौंपता हूँ। किन्तु शर्त यह है कि तुम भी अपने इस अधिकार को मेरी तरह ही उस मनुष्य को या इस मनुष्य – समूह को सौंप दो और मेरे समान इसके प्रत्येक कार्य का समर्थन करो।" इस अनुबंध से दो स्तर होते हैं। प्रथम स्तर पर प्रतिज्ञा की जाती है एवं दूसरे स्तर पर लागू किया जाता है। इस प्रक्रिया में सत्ताधिकारी व्यक्ति शक्ति का भय दिखाकार या शक्ति का प्रयोग करके इसे पूर्णतः लागू करते हैं। हॉब्स ने कहा है – "तलवार के बिना संविदाएँ केवल शब्द हैं और उनमें य ताकत नहीं होती कि मनुष्य उनका पालन करने को विवश हो।" हॉब्स आगे कहता है कि – "यदि किसी बलवती शक्ति का भय न हो, तो शब्दों के बन्धन इतने कमजोर होते

हैं कि वे मनुष्य की महत्त्वकांक्षा, लोभ, क्रोध तथा अन्य भावनाओं को नियन्त्रण में नहीं रख सकते।"

5. **राज्य की उत्पत्ति (Origin of the State) :** समझौते द्वारा सभी मनुष्य संविदा की प्रतिज्ञा करते हैं। संविदा करने वाले व्यक्तियों का समूह ही राज्य या लैटिन भाषा में नगर कहलाता है। इस प्रकार सारा जनसमुदाय समझौते द्वारा एक व्यक्ति या समूह में संयुक्त हो जाता है। हॉब्स ने 'लेवियाथन' में इसकी स्पष्ट व्याख्या की है। जिस व्यक्ति तथा व्यक्ति समूह को संविदा करने वाले मानव अपने अधिकार सौंपते हैं वह दीर्घ – काय 'लेवियाथन' है और वह जनता की शान्ति व प्रतिरक्षा के लिए पृथ्वी में मानव–देव की भाँति है।

6. **राज्य का स्वरूप :** हॉब्स के समझौते द्वारा दो कार्यों की पूर्ति होती है। प्रथम – वह एक व्यवस्थित तथा सभ्य समाज की स्थापना करता है। दूसरे – इस समझौते द्वारा एक ऐसे राज्य की स्थापना होती है जिसमें मनुष्य अपने समस्त प्राकृतिक अधिकारों का परित्याग कर एक निरंकुश प्रभु का निर्माण करते है, जिसमें राज्य आश्वासन देता है कि वह मानव की प्रत्येक शत्रु से रक्षा करेगा। साथ ही मनुष्य भी समझौते द्वारा निर्मित राज्य व्यक्तियों या व्यक्ति की आज्ञा पालन के लिए बाध्य है। राज्य की सम्पूर्ण शक्ति सम्पन्न व्यक्ति या व्यक्तियों का समुदाय ही अन्य व्यक्तियों की इच्छाओं को एक शक्तिशाली इच्छा के रूप में परिवर्तित कर सकता है। जो व्यक्ति इस शक्ति का प्रतीक होता है वही राज्य कहलाता है। हॉब्स के अनुसार लोगों को एकमात्र कार्य सम्प्रभु के आदेशों का पालन करना होता है। अतः प्रभुसत्ता को लोगों पर असीम अधिकार होते हैं। हॉब्स के अनुसार इस सम्प्रभु को केवल आंतरिक शांति व सुरक्षा ही कायम नहीं करनी पड़ती बल्कि बाह्य आक्रमण से भी राज्य की सुरक्षा करनी पड़ती है। सम्प्रभु समाज में शांति कायम करता है। सम्प्रभु समस्त जनता का प्रतिनिधित्व करता है। हॉब्स अपने संघ (Commonwealth) की रचना इस प्रकार करता है – "ऐसी सम्मिलित शक्ति के नियमों का एकमात्र तरीका जो विदेशी आक्रमण से उनकी (मनुष्य की) की रक्षा कर सके तथा उन्हें पारस्परिक

संघर्ष से बचा सके, उनकी सारी शक्ति को एक व्यक्ति या व्यक्तियों के संघ को इन प्रकार सौंप देना है कि बहुसंख्यक इच्छाशक्ति (Will) एक रूप हो जाए जिससे एक व्यक्ति या व्यक्तियों के संघ को नियुक्त किया जा सके, जो उनके समस्त अधिकार ग्रहण करके साकार हो जाए और हर एक उसका उत्तरदायित्त्व ले कि वह जो अधिकार ग्रहण करता है, उनकी सामूहिक सुरक्षा तथा शान्ति के लिए कार्य करेगा या करवाएगा तथा इसके लिए सब की इच्छा सामूहिक हित में एक की इच्छा हो जाएगी तथा सब अपने निर्णय को उसके अधीन कर उसके सम्मुख विनत होंगे।" इस प्रकार हॉब्स का मानना है कि सारे व्यक्ति इसको मनाने के लिए बाध्य हैं। इस समझौते से सम्प्रभु को असीमित शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। हॉब्स का सम्प्रभु (राज्य या लेवियाथन) पूर्ण रूप से निरंकुश है – "समझौते के द्वारा अनेक इच्छाओं के स्थान पर एक इच्छा का निर्माण होता है। सम्प्रभु के आदेश ही कानून हैं और उसका प्रत्येक कार्य न्यायपूर्ण होता है।"

अतः समझौते के बाद समाज व राज्य का प्रादुर्भाव हुआ। कला, साहित्य, विज्ञान, व्यापार आदि का श्रीगणेश हुआ। हॉब्स के शब्दों में – "महान् दैत्य (लेवियाथान) अथवा राज्य उस मर्त्यप्रभु का इसी प्रकार से जन्म होता है यह वही मर्त्यप्रभु है। जिसकी कृपा पर अमर ईश्वर की छत्रछाया में हमारी शान्ति और सुरक्षा निर्भर है।" सामाजिक समझौते द्वारा हॉब्स 'निरंकुश राजतन्त्र एक राज्य' की स्थापना करता है। हॉब्स का सम्प्रभु सर्वशक्तिमान है। सम्प्रभु कानून से ऊपर है। कानून सम्प्रभु का आदेश है। सम्प्रभु सर्व बन्धनों से मुक्त है। सम्प्रभु की इच्छा का सभी को सम्मान करना पड़ता है। दण्ड देने की शक्ति सम्प्रभु के पास है। सम्प्रभु के कार्यों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

हॉब्स के सामाजिक समझौते के सिद्धान्त की विशेषताएँ (Features of Hobbes's Social Contract)

1. **निरंकुश सम्प्रभु (Absolute Sovereign)** : निरंकुश सम्प्रभु समझौते में शामिल नहीं है तथा उसे समझौते द्वारा सभी मनुष्यों के समस्त अधिकार प्राप्त हैं। सम्प्रभु अपनी सत्ता का प्रयोग अपनी इच्छानुसार करेगा। उसकी सत्ता पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

अतः वह व्यक्ति असीम शक्ति प्राप्त कर निरंकुश सम्प्रभु बन बैठा है। सम्प्रभु के समझौते में शामिल न होने के कारण उसे बदला नहीं जा सकता। वह अपने कार्यों के लिए किसी व्यक्ति या संस्था के प्रति उत्तरदायी नहीं है। उसकी शक्तियाँ असीमित हैं।

2. **समझौता सामाजिक व राजनीतिक दोनों (Social as well as Political Contract)** : प्राकृतिक अवस्था में न तो समाज था और न राज्य। मनुष्य ने अपनी प्राकृतिक अवस्था में प्राप्त अधिकारों का परित्याग कर सामाजिक समझौते के बन्धन को स्वीकार किया है जिसके कारण समाज की उत्पत्ति हुई तथा उस समाज में शान्ति और व्यवस्था को बनाये रखने के लिए राज्य जैसी संस्था का आविर्भाव हुआ। इस प्रकार इस समझौते की प्रकृति सामाजिक व राजनीतिक दोनों थी।

3. **अल्पमत को विद्रोह का अधिकार नहीं (Minortiy has no right to Revolt)** : सामाजिक समझौते के सिद्धान्त में अल्पमत को बहुमत के आदेशों का पालन करना पड़ता है। बहुमत के सम्प्रभु के चुनाव में उन्हें कोई भी आपत्ति उठाने का अधिकार नहीं है। यदि वह इस चुनाव में राजधर्म विरोध की स्थिति बनाये रखेंगे तो उन्हें नागरिक समाज से बाहर ही रहना पड़ेगा और बहुमत द्वारा उनका सर्वनाश भी किया जा सकता है। यदि वे राज्य का अंग बने रहना पसन्द करते हैं तब भी उन्हें मौन रूप से बहुमत की इच्छा स्वीकार करनी होगी। अतः हॉब्स के समझौते में अल्पमत की इच्छाओं का कोई स्थान नहीं। अल्पमत के हित बहुमत से जुड़े हुए हैं। अल्पमत को विद्रोह करने का अधिकार प्राप्त नहीं है।

4. **समझौते का उल्लंघन नहीं (No Violation of the Contract)** : मनुष्य समझौते में शामिल होकर तथा सम्प्रभु को सारे अधिकार सौंपकर बँध जाता है। वह समझौते का उल्लंघन नहीं कर सकता। उसे समझौता भंग करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। यदि वह समझौता तोड़ेगा तो वह पुनः प्राकृतिक अवस्था में पहुँच जाएगा। दुःखदयी प्राकृतिक अवस्था में वह कभी वापिस लौटना नहीं चाहेगा। अतः मनुष्य इस समझौते का विरोध करने से डरता है।

5. **सम्प्रभु समझौते का भागीदार नहीं (The Sovereign was not party to the Contract) :** यह समझौता प्राकृतिक अवस्था में मनुष्यों के बीच हुआ है। सम्प्रभु इसमें शामिल नहीं है। जैसा कि एवेन्स्टीन का कहना है – "हॉब्स का सामाजिक समझौता प्रजाजनों के बीच हुआ है। समप्रभु समझौते का विरोध करने से डरता है।

6. **समझौता चिरस्थायी है (Contract is Perpetual)** : हॉब्स के अनुसार समझौता सदा के लिए हुआ है तथा चिरस्थायी है। किसी भी व्यक्ति को इसके उल्लंघन का अधिकार नहीं है। जो व्यक्ति अपने साथ दूसरों की आत्मरक्षा को संकट में डालने का प्रयत्न करते हैं अर्थात् समझौते की शर्तों को तोड़ते हैं, उन्हें मृत्यु–दण्ड देने का अधिकार शासक को प्राप्त है। अतः दण्ड के भय से कोई भी समझौते का उल्लंघन करना नहीं चाहता। इसलिए समझौता चिरस्थायी बना जाता है।

7. **समझौते का उद्देश्य (Aim of the Contract)** : मनुष्यों के जीवन एवं सम्पत्ति की रक्षा कर, उन्हें आन्तरिक तथा बाह्य रक्षा प्रदान कर, शांति स्थापित करना ही समझौते के सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य है। सामाजिक समझौता लोगों के जान–माल की रक्षा की गारण्टी देता है।

8. **सामाजिक समझौता, शासनात्मक नहीं (Social Contract not Governmental)**: हॉब्स के पूर्व, प्रतिपादित समझौता राजा और प्रजा तथा शासक और शासित के बीच होने के कारण शासनात्मक समझौता था। हॉब्स के समझौते ने प्राकृतिक अवस्था में सभी व्यक्तियों के बीच होने के कारण सामाजिक समझौते का रूप धारण किया है।

9. **कानून सम्प्रभु का आदेश (Law is the Command of Sovereign)** : कानून सम्प्रभु का आदेश है। न्याय करने, राष्ट्रों और शक्तियों से युद्ध अथवा सन्धि करने का अधिकार पूर्णतः सम्प्रभु को प्राप्त है। सम्प्रभु के आदेशों को अनियमित नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि वह विवेक तथा नैतिक आचरण का सार है।

10. **व्यक्तिगत समझौता :** हॉब्स के अनुसार यह समझौता व्यक्तिगत रूप से हुआ है, सामूहिक रूप से नहीं।

समझौते की आलोचना (Criticism of the Contract)

हॉब्स का सामाजिक समझौता सर्वत्र कटु आलोचना का केन्द्र था। इसी चर्च, जनता तथा राजवंश ने कटु आलोचना की है तथा गम्भीर रूप से उसका विरोध किया है। हॉब्स ने चर्च पर राज्य के पूर्ण नियन्त्रण पर जोर दिया है। यह जनता को अस्वीकार्य इसलिए था क्योंकि वह निरंकुश राजतन्त्र की स्थापना पर जोर देता है। हॉब्स ने राजतन्त्र को भौतिक तथा सामान्य व्यक्तियों द्वारा स्थापित संस्था बताया है, जबकि राजवंश के समर्थक राजतन्त्र को दैवी एवं पवित्र संस्था मानते है राजवंश के समर्थक कलैरैण्डन, हॉब्स की 'लेवियाथन' में प्रस्तुत विचारों से इस तरह असहमत था कि उसने हस्तलिखित प्रति ही जला डाली और कहा – "मैनें कभी कोई ऐसी पुस्तक नहीं पढ़ी जिसमें इतना अधिक राजविद्रोह, विश्वासघात तथा धर्म – द्रोह भरा हो।" हॉब्स के समझौते के सिद्धान्त की आलोचना निम्न तर्कों पर आधारित हैं :–

1. **निरंकुशता का समर्थन (Support of Despotism)** : हॉब्स द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त शासन पर किसी तरह का अंकुश नहीं है। चाहे वह कानून का अंकुश हो या व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का। हॉब्स द्वारा स्थापित शासन पूरी तरह निरंकुश है। अतः हॉब्स ने मनुष्य के सभी अधिकारों को शून्य कर लेवियाथन की दासता के पाश में जकड़ दिया है। इस सिद्धान्त के अनुसार सम्प्रभु सर्वशक्तिमान व निरंकुश है। उसकी शक्तियों पर कोई बाहरी प्रतिबन्ध नहीं है। यह सिद्धान्त सम्प्रभु की निरंकुशता का पूर्ण पक्षधर है।
2. **मानव स्वभाव का दोषपूर्ण चित्रण (Defective picture of Human Nature)** : हॉब्स ने मानव स्वभाव के एक पक्ष को ही प्रस्तुत किया है। मनुष्य के लिए उसका दृष्टिकोण निराशावादी है। मनुष्य में उदारता, परोपकार, प्रेम, दया, सहानुभुति आदि गुण भी पाए जाते हैं। हॉब्स ने इन सारे गुणों को भुलाकर मानव को स्वार्थी प्राणी माना है। उसका यह चित्रण एकपक्षीय व दोषपूर्ण है। एकपक्षीय दृष्टिकोण के आधार पर मानव स्वभाव का विश्लेषण पक्षपातपूर्ण है।

3. **प्राकृतिक अवस्था का चित्रण अनैतिहासिक (Unhistorical picture of State of Nature)** : हॉब्स द्वारा प्रस्तुत प्राकृतिक अवस्था का चित्रण इतिहास से मेल नहीं खाता क्योंकि इतिहास के अनुसार मनुष्य सदैव परिवार व कबीले के रूप में रहा। वह कभी अकेला नहीं रहा। इसके साथ मनुष्यों के आपसी युद्ध की कल्पना भी इतिहास की मान्यताओं से सिद्ध नहीं होती।

4. **प्राकृतिक अवस्था में प्राकृतिक अधिकारों की मान्यता असंगत (Irrelevance of Natural Rights is State of Nature) :** हॉब्स ने मनुष्य की प्राकृतिक अवस्था का वर्णन करते हुए कहा है कि उसमें व्यक्ति को कुछ अधिकार प्राप्त थे, जिनका रूप प्राकृतिक था। अराजकतापूर्ण प्राकृतिक अवस्था में व्यक्ति का कोई अधिकार हो सकता है, यह कहना असंगत व विश्वास से परे है। हॉब्स स्वयं स्वीकार करता है कि उस अवस्था में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का नियम प्रचलन में था तो ऐसी अवस्था में अधिकारों की कल्पना करना सर्वथा तर्कहीन है।

5. **लोग भय के कारण सत्ता के अधीन नहीं रह सकते (People do not subject themselves to Authority out of Fear)** : हॉब्स के अनुसार मनुष्य प्राकृतिक अवस्था में लौट जाने के डर से समझौते में शामिल रहने के लिए बाध्य हुआ तथा उसी कारण व सम्प्रभु के आदेशों का पालन करने लगा। परन्तु प्रो० वाहन का कथन इसके पूर्णतः विपरीत है कि नागरिकों में नैतिक सम्बन्धों का होना आवश्यक है और जहाँ पर नैतिक सम्बन्ध नहीं वहाँ पर वस्तुतः कोई भी सम्बन्ध नहीं है। आतंक तथा भय राज्य के लोगों को बाँधने का साधन नहीं हो सकते। मानव विवेक के आधार पर सत्ता को स्वीकार करते हैं। वे सुख – शान्ति बनाए रखने के लिए स्वेच्छा से सत्ता के अधीन रहते हैं।

6. **अतार्किक (Illogical)** : हॉब्स ने जो प्राकृतिक अवस्था में मानव का चित्रण प्रस्तुत किया है, उसके अनुसार मनुष्य एकाकी, दरिद्र, अपवित्र व क्षणिक था और समझौता करने के पश्चात् ही उसने अपने एकाकी जीवन को त्याग कर सामाजिक बनकर समाज में रहना प्रारम्भ किया। यहाँ एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य जो स्वार्थी, अभिमानी, जंगली तथा असामाजिक था, एकाएक समझौते केलिए किस तरह

तैयार हो गया। इस प्रकार के समझौते के लिए राजनीतिक चेतना का होना आवश्यक है। बिना राजनीतिक चेतना के मनुष्य समझौते की ओर आकर्षित नहीं हो सकता।

7. **समझौता एक पक्षीय नहीं हो सकता (Contract cananot be One - sided) :** कोई भी समझौता द्विपक्षीय होता है। हॉब्स का समझौता पूर्ण रूप से एकपक्षीय है, क्योंकि हॉब्स ने समझौते में सम्प्रभु को शामिल नहीं किया। समझौता लागू करने के लिए सम्प्रभु को असीमित अधिकार देने की बात संगत नहीं है। इसलिए तार्किक दृष्टि से यह समझौता असंगत व दोषपूर्ण है।

8. **सिद्धान्त विरोधी तत्त्व (Paradoxes in the Theory) :** हॉब्स ने अपने समझौते के सिद्धान्त में सम्प्रभु की असीमित शक्ति प्रदान की है। इसके विपरीत वह व्यक्ति को सम्प्रभु का विरोध करने का अधिकार भी देता है। यह सही है कि कुछ महत्त्वपूर्ण दशाओं में ही व्यक्ति सम्प्रभु का विरोध कर सकतें। यदि सम्प्रभु नागरिक जीवन की रक्षा करने में असफल रहा हो तो उस दशा में उसका विरोध किया जा सकता है। परन्तु तर्क की माँग यह है कि जब सम्प्रभु को असीमित अधिकार प्राप्त है तो व्यक्ति को विरोध का अधिकार किस तरह मिल सकता है और व्यक्ति को विरोध का अधिकार प्राप्त है तो सम्प्रभु को असीमित अधिकार किस प्रकार प्राप्त होंगे। इस प्रकार हॉब्स के इस सिद्धान्त में परस्पर विरोधी तत्त्व पाए जाते हैं।

9. **राज्य और सरकार में अन्तर (State and Government are two Different things) :** हॉब्स के सिद्धान्तानुसार राज्य और कानून में कोई अन्तर नहीं है। उसने राज्य के कानूनी निंरकुशवाद को सरकार से मिलाने की भूल की है। हॉब्स यह भूल गया है कि सरकार राज्य का आवश्यक तत्त्व है। सरकार में परिवर्तन होने से राज्य में परिवर्तन नहीं होता। इसलिए राज्य व सरकार अलग –अलग हैं। सरकार राज्य की तुलना में छोटा रूप रखती हैं। राज्य सर्वदा विद्यमान रहता है। सरकारें बदलती रहती हैं। अतः ये दोनों भिन्न संस्थाएँ है।

10. **राज्य एक निर्मित संस्था नहीं (State is not an Artificial Institution):** वास्तव में राज्य एक निर्मित संस्था नहीं बल्कि विकसित संस्था है। राज्य एक ऐतिहासिक विकास का परिणाम है जबकि हॉब्स ने राज्य को समझौते द्वारा एक निर्मित संस्था माना है।

हॉब्स के सिद्धान्त की उन आलोचनाओं के पश्चात् भी यह स्वीकार किया जा सकता है कि हॉब्स ने सामाजिक समझौते के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर इस वास्तविकता को स्पष्ट कर दिया है कि राज्य न तो ईश्वर द्वारा कृत दैवी संस्था है और न ही ऐतिहासिक विकास का परिणाम। बल्कि व्यक्तियों की निश्चित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह अस्तित्व में आया है जो मानव द्वारा निर्मित एक कृत्रिम संस्था है। राज्य एक साधन नहीं है परन्तु साध्यों की ओर जाने वाला एकमात्र साधन है। इसके अतिरिक्त हॉब्स की विचारधारा में सम्प्रभुता की धारणा के प्रतिपादन का मार्ग प्रशस्त किया है। हॉब्स ने मानव स्वभाव का विश्लेषण कर यर्थार्थ के धरातल पर मानव –स्वभाव को चित्रित किया है। अतः हॉब्स का चिन्तन वैज्ञानिक चिन्तन है। हॉब्स का चिन्तन राजनीतिशास्त्र के विचारकों के लिए एक पथ – प्रदर्शक का कार्य करता है।

6.9 सम्प्रभुता का सिद्धान्त (Theory of Sovereignty)

हॉब्स आधुनिक सम्प्रभु राज्य के पिता के रूप में

(Hobbes as the Father or Modern Sovereign State)

हॉब्स का प्रभुसत्ता का सिद्धान्त सामाजिक समझौते के परिणामस्वरूप ही अस्तित्व में आया। हॉब्स ने सर्वप्रथम अपार व असीम शक्तियुक्त सम्प्रभु का वर्णन किया है जो पूर्णतः निरंकुश है। हॉब्स प्रभुसत्ता का प्रबल समर्थक है। हॉब्स के समान अन्य किसी विद्धान ने उससे पहले प्रभुसत्ता की असीमित प्रकृति का वर्णन नहीं किया। आधुनिक अर्थ में हॉब्स ने ही प्रभुसत्ता को विस्तृत व्याख्या करके एक नया सिद्धान्त पेश किया।

आधुनिक अर्थ में प्रभुसत्ता राज्य की अनियन्त्रित शक्ति है जिसको आवश्यक जन समर्थन व शक्ति प्राप्त है। इसका कार्यक्षेत्र निश्चित है। आधुनिक अर्थ में प्रभुसत्ता का अर्थ कानून

बनाने और उसका प्रशासन करने के लिए राज्य का अनियन्त्रित एवं सर्वोच्च अधिकार है जिससे राज्य को पूरा निग्रह बल प्राप्त है। व्यक्ति के सम्बन्धों को नियमित व अनुशासित करने का अन्तिम उपाय राज्य ही है। आधुनिक युग में राज्य का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व प्रभुसत्ता है क्योंकि इसके कारण ही राज्य अपने क्षेत्र में रहने वाले साथी व्यक्तियों तथा व्यक्ति समुदाय को आदेश देने और उनका पालन करवाने की शक्ति मिलती है। प्रभुसत्ता नागरिकों व प्रजाजनों के ऊपर राज्य की वह परम शक्ति है जो कानूनों द्वारा नियन्त्रित नहीं है। यह प्रजा के ऊपर राज्य की मौलिक निरंकुश व असीमित शक्ति है। प्रभुसत्ताधारी वैधानिक रूप से प्रत्येक व्यक्ति व समुदाय से उच्चतर है। वह उस सर्वोच्च शक्ति का धारक है, जिसके बल पर वह अन्यों से अपनी बात मनवाता है। गैटिल के अनुसार – "किसी अन्य विद्वान ने प्रभुसत्ता की असीमित प्रकृति का वर्णन नहीं किया है जितना हॉब्स ने।" हॉब्स ने पूर्व, प्रभुसत्ता सम्बन्धी विचारों का विश्लेषण करके तो राजनीतिक दर्शन के केन्द्र यूनान में प्रभुसत्ता की धारणा नहीं थी। यूनानी प्रभुसत्ता की प्रवृति को निर्धारित नहीं कर सके कि यह क्या है, कहाँ रहती है तथा इसका क्या उत्तरदायित्व है। प्रभुसत्ता के विचार का उदय सबसे पहले रोमन साम्राज्य तथा नरेशों में मिलता है लेकिन वे इसका समुचित विकास नहीं कर सके। मध्यकालीन युग में पोप तथा होली रोमन साम्राज्य के दौरान भी प्रभुसत्ता को नहीं समझा गया। प्रभुसत्ता के विचार को मैकियावली की देन, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता तथा एकाकी राज्य का विचार है। लेकिन उसने प्रभुसत्ता पर कुछ नहीं लिखा। बोदिन ने ही सर्वप्रथम आधुनिक चिन्तक के रूप में प्रभुसत्ता की अवधारणा का श्री गणेश किया। बोदां के अनुसार – "प्रभुसत्ता प्रजाओं और नागरिकों पर परमाधिकार है, जिस पर कानून का नियन्त्रण नहीं है।" परन्तु उसने सम्प्रभुता पर कुछ पाबन्दियाँ लगा दीं। इसके बाद ग्रोशियस ने प्रभुसत्ता को केवल सम्पत्ति के अधिकार तक ही सीमित कर दिया। उसने सम्प्रभु पर अन्तराष्ट्रीय तथा प्राकृतिक कानूनों की सीमाएँ लगा दीं। इस प्रकार हॉब्स से पूर्व सम्प्रभुसत्ता की कोई निश्चित प्रकृति नहीं थी।

हॉब्स ने सर्वप्रथम सम्प्रभुता को निरंकुश, अविभाज्य, असीमित, सर्वव्यापी आदि बनाकर उसे बोदाँ के ईश्वरीय कानून, प्राकृतिक कानून, संवैधानिक कानून आदि प्रतिबन्धों से मुक्त कर

दिया। सी०ई० वाहन का कथन है – "हॉब्स ही ऐसा दार्शनिक है जिसने सर्वप्रथम इस बात का अनुभव किया कि राज्य के एक पूर्ण सिद्धान्त में मूल विचार सम्प्रभुता का है। उसने ही सर्वप्रथम सम्प्रभुता के स्थान, कार्यों और सीमाओं को निश्चित करने की आवश्यकता को बल दिया है।" हॉब्स के अनुसार – "सम्प्रभु वह व्यक्ति हे जिसको एक विशाल जनसमूह ने स्वेच्छापूर्वक एक दूसरे से समझौता करके, इस उद्देश्य से अपना प्रभु बना लिया है कि वह उनकी सुरक्षा और शान्ति के लिए उन सबकी शक्तियों व साधनों का आवश्यकतानुसार प्रयोग कर सकता है।"

हॉब्स की परिभाषा से स्पष्ट है कि लोगों ने अपने अधिकार एक समूह को हस्तांतरित कर उसे सम्प्रभु के पद के लिए स्वीकारा है। इसके लिए सम्प्रभुता राजनीतिक जीवन का एक तथ्य है। जहाँ कहीं भी नागरिक या राजनीतिक समाज पाया जाता है। वहाँ सम्प्रभुता भी होनी चाहिए। सम्प्रभुता के अभाव में मनुष्य मनमानी करेगा तथा राज्य के अस्तित्व को उद्देश्य ही नष्ट हो जाएगा। व्यक्ति की निरंकुशता पर रोक लगाने व सभ्य समाज की स्थापना के लिए किसी ऐसी सर्वोच्च शक्ति का होना आवश्यक है जो विद्यटनकारी तत्त्वों से निपट सके। इसलिए हॉब्स ने ऐसी ही शक्ति की कल्पना की थी।

सम्प्रभुता की विशेषताएँ (Characteristics of Sovereignty)

हॉब्स के सम्प्रभुता की व्याख्या करके उसकी निम्न विशेषताओं का उल्लेख किया है:–

1. **सम्प्रभुता सर्वोच्च शक्ति है (Sovereignty is the Supreme Power)** : हॉब्स का सम्प्रभु सर्वशक्तिमान है। राज्य की समस्त सर्वोच्च शक्ति उसी में केन्द्रित है। वह कानून का निर्माण करता है, उसकी व्याख्या करता है एवं उसे लागू करता है। हॉब्स के सम्प्रभु में विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका सम्बन्धी समस्त शक्तियाँ है। उसे युद्ध व शान्ति की घोषणा करने का अधिकार है। सिक्का बनाने, सम्पत्ति का हस्तान्तरण करने, परमाधिकार का प्रयोग करने या उन्हें हस्तान्तरित कर देने का उसे पूरा अधिकार है। इस हस्तान्तरण से उसकी सम्प्रभुता में कोई कमी नहीं आती।

वह पद सम्मान में भी सर्वोच्च है। वह यश का स्त्रोत है। उसके समान अन्य कोई सर्वोच्च शक्ति नहीं है।

2. **सम्प्रभु समस्त विधेयात्मक कानूनों का स्त्रोत है (Sovereignty isa Source of all Legislative Laws)** : हॉब्स की सम्प्रभुता कानूनी सम्प्रभुता है। कानून निर्माण करने की शक्ति सम्प्रभु के पास है। वह समस्त विधेयात्मक कानूनों का स्त्रोत होता है। कानून सम्प्रभु का आदेश है। सम्प्रभु संसद को कानून बनाने की आज्ञा दे सकता है। हॉब्स का सिद्धान्त सत्ता के केन्द्रीयकरण पुरजोर देता है। कानूनों की विरल धारा सम्प्रभु की सर्वोच्च शक्ति से ही निकलती है।
3. **सम्प्रभु अदण्डनीय है (Sovereignty is Unpunishable)** : सम्प्रभु सर्वशक्तिमान है। सम्प्रभु जनता के हित में कानून बनाता है। वह कभी गलत नहीं करता। अतः उसे दण्ड देने का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि को अवांछित कार्य हो जाए तो इसके लिए जनता ही दोषी है। इसलिए जनता को ही दण्ड दिया जाना चाहिए।
4. **सम्प्रभुता अनुत्तरदायी है (Sovereighty is Irresponsible) :** चूँकि समझौता प्रजाजनों के बीच है और सम्प्रभु समझौते का कोई पक्ष नहीं है। इसलिए प्रभुसत्तासम्पन्न शासक द्वारा समझौते का उल्लंघन नहीं हो सकता। समझौते का पालन ही न्याय है। प्रभुसत्तासम्पन्न शासक अन्याय नहीं कर सकता। सम्प्रभु अपने कार्यों के लिए किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं है। उसके द्वारा शक्तियों का प्रयोग अन्याय नहीं हो सकता। वह सभी प्रकार के बन्धनों व शर्तों से मुक्त है तथा राज्य को कोई व्यक्ति उसकी अधीनता से मुक्त नहीं है। वह किसी के प्रति जवाबदेह नहीं है।
5. **सम्प्रभुता नागरिक समाज का अनिवार्य अंग है (Sovereignty isan Essential Part of Society)** : सम्प्रभुता राज्य का अनिवार्य राज्य तत्त्व है। इसके अभाव में नागरिक समाज की कल्पना असम्भव है। सम्प्रभुता तथा राज्य की उत्पत्ति एक साथ होती है। एक के अभाव में दूसरे की कल्पना असम्भव है। जहाँ नागरिक समाज होगा, वहाँ सम्प्रभुता भी होगी अन्यथा उसके अभाव में अराजकता होगी।

6. **सम्प्रभुता अपरिवर्तनीय है (Sovereignty is Irrevocable)** : समझौते द्वारा किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह के अपना प्रभु स्वीकार करने के बाद उसकी स्वीकृति के बिना उसके राजत्व को इन्कार नहीं कर सकते। समझौते द्वारा जनता से क्रान्ति का अधिकार छीन लिया जाता है। व्यक्ति समझौते का अन्त कर उस भंयकर प्राकृतिक अवस्था को वापिस नहीं जा सकते। सत्ता के विरूद्ध विद्रोह करने का अधिकार नियम विरूद्ध घोषित किया जाता है। अतः सम्प्रभुता को बदला नहीं जा सकता। इसलिए हॉब्स का सम्प्रभु असीमित व निरंकुश है।
7. **युद्ध और शान्ति का निर्णायक :** हॉब्स के अनुसार सम्प्रभु को अन्य राज्यों से अपनी इच्छानुसार युद्ध, शान्ति या समझौते के मार्ग अपनाने का अधिकार प्राप्त है। सम्प्रभु अपनी इच्छानुसार युद्ध में अपनी सैनिक शक्ति का प्रयोग कर सकता है। अतः सम्प्रभु युद्ध व शान्ति का एकमात्र निर्णायक है। सम्प्रभु ही सामान्य हित में युद्ध व शान्ति का एकमात्र निर्णायक है। सम्प्रभु ही सामन्य हित में युद्ध या शान्ति का मार्ग चुनता है। वह निर्णय करने के लिए पूर्ण रूप से सक्षम है।
8. **सम्प्रभु प्रत्येक कानून व न्याय का स्त्रोत है (Sovereignty is the Source of all Laws and Justice) :** कानून राज्य या सम्प्रभु के आदेश होते हैं। लोगों द्वारा किये गए कार्यों में अच्छाई – बुराई, वैधानिकता – अवैधानिकता का निर्णय करने का अधिकार नागरिक कानूनों को है। कानून निर्माण तथा कानून में परिवर्तन का अधिकार राज्य अर्थात् सम्प्रभु को है। परन्तु उसे कोई बाँध नहीं सकता। इसलिए कानून उसके आदेश हैं। लोगों के विवादों को सुनना और प्राकृतिक या नागरिक कानूनों द्वारा उन पर निर्णय देना उसका या उसके द्वारा नियुक्त अधिकारियों का कार्य है। अतः सम्प्रभु ही प्रत्येक कानून व न्याय का स्त्रोत है।
9. **सम्प्रभु को विचारों तथा लोगों की सम्पत्ति पर पूरा अधिकार है (Sovereignty has Complete Right Over Subjects, Thoughts and Properties) :** हॉब्स का सम्प्रभु असीमित है। उसकी शक्तियों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। सम्प्रभु का लोगों की सम्पत्ति और विचारों पर पूरा नियन्त्रण है। वह जिसकी चाहे सम्पत्ति छीन सकता है। वह लोगों

के विचारों पर भी रोक लगा सकता है। वह जिस प्रकार चाहे सम्पत्ति व विचारों का हस्तान्तरण व नियन्त्रण कर सकता है। कानून सम्प्रभु का आदेश होते हैं। आवश्यकता पड़ने पर इस बारे में कानून भी बना सकता है।

10. **सम्प्रभुता अविभाज्य और अदेय है (Sovereignty is Indivisible and non-transferable) :** बोदाँ की भाँति हॉब्स भी सम्प्रभुता को अविभाज्य मानता है। सम्प्रभुता का विभाजन गृहयुद्ध इसलिए हुआ कि वहाँ प्रभुसत्ता राजा, लार्ड सभा एवं काम सभा के बीच विभाजित थी। शासन प्रणाली कोई भी हो, उसमें कहीं – न–कहीं सम्प्रभुता अवश्य होती है। राज्य के विभाजन से सम्प्रभुता का भी बँटवारा हो जाता है। राज्य स्वयं में समाप्त हो जाता है और गृहयुद्ध आरम्भ हो जाता है। हॉब्स कहता है कि विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका तीनों ही शक्तियाँ एक ही सम्प्रभु के हाथ में होनी चाहिएं। इनका विभाजन असुरक्षा व अराजकता को दावत देता हे। अतः हॉब्स सम्प्रभुता को अविभाज्य और अदेय मानता है।

11. **सम्प्रभु प्रशासनिक शक्तियों का एकमात्र स्त्रोत है (Sovereignty is the sole sourse of Adminstrative Power) :** हॉब्स का सम्प्रभु समस्त शक्तियों का जन्मदाता है। समस्त अधिकारी उसके द्वारा प्रदत्त शक्तियों का ही प्रयोग करते हैं। प्रशासनिक पदों पर नियुक्ति सम्प्रभु ही करता है। अधिकारियों को पद से हटाने व उन्हें दण्डित करने का अधिकार भी रखता है। इसलिए वह सर्वोच्च शक्ति का केन्द्र है और प्रशासनिक शक्तियों का एकमात्र स्त्रोत है।

12. **सम्प्रभुता असीमित है (Sovereignty is Unlimited) :** सम्प्रभु ही कानून का एकमात्र स्त्रोत और व्याख्याकार है। वह नागरिक कानूनों के अधीन नहीं रहता, क्योंकि सम्प्रभु का आदेश नागरिक कानून है और स्वयं सम्प्रभु पर उसका आदेश लागू नहीं हो सकता। हॉब्स कहता है कि राजा के लिए कानूनों का पालन करना आवश्यक नहीं है। प्राकृतिक विधि की व्याख्या सम्प्रभु ही करता है। इसलिए वह सम्प्रभु द्वारा आदेशित नागरिक विधि के प्रतिकूल नहीं हो सकती। दैवी कानून सभी सम्प्रभु के विधान के प्रतिकूल नहीं हो सकते, क्योंकि उसकी व्याख्या करने वाला सम्प्रभु ही होता है।

सम्प्रभु की शक्तियाँ सीमित हैं। वह कानून से ऊपर है। उसकी शक्तियों को कानून द्वारा न बाँधा जा सकता है और न उसके विरूद्ध मुकद्दमा चलाया जा सकता हे। कानून और नैतिकता उसकी इच्छाएँ हैं।

सम्प्रभु के अधिकार व कर्त्तव्य (Right and Duties Sovereign)

सम्प्रभु के अधिकार वे अधिकार हैं जो उसे करार द्वारा प्राकृतिक मनुष्य में समर्पित किए हैं। सम्प्रभु के अधिकारों की सीमा का निर्णय मनुष्य स्वयं नही कर सकता बल्कि प्रकृति ही करती है। सम्प्रभु के कुछ अधिकार उसके कर्त्तव्य भी हैं। उसके प्रथम तीन अधिकार उसके कर्त्तव्य भी हैं। वे निम्नलिखित हैं :–

1. **कानून बनाने का अधिकार (Right to make Law)** : यह अधिकार सम्प्रभु का सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकार है। राजा को कानून बनाते समय उनको समान क्रियान्वित करने का कर्त्तव्य भी होता है। कानून बनाते समय सम्प्रभु का कर्त्तव्य बनता है कि वह ऐसे कानून बनाए जिनसे अधिक से अधिक या लगभग सभी जनता के हितों की पूर्ति होती हो।
2. **कानून की व्याख्या व उसको क्रियान्वित करना (Right to interpret and implement Law)** : सम्प्रभु का यह अधिकार उसका कर्त्तव्य भी है कानून की व्याख्या तथा व्यवस्था है। उसके द्वारा निर्णय करने तथा उस निर्णय को उचित रूप से दण्ड द्वारा क्रियान्वित करने का अधिकार तथा कर्त्तव्य भी सम्प्रभु का है। कानून को लागू करने की बाध्यकारी शक्ति सम्प्रभु के पास ही होती है। कानून को क्रियान्वित करवाने का कर्त्तव्य सम्प्रभु का होता है।
3. **नीति निर्माण का अधिकार (Right to make Policies)** : इस अधिकार द्वारा सम्प्रभु को शासन करने और शासित लोगों की जीवन सुरक्षा के लिए नीति निर्धारित करने का अधिकार प्राप्त है। जन – कल्याण के नीति निर्माण करना उसका कर्त्तव्य भी है। शासक को ऐसी नीतियाँ बनानी चाहिएं जिनसे अधिकतम का कल्याण हो।

4. प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए वह मन्त्रियों, सेनापतियों, परामर्शदाता, न्यायाधीशों तथा दूसरे सार्वजनिक पदाधिकारियों की नियुक्ति करता है उनके कार्यों की निगरानी करता है। अतः सम्प्रभु राज्य में प्रशासन का सर्वेसर्वा होता है।
5. सम्प्रभु को राज्य में न्याय की स्थापना हेतु अपराधियों को दण्ड देने का अधिकार है। चोरी, डकैती, हत्या तथा कानून की अवहेलना करने वाला दण्ड का भागीदार होता है।
6. राज्य का सर्वेसर्वा होने के कारण सम्प्रभु को युद्ध या शांति सन्धि करने का अधिकार है।
7. सम्प्रभु का राज्यहित में जनता की सम्पत्ति छीनने व इस विषय में कोई भी कानून बनाने का अधिकार है।
8. उसे प्रजा पर कर लगाने का अधिकार है।
9. सम्प्रभु को अपनी सम्प्रभुता शक्ति को अविच्छिन्न रूप से प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त है।
10. राज्य में शान्ति बनाए रखने के लिए सम्प्रभु को भाषण व लेखन पर नियन्त्रण का अधिकार है। सम्प्रभु की स्वीकृति के बिना कोई व्यक्ति अपने सिद्धान्त का प्रसार नहीं कर सकता है।
11. राज्य के नागरिकों को पुरस्कार देने तथा सम्मान देने का अधिकार भी सम्प्रभु को है।
12. नागरिकों के झगड़े सुलझाना व न्याय करना सम्प्रभु का मुख्य कर्त्तव्य है।
13. नागरिकों के जान – माल की सुरक्षा करना भी सम्प्रभु का मुख्य कर्त्तव्य है।
14. अपराधी को क्षमा करने का अधिकार सम्प्रभु के पास है।
15. अच्छा प्रशासन देना व राज्य में शांति कायम रखना भी सम्प्रभु का प्रमुख कर्त्तव्य है।
16. प्रजा को सन्तुष्ट जीवन के लिए आवश्यक पदार्थ उपलब्ध करना भी सम्प्रभु का कर्त्तव्य है।

17. राज्य की उन्नति के प्रयास करना, कानून की समानता, न्याय का समान रूप से क्रियान्वित तथा समानतापूर्वक कर की सुविधा प्रदान करना सम्प्रभु के प्रमुख कर्त्तव्य हैं।

सम्प्रभु का विरोध कब ? (When Sovereignty can be Opposed)

सर्वशक्तिमान सम्प्रभु होने के बावजूद भी हॉब्स सम्प्रभु पर कुछ प्रतिबन्धों की व्यवस्था करता है। हॉब्स ने कुछ विशेष परिस्थितियों में सम्प्रभु की आज्ञाओं का उल्लंघन करने का अधिकार जनता को प्रदान किया है। यद्यपि हॉब्स ने सम्प्रभुता को सर्वशक्तिमान, अविभाज्य, अखण्ड व अदेय माना है, फिर भी उसने कहा है कि यदि सम्प्रभु किसी व्यक्ति को अपनी दया करने, अपना अंग – भंग करने, अपने आक्रमणकारियों का विरोध करने अथवा जीवन को कायम रखने वाली वस्तुओं का प्रयोग न करने का आदेश होता है तो सम्प्रभु का विरोध किया जा सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि हॉब्स ने जीवन की सुरक्षा के लिए सम्प्रभु का निर्माण किया है। सम्प्रभु किसी व्यक्ति को अपनी हत्या के लिए बाध्य नहीं कर सकता। व्यक्ति ने आत्मरक्षा हेतु समझौता किया है और सम्प्रभु का कर्त्तव्य बन जाता है कि वह मनुष्यों के जीवन की रक्षा करे। सम्प्रभु न्यायविरूद्ध कार्य नहीं कर सकता। सम्प्रभु असमानतामय हो सकता है। किन्तु वह किसी के जीवन का अधिकार नहीं छिन सकता। हॉब्स कहता है कि यदि सम्प्रभु व्यक्ति के जीने के, आत्मरक्षा व स्थायित्व के अधिकार को छीनता है तो उसके विरूद्ध विद्रोह या क्रान्ति करना जनता के लिए आवश्यक बन जाता है।

सम्प्रभुता सिद्धान्त का मूल्यांकन एवं आलोचनाएँ

(Evaluation and Criticisms of Concept of Sovereignty)

हॉब्स ने राज्य और समाज एवं राज्य और सरकार में कोई भेद नहीं किया है। हॉब्स एक शक्तिशाली राजतन्त्र के पक्षधर है। उन्होंने कानून व नैतिकता में कोई अन्तर न करके उनका मूल – स्त्रोत एक ही माना है। हॉब्स के अनुसार शासक ही राज्य और समाज दोनों

का निर्माण करता है। हॉब्स सम्प्रभुता को अविभाज्य व अदेय मानता है। यदि सम्प्रभुता का विभाजन किया गया तो सत्ता का स्थायीपन नष्ट हो जाता है। हॉब्स द्वारा समर्थित निरंकुश प्रभुसत्ता के पक्ष में दी गई दलीलें व्यावहारिक व उपयोगी है। हॉब्स ने राज्य के दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त का विरोध करके नया सिद्धान्त पेश करने का जो प्रयास किया है, सफल है। हॉब्स का यह सिद्धान्त, जिस सम इंग्लैण्ड में गृहयुद्ध चल रहा था, उस समय को सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। शक्तिशाली शासक का अभाव में गृहयुद्ध से निपटना मुश्किल होता है। उसका यह सिद्धान्त आज भी कानूनी मान्यता प्राप्त सिद्धान्त है। किसी भी अन्य लेखक ने राज्य की प्रभुसत्ता की निरंकुश प्रकृति का इतना उत्कट दृष्टिकोण भी अपनाया है जितना हॉब्स ने। उसने सर्वप्रथम सम्प्रभुता पर विस्तारपूर्वक लिखा है। इसलिए हॉब्स को आधुनिक सम्प्रभु राज्य के पिता के रूप में देखा जाता है। इस प्रकार हॉब्स ने परम्परागत शासन के प्रतिबन्धों से एक ऐसे सम्प्रभु का प्रतिपादन किया है जो विधि, शुभांगी प्रशासन, अधिकार न्याय और नैतिकता, युद्ध और शांति का एकमात्र स्त्रोत है। इतने महान योगदान के बाद भी हॉब्स के सम्प्रभुता सिद्धान्त की कतिपया आलोचनाएँ की गई हैं जो निम्न प्रकार से हैं :–

1. **हॉब्स के सम्प्रभु की निरंकुशता अतार्किक (Absolutism of Hobbes's Sovereignty is non - logical)** : हॉब्स ने निरकुंश सम्प्रभु का सिद्धान्त पेश किया है। उसका शासक सर्वशक्मिान है और प्रजा को उसका विरोध करने का अधिकार नहीं है। हॉब्स एक तरफ तो शासन को निरंकुश बनात है और दूसरी तरफ उस प्रतिबन्धों की भी व्यवस्था करता है। प्रतिबन्धों से युक्त शासक निरंकुश नहीं हो सकता। यदि ऐसा है तो सम्प्रभु को निरंकुशता का क्या अर्थ हैं ? यदि प्रजा को विद्रोह का अधिकार है तो सम्प्रभु को निरंकुशता की धारणा अतार्किक है। हॉब्स द्वारा विशेष परिस्थितियों में शासक का विरोध करने का प्रजा का अधिकार सम्प्रभु की निरंकुशता को कम कर देता है। इस प्रकार सम्प्रभु की निरंकुशता और प्रजा का विद्रोह करने का अधिकार परस्पर विरोधी बातें हैं। अतः यह सिद्धान्त अतार्किक प्रतीत होता है।

2. **अव्यावहारिक सिद्धान्त (Impracticable Theory)** : हॉब्स ने सम्प्रभु को इतनी सीमित निरंकुश व अमार्यादित शक्तियाँ प्रदान करके इस सिद्धान्त को अव्यावहारिक बना दिया है। वर्तमान लोकतान्त्रिक राज्यों में हॉब्स के इस सिद्धान्त का कहीं भी अस्तित्व नहीं है। अतः आधुनिक युग में यह सिद्धान्त पूर्णतया अव्यावहारिक है।

3. **व्यक्तियों की दुष्ट प्रवृतियों पर अंकुश हेतु निरंकुश शासक ही आवश्क नहीं :** हॉब्स का कहना है कि मनुष्य पाशविक प्रवृत्तियों का स्वामी है। उसकी पाशविकता पर रोक लगाने के लिए शक्तिशाली निरंकुश सम्प्रभु का होना आवश्यक है। इतिहास में ऐसे बहुत से शासक हुए हैं जिन्होनें अपने उदार, धार्मिक और शुभचिन्तन के द्वारा दुष्ट प्रजाजनों पर शासन किया है। प्रजा पर शासन करने के लिए प्रजा का दिल जीतना आवश्यक होता है न कि उन्हें डराना – धमकाना। अतः प्रजा पर शासन करने के लिए निरंकुश शासक की कोई आवश्यकता नहीं होती।

4. **सिद्धान्त में विरोधाभास (Contradiction in Theory) :** हॉब्स ने सम्प्रभु की शक्ति का आधार और उद्देश्य व्यक्ति को आत्मरक्षा प्रदान बताया है तथा शान्ति के अपनी इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए समझौता किया है। यदि सम्प्रभु व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों का उल्लंघन करता तो व्यक्ति को सम्प्रभु के आदेशों का विरोध करने का अधिकार है। एक तरफ हॉब्स सम्प्रभु को सर्वशक्तिमान तथा निरंकुश बताता है और दूसरी तरफ उस प्रतिबन्ध भी लगाता है। यहीं विरोधाभास का प्रमुख आधार है। प्रो० जोन्स का कथन है कि "हॉब्स की दोनों बातें एक साथ सत्य नहीं हो सकतीं। यदि मनुष्य आत्म–रक्षा के लिए सम्प्रभु के आदेशों की अवहेलना करता है तो सम्प्रभुता असीमित, सर्वोच्च व निरंकुश नहीं रहती और यदि वास्तव में सम्प्रभुता में ये सभी लक्षण होते हैं तो व्यक्ति को आत्मरक्षा का अधिकार का अस्तित्व नष्ट हो जाता है। जनता को विद्रोह का अधिकार प्रदान करने पर सम्प्रभु की शक्तियाँ असीमित न होकर सीमित रह जाती हैं। अतः इस सिद्धान्त में परस्पर विरोधी तत्त्वों का समावेश है।

5. **आत्म–त्याग मानव प्रकृति से मेल नहीं खाता :** हॉब्स का कहना है कि मनुष्यों ने प्राकृतिक अवस्था के दुखों से छुटकारा पाने के लिए अपनी जीवन व स्वतन्त्रता के अधिकार किसी एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह को सौंप दिये, मानव – स्वभाव के विपरीत है। मानव सदैव स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष करता रहा है। वह कभी भी अपनी स्वतन्त्रता का परित्याग नहीं करेगा। मानव का अपनी इच्छानुसार त्याग करना उसकी मूल प्रकृति के विपरित है। जो व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रता त्याग देता है, वह अपने पुरूषत्व को ही त्याग देता है। रूसो के मत में जीवन और स्वतन्त्रता जैसे प्रकृति की देनों का किसी कल्पित लाभ के लिए सम्भवतया त्याग नहीं किया जा सकता। अपनी इच्छा को सारी स्वतन्त्रता से वंचित करना अपने कार्यों को सारे नैतिक गुणों से वंचित करने के बराबर है।

6. **हॉब्स के अनुसार शक्ति ही न्याय का आधार है (Power is the Base of Justice) :** हॉब्स सम्प्रभु को सर्वशक्तिमान मानता है। शक्ति का प्रयोग ही न्याय है। बिना नियंत्रण के शक्ति जब न्याय का स्त्रोत बना जाती है तो वह सर्वविनाशी और दुर्दमनीय बन जाती है। सम्प्रभु का निर्माण हॉब्स ने अनुत्तरदायी शासन के लिए किया है। यह कितनी भयंकरता है। हॉब्स सम्प्रभु के लिए शक्ति प्रयोग अपरिहार्य बना देता है। शक्ति का बर्बर प्रयोग गृहयुद्ध की स्थिति पैदा कर सकता है। इतिहास गवाह है कि जब भी किसी शासक ने शक्ति का दुरूपयोग किया है, उसे जनता का असंतोष झेलना पड़ा है।

7. **हॉब्स की सम्प्रभुता अतिशयोक्तिपूर्ण है (Hobbes's Sovereignty is Exagerated) :** हॉब्स ने जिस निरंकुश सम्प्रभु को असीमित शक्तियों का स्वामी बनाया है। वह व्यवहार में असम्भव है। हॉब्स ने कानून और नैतिकता को सम्प्रभु की इच्छा माना है। यह हॉब्स की असम्भव उक्ति है। ऐसी निरंकुशता तो मृत्युशील देवता में ही हो सकती है। हॉब्स ने जो निरंकुश सम्प्रभु की कल्पना की है, वह अतिशयोक्तिपूर्ण है। किसी एक व्यक्ति या व्यक्तियों की सभा द्वारा इतने सारे अधिकारों का सम्भाला जाना प्राकृतिक आवश्यकता है। एक व्यक्ति इतने सारे उत्तरदायित्व एक साथ नहीं सम्भाल सकता।

हॉब्स ने सम्प्रभु को इतने सारे अधिकार व शक्तियाँ प्रदान करके अतिश्योक्तिपूर्ण कार्य किया है। यह विश्वास से परे की बात है।

8. **शक्ति और भय पर आधारित सिद्धान्त (Principle Based on Force and Fear) :** हॉब्स का कहना है कि प्राकृतिक अवस्था में लोगों ने अपने ऊपर शासन का अधिकार विवेक के कारण दिया। उन्होंने सम्प्रभु को तो सर्वशक्तिशाली बना दिया लेकिन स्वयं अपने पास कुछ नहीं रखा। यदि सम्प्रभु कोई कार्य करता है तो जनता उसक विरोध नहीं कर सकती। यदि प्रजा विद्रोह करेगी तो वापिस प्राकृतिक अवस्था के दुखदायी वातावरण में लौटना पड़ेगा। यही भय शासक की प्रमुख शक्ति है। इसलिए सम्प्रभु तथा व्यक्ति के बीच शक्ति और भय का सम्बन्ध है। समस्त जन भय के कारण ही शाक की आज्ञा का पालन करते हैं। इस प्रकार के सम्बन्ध राज्य में शान्ति स्थापित नहीं कर सकते। हॉब्स ने शक्ति और भय की आज्ञा का पालन करते हैं। इस प्रकार के सम्बन्ध राज्य में शान्ति स्थापित नहीं कर सकते। हॉब्स ने शक्ति और भय के साथ जोड़कर राज्य के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया है। राज्य की शक्ति का आधार प्रेम, विश्वास व सहयोग है न कि भय और शक्ति।

9. **वास्तविक सरकार का समर्थन (Support of De-facto Government) :** हॉब्स का सम्प्रभु का सिद्धान्त वास्तविक (Defcto) सरकार का समर्थन करता है। यह सरकार न्यायी हो चाहे अन्यायी, सही हो चाहे गलत उन्होनें शक्ति और अधिकार को अभिन्न माना है। इस सिद्धान्त के आधार पर कोई भी आततायी शासक अन्यायपूर्ण साधनों से सरकार की बागडोर अपने हाथ में ले सकता है। आलोचकों का कहना है कि हॉब्स ने 'लेवियाथन' पुस्तक निर्दयी व क्रूर शासक क्रामवैल की सत्ता का समर्थन करने के लिए लिखी थी।

हॉब्स के सम्प्रभुता सम्बन्धी विचार उस समय के सबसे क्रांतिकारी विचार हैं। उस समय इंगलैण्ड में गृहयुद्ध की स्थिति थी। लोगों को ध्यान आकर्षित करने का क्रामवैल की सत्ता का समर्थन करने के लिए इससे बढ़कर उपयोगी कोई अन्य सिद्धान्त नहीं था। हॉब्स ने स्पष्ट किया है कि जब कोई समाज राजनीतिक विघटन, अशान्ति तथा अराजकता के दौर

से गुजर रहा हो तो समाज के एक आदर्श के रूप में सम्प्रभु के पास असीमित और सर्वोच्च शक्ति का होना अति आवश्यक है। ऐसी स्थिति में सम्प्रभु जनता को सुरक्षा प्रदान कर सकता है। अतः हॉब्स के सम्प्रभु सिद्धान्त का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि एक सर्वोच्च शक्ति सम्पन्न सम्प्रभु ही गृहयुद्ध या अराजकता की स्थिति में राजनीतिक समाज को उभार सकता है।

6.10 हॉब्स एक व्यक्तिवादी के रूप में (Hobbes as an Individualist)

हॉब्स ने सर्वोपांग असीमित अधिकायुक्त निरंकुशता के सिद्धान्त का सृजन किया है लेकिन इसका तर्क तथा उद्देश्य व्यक्ति की शांति, सुरक्षा तथा उसकी सम्पत्ति की रक्षा है जिसके कारण हॉब्स के सिद्धान्त पर व्यक्तिवाद का प्रभाव दिखाई देता है। हॉब्स के 'लेवियाथन' में अब तक समाज में खोया हुआ व्यक्ति अपने रूप में आता है। 'लेवियाथन' के ग्यारहवें अध्याय में 'मनुष्य पर' वे व्यक्ति के महत्त्व पर बिना वर्ग – भेद के बल देते हैं। उसका उद्देश्य पृथक् व्यक्तित्व वाले व्यक्ति का वर्णन करना है। हॉब्स का व्यक्तिवाद अनुभवसिद्ध और धर्मनिरपेक्ष है तथा पूर्व धाराणाओं पर आधारित नहीं है। हॉब्स सम्प्रभु द्वारा जीवन रक्षा में असफल रहने पर व्यक्ति को विरोध का अधिकार प्रदान कर देता है। यह अधिकार व्यक्ति को खतरे के समय अपना निर्णायक स्वयं बनाने की आज्ञा प्रदान करता है। हॉब्स का व्यक्ति काफी स्वतन्त्र, क्योंकि जहाँ कानून मौन है, वहाँ व्यक्ति स्वतन्त्र है। हॉब्स का व्यक्ति पूर्णरूपेण एकाकी तथा गर्वयुक्त है। हर व्यक्ति की अपनी इच्छाएँ होती हैं और विचार होते हैं। व्यक्ति को किसी विशेष नियम से नहीं बाँधा जा सकता।

हॉब्स के अनुसार – "व्यक्ति बिल्कुल अलग – अलग इकाइयाँ हैं और राज्य बाहर की वस्तु है। यह एक ऐसी शक्ति है जो उन्हें एकता के सूत्र में बाँधती है औश्र उनके समान स्वार्थों में सामंजस्य स्थापित करती है।" प्रायः समशक्तिमान स्वार्थी बिखरे हुए मनुष्य हॉब्स के राजदर्शन की प्रारम्भिक इकाई हैं। हॉब्स के अनुसार व्यक्ति के स्वार्थ से अलग किसी संस्था का उद्देश्य न हो सकता है और न होना चाहिए। राज्य का जन्म तो प्रजाजनों की सहमति से ही होता है। राज्य कृत्रिम संस्था है। जब व्यक्ति की स्वतन्त्रता खतरे में पड़ती है तो हॉब्स विशेष परिस्थितियों में व्यक्ति को विद्रोह का अधिकार प्रदान करता है। हॉब्स

का कहना है कि – "समाज की रचना, सम्प्रभुतामय राजशक्ति का समझौते से उदय और आत्मरक्षा के अभाव में सम्प्रभु की आज्ञा की अवहेलना, इन सभी के पीछे व्यक्तिवाद ही प्रधान कारण है। हॉब्स ही पहला दार्शनिक था, जिसने व्यक्ति के हित को, उसके जीवित रहने के अधिकार को सर्वोपरि माना।

हॉब्स का 'लेवियाथन' व्यक्तिवाद का प्रबल समर्थक ग्रन्थ है। मैक्सी के अनुसार – "हॉब्स का 'लेवियाथन' केवल सम्प्रभुता के सिद्धान्त का औश्र राज्य को एक साधन के रूप में मानने वाला ग्रन्थ नहीं है। यह व्यक्तिवाद का प्रबल समर्थक है।" इस कथन के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि एक ओर हॉब्स के दर्शन में निरंकुशता का प्रतिपादन मिलता है तो दूसरी ओर उसकी विचारधारा में व्यक्तिवाद के प्रबल तथा स्पष्ट दर्शन होते हैं। व्यक्तिवाद की मूल धारणा यह है कि सभी संघ, समुदायों, अन्य संस्थाओं या राज्य आदि व्यक्ति द्वारा निर्मित हैं तथा व्यक्ति उसकी इकाई है जो अपने में शामिल व्यक्तियों से अधिक या भिन्न कुछ भी नहीं है। इस दृष्टिकोण को अनुसार साध्य और राज्य व्यक्ति साध्य और राज्य साधन मात्र है।

सेबाइन के अनुसार – "निरंकुशता के आवरण में हॉब्स ने घोर व्यक्तिवादिता का समर्थन किया है। हॉब्स ने निरंकुशता का प्रचार निरंकुशता के लिए नहीं किया बल्कि व्यक्ति के जीवन को सुखी बनाने के लिए किया है।" डनिंग का मत है कि "हॉब्स के सिद्धान्त में राज्य – शक्ति का उत्कर्ष होते हुए भी मूल आधार पूर्णतः व्यक्तिवादी है। यह सिद्धान्त मिल्टन या अन्य किसी क्रान्तिकारी की तरह ही प्राकृतिक समानता पर जोर देता है।" हॉब्स ही प्रथम दार्शनिक है जिसने व्यक्ति के जीने के अधिकार को सर्वोपरि माना। हॉब्स के राजनीतिक दर्शन की प्रत्येक घटना, चाहे राजनीतिक समाज के स्थापना से पहले की हो या उसके बाद की, व्यक्ति के लिए है, व्यक्ति की है और व्यक्ति के लिए है। प्रो० वेपर के अनुसार – "लेवियाथन केवल प्रभुसत्ता के सिद्धान्त को जोरदार प्रतिपादन ही नहीं है। वह व्यक्तिवाद का भी एक प्रभावशाली विवरण है।" एक व्यक्तिवादी के रूप में हॉब्स का व्यक्तिवाद केवल इस बात पर आधारित है कि हॉब्स इस संसार की रचना व्यक्तियों से

मानता है। हॉब्स का व्यक्तिवाद समझौते की स्थिति में भी व्यक्तियों के व्यक्तित्व को नष्ट नहीं होने देना चाहता। व्यक्ति का जीवन का अधिकार हॉब्स के समझौते में व्यक्तिवादी तत्त्व को दर्शाता है। अतः हॉब्स के दर्शन में व्यक्तिगत इच्छाएँ ही प्रमुख हैं। अतः हॉब्स को एक व्यक्तिवादी विचारक के रूप में जानने के लिए निम्नलिखित तत्त्वों पर विचार किया जाता है :–

1. **राज्य साधन, व्यक्ति साध्य है (State is a Means and Man is the End)**: हॉब्स का दर्शन देखने में तो राज्यवादी प्रतीत होता है लेकिन उसके चिन्तन की अन्तरंग मांग व्यक्तिवादी है। हॉब्स व्यक्तिवादियों की तरह राज्य को साधन तथा व्यक्ति को साध्य मानता है। हॉब्स के अनुसार – "राज्य व्यक्ति की स्वार्थ – सिद्धि का साधन मात्र है। हॉब्स के अनुसार – "निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए व्यक्तियों ने राज्य का निर्माण किया है और यदि राज्य उन उद्देश्यों की पूर्ति करने में असमर्थ है तो उस राज्य की न कोई उपयोगिता है और न ही कोई महत्त्व। इसलिए हॉब्स एक व्यक्तिवादी के रूप में राज्य को साधन तथा व्यक्ति को साध्य मानता है।
2. **चिन्तन का केन्द्र व्यक्ति है (Man is the centre of Thoughts)** : हॉब्स व्यक्ति को मूल ईकाई मानता है। व्यक्ति ही उसके सम्पूर्ण राजनीतिक चिन्तन का केन्द्र बिन्दु है। समाज एक प्राकृतिक या स्वाभाविक संस्था नहीं है अपितु व्यक्तियों का समूहमात्र है। यद्यपि हॉब्स ने मानव प्रकृति का एक पक्षीय चित्रण किया है तथा व्यक्ति के दुर्गुणों पर प्रकाश डाला है, परन्तु उसने व्यक्तिवाद की परम्परा के अनुसार ही राज्य की स्थापना का आधार व्यक्तियों की सहमति को माना है। हॉब्स का व्यक्ति पूर्णरूपेण एकाकी है। हॉब्स व्यक्ति को अपनी चिन्तन का आधार बनाकर लिखता है। व्यक्ति ने राज्य की स्थापना अपने हित के लिए की है। समझौते का विरोध भी व्यक्ति अपने आत्मरक्षा के अधिकार के लिए कर सकता है। अतः हॉब्स का चिन्तन व्यक्ति पर ही आधारित है।
3. **सामनता का समर्थन (Supporter of Equality)** : हॉब्स सभी व्यक्तियों को अन्य व्यक्तिवादियों की तरह समान मानता है। हॉब्स के अनुसार व्यक्तियों की मानसिक

और शारीरिक शक्तियाँ तो भिन्न हो सकती हैं लेकिन इस स्थिति में व्यक्ति की शारीरिक शक्ति की कमी मानसिक शक्ति से तथा मानसिक शक्ति की कमी शारीरिक शक्ति से पूरी हो जाती है। परन्तु हॉब्स लोकतन्त्रीय शासन की समानता को नहीं मानता, वह केवल व्यक्तियों की समानता को ही महत्त्व देता है।

4. **राज्य एक कृत्रिम संस्था है (State is an Artificial Institution)** : हॉब्स राज्य को दैवीय संस्थान मानकर, समझौते द्वारा निर्मित संस्था मानता है। हॉब्स का विचार है कि व्यक्तियों ने प्राकृतिक अवस्था से निकलने के लिए अपने ऊपर शासन करने का अधिकार सम्प्रभु को दे दिया। हॉब्स ने एक ऐसे सम्प्रभु की कल्पना की है जो व्यक्तियों के आधारभूत हित अर्थात् आत्मरक्षा के हित की रक्षा कर सके। राज्य में शांति व्यवस्था कायम कर सके। इसलिए व्यक्तियों ने अपनी स्वतन्त्रताएँ समाप्त करके स्वयं उन पर प्रतिबन्ध लगा लिया और निरंकुश राज्य की स्थापना की। अतः हॉब्स अन्य व्यक्तिवादियों की तरह राज्य को दैवी या प्राकृतिक संस्था नहीं मानकर उसको व्यक्तियों द्वारा निर्मित संस्था मानता है।

5. **व्यक्तिवादी कार्य–सिद्धान्त का प्रतिपादन (Approval of Individualistic Principal of Working)** : हॉब्स द्वारा प्रतिपादित राज्य के निषेधात्मक कार्य व्यक्तिवादियों के अनुरूप हैं। राज्य का उद्देश्य यथार्थवादी तथा भौतिक है। व्यक्ति की रक्षा के लिए, आंतरिक शान्ति व व्यवस्था, बाह्य आक्रमण से रक्षा और सुरक्षा सम्बन्धी कार्य करना राज्य का उद्देश्य है। साथ ही हॉब्स व्यक्ति के जीवन व कार्यों में राज्य के अनावश्यक हस्तक्षेप का विरोधी है। हॉब्स के अनुसार कानून का उद्देश्य व्यक्ति के मात्र उन कार्यों पर प्रतिबन्ध लगाना है जो सार्वजनिक शान्ति व व्यवस्था को भंग करने वाले हों न कि व्यक्ति के समस्त कार्यों में हस्तक्षेप करना। हॉब्स के अनुसार व्यक्ति को आत्मरक्षा के सिद्धान्त के तहत विरोध करने का अधिकार इसलिए प्राप्त है कि सम्प्रभु आत्मरक्षा के अधिकार की सुरक्षा करने में असफल रहता है। इस प्रकार हॉब्स ने व्यक्ति के अन्तःकरण तथा विश्वास सम्बन्धी स्वतन्त्रता को स्वीकारा है। यह बात हॉब्स के व्यक्तिवादी होने की और संकेत करती है। यदि राज्य अपने कर्त्तव्यों के प्रति

उदासीन हो जाए तो व्यक्ति को अपनी आत्मरक्षा हेतु कुछ भी करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस सिद्धान्त में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की पूरी तरह छूट है। इसलिए हॉब्स के चिन्तन में व्यक्तिवाद है।

6. **व्यक्ति को शासन के विरोध का अधिकार है (Individual has the Right to Oppose the Ruler)** : व्यक्ति की आत्मरक्षा का अधिकार सम्प्रभु को सौंपा गया है। प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य ने इसी अधिकार की सुरक्षा के लिए समझौता किया और सारी शक्तियाँ सम्प्रभु को सौंप दीं। यदि सम्प्रभु आत्मरक्षण के अधिकार का उल्लंघन करता है या वह इस अधिकार की रक्षा करने में असमर्थ होता है तो ऐसी दशा में सम्प्रभु के आधारभूत दायित्व का पालन नहीं किया जा सकता तथा व्यक्तियों को सम्प्रभु का विरोध करने का अधिकार प्राप्त है। हॉब्स के अनुसार – "अपनी आत्मसुरक्षा के लिए व्यक्ति अपने सारे अधिकारों का परित्याग कर सम्प्रभु को असीम सत्ता प्रदान करते हैं। यदि सम्प्रभु व्यक्तियों को सुरक्षा प्रदान करने में असमर्थ होता है तो व्यक्तियों को उस सम्प्रभु के विरूद्ध क्रान्ति का अधिकार प्राप्त है।" इस प्रकार सम्प्रभु के विरूद्ध विद्रोह का अधिकार व्यक्ति को शक्तिशाली बनाता है। हॉब्स लिखता है कि "प्रजा सम्प्रभु की आज्ञा उसी समय तक मानने के लिए बाध्य है जब तक उसमें प्रजा को सरंक्षण प्रदान करने की शक्ति है। इसलिए हॉब्स ने व्यक्ति के आत्मरक्षा के अधिकार को सर्वोच्च माना है। इसलिए यह अधिकार उसे व्यक्तिवादी सिद्ध करता है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर स्पष्ट है कि हॉब्स एक व्यक्तिवादी है। सेबाइन के अनुसार – "हॉब्स के दर्शन को क्रान्तिकारी बनाने वाला उसका तत्त्व उसका व्यक्तिवाद है।" हॉब्स व्यक्ति के हित का प्रबल समर्थक है। हॉब्स व्यक्ति को ही अपने सम्पूर्ण चिन्तन का केन्द्र मानते हैं। हॉब्स का निरंकुशवाद उसके व्यक्तिवाद का पूरक है। हॉब्स का सारा दर्शन व्यक्ति की भय तथा आत्मरक्षा की भावना पर आधारित होने के कारण व्यक्तिवादी है। हॉब्स का व्यक्तिवाद बिल्कुल अप्रतिबन्धित और पक्का है। हॉब्स का सुस्पष्ट व्यक्तिवाद ही उसके दर्शन को क्रान्तिकारी बना देता है। उसके व्यक्तिवाद ने अहस्तक्षेप के सिद्धान्त को जन्म

दिया और उसके चिन्तन का 19 वीं शताब्दी के व्यक्तिवादी सिद्धान्तों पर अधिक प्रभाव पड़ा। उसका सिद्धान्त बेन्थम जैसे उपयोगितावादियों के लिए एक शक्तिशाली उपकरण बन गया। हॉब्स का दर्शन व्यक्तिवाद का दर्शन है। वह व्यक्ति को ही अपने चिन्तन का आधार बनाता है। वह निरंकुश सम्प्रभु के रूप में वस्तुतः एक व्यक्तिवादी ही है। वह राज्य को साधन तथा व्यक्ति को साध्य मानता है। आधुनिक व्यक्तिवादियों के अनुसार व्यक्ति के गुण उनके चिन्तन का आधार हैं, लेकिन हॉब्स अवगुणों को प्रमुखता देता है। यही कारण है हॉब्स व्यक्ति को माध्यम मानते हुए भी उसे एक निरंकुश व सर्वोच्च सम्प्रभु के अधीन रखता है। स्थिति चाहे कुछ भी हो हॉब्स के व्यक्तिवादी होने में कोई सन्देह नहीं है।

6.11 हॉब्स के चिन्तन का महत्त्व और देन

(Importance and Contribution of Hobbe's Thoughts)

यह सत्य है कि हॉब्स आधुनिक सम्प्रभु राज्य का जनक है। हॉब्स से पहले ही रोमन विचारकों ने सम्प्रभुता को परिभाषित करने का प्रयास किया, लेकिन वे प्रभुसत्ता का स्वरूप निश्चित नहीं कर सके। बोदाँ द्वारा भी इस दिशा में प्रयास किये गए लेकिन उन्होनें सम्प्रभुता पर कुछ पाबन्दियाँ लगा दी। हॉब्स ही सम्प्रभुता को पभिाषित करने वाला प्रथम अंग्रेज विचारक है। हॉब्स का सम्प्रभुता का सिद्धान्त उसकी सबसे महत्त्वपूर्ण देन है। हॉब्स ने सम्प्रभुता को सब प्रकार की पाबन्दियों से मुक्त कर दिया। कुछ आलोचक हॉब्स के चिन्तन का महत्त्व नकारते हैं। सेबाइन के अनुसार – "हॉब्स ही शायद राजनीतिक दर्शन का सबसे श्रेष्ठ लेखक है जिन्हें आंग्ल राष्ट्रों ने जन्म दिया है।" ओकशाट का कथन है कि "लेवियाथन अंग्रेजी भाषा में राजनीतिक दर्शन का सबसे श्रेष्ठ शायद एकमात्र श्रेष्ठ कृति है।" प्रो० मैक्सी का कहना है – "हॉब्स अंग्रेज जाति का सबसे महान विचारक है जिसका नाम तब तक अमर रहेगा जब तक लोग राजनीतिक मामलों में चिन्तन करते रहेंगे। उपर्युक्त तर्कों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हॉब्स अन्य राजनीतिक चिन्तकों से किसी भी प्रकार से कम नहीं है। अन्य सभी महान् चिन्तकों की तरह ही हॉब्स भी राजनीतिक चिन्तन के इतिहास के एक महान् प्रणाली या दर्शन के निर्माता हैं। हॉब्स द्वारा लिखित ग्रन्थ 'लेवियाथन' उसकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। यह अंग्रेजी भाषा में राजनीति विज्ञान

पर अत्यधिक मौलिक तथा महत्त्वपूर्ण रचना है। हॉब्स ने इस ग्रन्थ में प्रभुसत्ता के सिद्धान्त को प्रतिपादन करने का तर्कपूर्ण प्रयास किया है। हॉब्स ने इस ग्रन्थ में हमें ऐसा सिद्धान्त दिया है जो मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा राजनीति विज्ञान तीनों बड़े सामंजस्य के साथ एक स्थान पर रखता है। जोन्स तथा अन्य भाष्यकारों ने दावा किया है कि 'लेवियाथन' किसी अंग्रेज द्वारा लिखा गया श्रेष्ठतम ग्रन्थ है। राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में हॉब्स का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उपर्युक्त कारणों से हॉब्स का राजनीति दर्शन अंग्रेजी गृहयुद्ध के समय का महत्त्वपूर्ण चिन्तन है। हॉब्स की राजनीतिशास्त्र को महत्त्वपूर्ण देन निम्नलिखित हैं:–

1. **प्रभुसत्ता के सिद्धान्त का स्पष्ट प्रतिपादन (Clear Statement of Principle of Sovereignty)** : हॉब्स की राजनीतिशास्त्र को सबसे महत्त्वपूर्ण देन उसका प्रभुसत्ता का सिद्धान्त है। हॉब्स से पूर्व मैकियावली, ग्रोशियस तथा बोदाँ द्वारा इस सिद्धान्त के विकास के प्रयास किये गए लेकिन उन्होंने प्रभुसत्ता पर कुछ न कुछ प्रतिबन्ध लगा दिये। हॉब्स ही ऐसा प्रथम विचारक है जिसने आधुनिक अर्थ में प्रभुसत्ता को परिभाषित किया। सेबाइन ने कहा है – "हॉब्स ने प्रभुसत्ता को उन समस्त अयोग्यताओं से पूर्णतया मुक्त कर दिया जिन्हें बोदाँ ने असंगतिपूर्ण ढंग से बनाए रखा था।" वाहन ने लिखा है – "हॉब्स ही वह प्रथम विचारक है जिसने प्रभुसत्ता के विचार के पूर्ण महत्त्व को समझा और उसके स्वरूप, मर्यादाओं, कार्यों आदि की सूक्ष्म विवेचना कर उसकी विशद व्याख्या की। आधुनिक काल में सम्प्रभुता का वही स्वरूप है जो हॉब्स ने दिया था।
2. **सामाजिक समझौते के सिद्धान्त का अभिनवीकरण (New Orientation to Principle of Social Contract)** : हॉब्स राज्य की उत्पत्ति के प्रतिपादकों में से एक है। हॉब्स ने राज्य की उत्पत्ति का आधार सामाजिक समझौते को माना और उसका वैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादन किया। उसने कहा कि राज्य मानवीय इच्छा का परिणाम है न कि दैवी इच्छा का। अतः राज्य ईश्वरीय कृत नहीं मानवकृत है। जैगोरिन के अनुसार – "हॉब्स ने स्पष्ट घोषित किया है कि राज्य मनुष्य की सृष्टि है और उसका एकमात्र

औचित्य उसकी उपयोगिता है। जब मानव की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि में राज्य विफल रहता है तो वह अपने औचित्य को गंवा देता है अर्थात् राज्य का महत्त्व नष्ट हो जाता है।" हॉब्स ने स्पष्ट किया है कि राज्य को किसी ईश्वर ने नहीं बनाया है। राज्य वास्तव में मनुष्य द्वारा बनाया हुआ एक यन्त्र, एक शिल्प तथ्य तथा आविष्कार है। हॉब्स ने लोगों के मन से दैवी संस्था का डर निकाल दिया तथा निरंकुश सम्प्रभुता को मानवीय विवेक से उत्पन्न सामाजिक समझौते का परिणाम बताया। हॉब्स राज्य की उत्पत्ति के दैवी सिद्धान्त की मृत्यु का संकेत देने वाला प्रथम विचारक है।

3. **व्यक्तिवाद की अवधारणा (Concept of Individualism)** : हॉब्स ने राज्य और समाज को व्यक्ति की सुरक्षा का साधन बताया है। हॉब्स व्यक्ति को साध्य तथा राज्य को साधन मानता है। व्यक्ति के जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा के लिए ही राज्य को निरंकुश अधिकार दिये गए हैं। राज्य का हित व्यक्तिगत हितों का योग मात्र है। हॉब्स का व्यक्तिवाद राजतन्त्र की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। हॉब्स के व्यक्तिवाद की प्रशंसा करते हुए कहा गया है – "आत्मरक्षा तथा आत्माभिव्यक्ति के जिस आधार पर हॉब्स ने अपने राजनीतिक चिन्तन का विकास किया है, उसे देखते हुए यह अनिवार्य था कि वह व्यक्तिवाद का समर्थन करता।" हॉब्स का निरंकुश सम्प्रभुता का सिद्धान्त ही उसके व्यक्तिवाद का पूरक है। सेबाइन ने ठीक ही लिखा है – "हॉब्स के व्यक्तिवाद का तत्त्व पूर्ण रूप से आधुनिक है। हमें यह नही भूलना चाहिए कि हॉब्स पूर्णतया व्यक्तिवादी है।

4. **राज्य व्यक्ति के हितों का मध्यस्थ है (State is mediator of Individual Interests)** : हॉब्स ही ऐसा विचारक है जिसने राज्य को व्यक्ति के विभिन्न हितों के समन्वयकर्ता के रूप में देखा। हॉब्स ने उपयोगितावादियों के लिए भी मार्गदर्शन किया। हॉब्स ने निरंकुशता तथा धर्मनिरपेक्षता को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। हॉब्स का समझौता सिद्धान्त राज्य के मध्यस्थ की भूमिका का स्पष्ट पक्षधर है। बैन्थम हॉब्स का बड़ा ऋणी है।

5. **कानून की सत्ता की स्थापना (Establishment of existence of Law) :** निरंकुश राजतन्त्र का समर्थक होते हुए भी हॉब्स कानून की सत्ता को स्थापित करना चाहता था। हॉब्स अत्यधिक कानून बनाने के खिलाफ है। अधिक कानून लागू होने की स्थिति में कानून का उल्लंघन होगा और उसका महत्त्व कम होगा। हॉब्स ने कानून को प्रभावी तरीके से लागू करने के लिए दण्ड का प्रावधान आवश्यक बताया है। रचनात्मक और निरपेक्ष कानून की अवधारणा हॉब्स के दिमाग की ही उपज है।
6. **धर्मनिरपेक्षता की आधुनिक पद्धति (Modern tendency of Secularism) :** हॉब्स का चिन्तन चर्च के लिए अरूचिकर सिद्ध हुआ। राजतन्त्र के दैवी अधिकारों के समर्थकों में उसके सामाजिक समझौते के सिद्धान्त पर आधारित धर्मनिरपक्षता के सिद्धान्त को नापसन्द किया। चर्च के प्रति निष्ठावान लोगों ने उसके सम्प्रभुता सिद्धान्त का खण्डन किया। इस सिद्धान्त ने राजा के दैवीय अधिकारों का विरोध किया। 'लेवियाथन' में हॉब्स ने धर्म को राजनीति के अधीन करने का प्रयास किया। उससे उनके विरोध में लोग खड़े हो गए। इस दिशा में बोदाँ तथा मैकियावली ने भी कुछ चिन्तन किया है। लेकिन धर्मनिरपेक्षता का पूर्ण समर्थन करने वाला विचारक हॉब्स ही था। हॉब्स ने सम्प्रभु को चर्च से श्रेष्ठ घोषित करके धर्म का सार्वजनिक महत्त्व कम कर दिया। राजनीति को धर्म से अलग करने वाला प्रथम विचारक हॉब्स था। मध्ययुग के विरूद्ध उसने राज्य को दैवी संस्था न मानकर मानवीय संस्था माना और राज्य को चर्च से ऊँचा स्थान दिया तथा धार्मिक सत्ता को राजनीतिक सत्ता के अधीन कर उसने धर्मनिरपेक्षता की आधुनिक प्रवृति का भी श्री गणेश किया।
7. **वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति :** हॉब्स का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान उनका वैज्ञानिक तरीका है। उस समय वैज्ञानिक क्रान्ति से प्रभावित होकर हॉब्स ने वैज्ञानिक तरीके को सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में भी प्रयोग किया। उसने गैलिलियों के गति के सिद्धान्तों को सामाजिक विज्ञानों में प्रयोग किया। उसका वैज्ञानिक तरीका युक्तियुक्त निगमानात्मक तथा ज्यामितिक है।

8. **दैवी सिद्धान्त का विरोध :** हॉब्स ने अपनी पुस्तक 'लेवियाथन' में चर्च को राज्य के अधीन करते हुए धर्मनिरपेक्षता का परिचय दिया। उसकी विचारधारा से अनेक धर्माधिकारी उसके खिलाफ हो गए। उसने स्पष्ट कहा कि राज्य की उत्पत्ति दैवी इच्छा का परिणाम नहीं हैं। यह मानवीय विवेक पर आधारित समझौते का परिणाम है।
9. **मिश्रित संविधान का समर्थन :** हॉब्स ने निरंकुश राजतन्त्र का समर्थन करते हुए मिश्रित संविधान की अवधारणा को स्वीकार किया है।
10. **उपयोगितावादियों पर प्रभाव :** हॉब्स पहला आधुनिक विचारक है जिसने परस्पर विरोधी हितों का सामंजस्य करके उपयोगितावाद का मार्ग खोल दिया। वेपर के अनुसार – "यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है कि बैंथम भी यहाँ उसका उतना ही ऋणी है जितना सुख विषयक हॉब्स के विचारों का।" बैंथम जैसे उपयोगितावादी हॉब्स के ऋणी हैं। बैंथम ने कच्चा माल हॉब्स से ही प्राप्त किया है।
11. **काल्पनिक निगम :** हॉब्स ही ऐसे प्रथम विचारक हैं जिन्होने कल्पित निगम की कल्पना की थी। निरंकुश सम्प्रभु की कल्पना करना संगठन के आवश्यक संघटकों को उपलब्ध करा देता है। यदि हॉब्स की मूल धारणाएँ स्वीकार कर ली जाएँ तो निगम का निर्माण सहमति से नहीं प्रत्युत संघ के द्वारा होता है। संघ का अभिप्राय सारे व्यक्तियों द्वारा अपनी इच्छाएँ एक व्यक्ति के हवाले कर देना है। निगम का यह सिद्धान्त जायण्ट स्टाक कम्पनियाँ का निर्णायक रूप में जन्मदाता है, जिनका जन्म सबसे पहले इंगलैण्ड में हुआ था, आज वे सारे संसार में फैल गई है।
12. मैक्सी के अनुसार हॉब्स आधुनिक व्यवहारवाद का जनक है।
13. हॉब्स ने राजनीति को नीतिशास्त्र से अलग किया।
14. हॉब्स के भौतिकवाद ने 19 वीं सदी में कार्लमार्क्स को परोक्ष रूप से प्रभावित किया।
15. हॉब्स ने न्याय व कानून में सम्बन्ध स्थापित किया।

6.12 निष्कर्ष (Conclusion)–

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हॉब्स का राजनीतिक चिन्तन राजनीतिशास्त्र में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। वेपर के अनुसार – "हॉब्स असाधारण रूप से एक सुसंगत विचारक है।" हॉब्स प्रखर तर्कशास्त्री तथा सामाजिक प्रक्रियाओं के प्रबुद्ध – विश्लेषक विचारक थे। उनकी पुस्तक 'लेवियाथन' उस समय लिखी गयी महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। हॉब्स के रूप में भावी पीढ़ी को एक ऐसी खान मिली है जिसका खोदना उनके लिए श्रेयस्कर है, क्योंकि उससे बहुमूल्य धातु निकलती है। अंग्रेजी भाषा – भाषी जातियों में जन्में सभी राजनीतिक दार्शनिकों में हॉब्स का चिन्तन सबसे महान् है। इंग्लैण्ड में आज भी संवैधानिक राजतन्त्र का सम्मान किया जाता है। हॉब्स का सम्प्रभुता का सिद्धान्त आज भी महत्त्वपूर्ण है। आस्टिन ने आधुनिक काल में अपने विधि सिद्धान्त को हॉब्स के सम्प्रभुता सिद्धान्त पर आधारित किया है। हॉब्स के विचारों ने अनेक देशों में क्रान्तियों तथा फ्रेंच क्रान्ति को प्रभावित किया है। हॉब्स के योगदान का मूल्यांकन मैक्सी के इन शब्दों द्वारा किया जा सकता है – "हॉब्स अंग्रेज जाति के महान् विचारकों में से एक था। उसका प्रभाव राजदर्शन पर तब तक रहेगा जब तक कि लोग राजनीतिक विषयों पर चर्चा करेंगे।" उसके चिन्तन का मार्क्स तथा बैन्थम जैसे विचारकों पर भी प्रभाव पड़ा। उसने धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा की शुरूआत की। उसकी पुस्तक 'लेवियाथन' तत्कालीन परिस्थितियों पर आधारित होने के बावजूद भी आज के युग में राजनीतिक चिन्तन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। हॉब्स के राजनीतिक चिन्तन के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। उस महान् राजनीतिक दार्शनिक की जितनी भी प्रशंसा की जाए, कम है। अतः हॉब्स आधुनिक सम्प्रभु राज्य का जनक है। उसके प्रभुसत्तावादी तथा निरंकुशतावादी विचारों में भी हमें व्यक्तिवाद की झलक मिलती है। उसने शासक का उद्देश्य व्यक्ति के जीवन का कल्याण तथा सुरक्षा बताया तथा यही कार्य शासक की निरंकुशता के ऊपर एक प्रतिबंध का कार्य भी करेगें। यद्यपि उसकी कृति 'लेविलाथन' की बड़ी आलोचना भी की जाती है कि यह शासक की तानाशाही का समर्थन कर रही है। परन्तु फिर भी कुछ परिस्थितियों में हॉब्स ने व्यक्ति को शासन का

विरोध करने का अधिकार भी दिया है। इसी कारण हॉब्स के चिन्तन को निरंकुशतावाद तथा व्यक्तिवाद का मिश्रण माना जाता है।

6.13 शब्दावली (Keywords)–

लेवियाथन – महामानव

सूत्रपात – प्रारम्भ

वैधानिक सम्प्रभु – कानूनी

तार्किक – तर्क पर आधारित

6.14 स्वमूल्याकंन (Self-Assessment)

लघु उत्तरीय प्रश्न –

(1) हॉब्स के समय इंग्लैंड का वातावरण किस प्रकार का था?

(2) हॉब्स ने मानव स्वभाव के किस पक्ष का वर्णन किया है?

(3) हॉब्स नागरिकों को विद्रोह करने का अधिकार किन परिस्थितियों में देता है?

दीर्घ उत्तरात्मक प्रश्न–

(1) हॉब्स के सामाजिक समझौते के सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन करें।

(2) हॉब्स के सम्प्रभुता सिद्धान्त की व्याख्या करें।

(3) ''हॉब्स का राजदर्शन निरंकुशतावाद तथा व्यक्तिवाद का मिश्रण है'', व्याख्या करें।

6.15 सन्दर्भ सूची–

1. प्रभुदत्त शर्मा, राजनीतिक विचारों का इतिहास (प्लेटो से मार्क्स), कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 1967.
2. बी.एल.फाड़िया, पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास (प्लेटो से मार्क्स), साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2018.
3. जे.पी.सूद, पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का इतिहास (भाग–प्राचीन व मध्यकालीन), जे.नाथ एण्ड कंपनी, मेरठ, 2008.
4. सेबाइन, ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल थ्योरी, न्यूयार्क, 1973
5. पुखराज जैन, राजनीतिक विज्ञान के सिद्धान्त, साहित्य भवन, आगरा, 1988.
6. रघुवीर सिंह, मध्यकालीन विश्व का इतिहास, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली
7. ब्रायन आर. नेल्सन, वेस्टर्न पॉलिटिकल थॉट, वेवलैंड प्रकाशन, 1996.
8. डी. बॉशर व पी. कैली, पॉलिटिकल थिंकरसः फ्रॉम सॉकरेटिज टू द प्रेजेंट, ऑक्सफोर्ड, 2009.
9. जे.कॉलमैन, ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल थॉटः फ्रॉम एंशियट ग्रीस टू अर्ली प्रिस्टियनीटी, ऑक्सफोर्ड, 2000.
10. सी.बी.मैकफर्सन, द पॉलिटिकल थ्योरी ऑफ पसैसिव इंडिवियुलिज्मः हॉब्स टू लॉक, 1962.
11. ली. स्ट्रॉस, हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल फिलॉस्फी, शिकागो यूनिवर्सिटी प्रैस, 1987.